प्रकाशक
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बक्स नं० ७०
ज्ञानवापी, वाराणसी-१

मुद्रक
आदित्य नारायण
किरण प्रेस
सी. ६/७५ बाग बरियारसिंह, वाराणसी

राजसिंह

प्रथम खण्ड

(चित्रपर चरण)

पहिला परिच्छेद

तस्वीरवाली

राजस्थान के पहाड़ी प्रदेशों में रूपनगर नाम का एक छोटा-सा राज्य था। राज्य छोटा हो या बड़ा, उसका एक राजा होता ही है। रूपनगर का भी राजा था, किन्तु राज्य छोटा होने पर भी राजा का नाम बड़ा होने में कोई आपत्ति नहीं—रूपनगर के राजा का नाम विक्रमसिंह था। विक्रमसिंह का और भी परिचय बाद में दिया जायगा।

फिलहाल हमारी इच्छा उनके अन्तःपुर में प्रवेश करने की है। छोटा राज्य, छोटी राजधानी, छोटा नगर; उसमें एक मकान बहुत सुन्दर सजा हुआ था। गलीचे की जगह सफेद और काले पत्थरों का फर्श था; सफेद पत्थर से बने रंग-बिरंगे रत्नों से जटित कोठरी की दीवारें थीं। उस समय ताजमहल और मयूर सिंहासन के अनुकरण की प्रथा थी, उसी अनुकरण के अनुसार कोठरी की दीवारों में सफेद पत्थर के पक्षी असाधारण रूप से, कुछ लताओं पर बैठे, अनुपम सुन्दर फूलों पर पूँछ पसार कर मानों फल खा रहे थे। खूब मोटा गलीचा बिछा था, उसपर स्त्रियों का एक दल था—दस या पन्द्रह होंगी। रंग-बिरंगे कपड़ों की बहार थी, भाँति-भाँति के रत्नजटित आभूषणों से सुसज्जित थीं। उनके उज्ज्वल कोमल वर्ण के कमनीय शरीर थे;—कोई चमेली के रंग की, कोई लाल कमल जैसी, कोई चम्पे-सी अंगवाली, कोई कोमल दूब जैसी साँवली जैसे खान के रत्नों का उपहास कर रही थी। कोई पान खा रही थी, कोई सटक लगाये तम्बाकू पी रही थी, कोई-कोई नाक की बड़ी मोतीदार नथ को हिला कर भीमसिंह की पद्मिनी रानी की कहानी कह रही थी, कोई-कोई कान के हीरकजटित कर्णफूल को हिला-हिला कर निन्दा की मजलिस जमाये बैठी थीं। इनमें अधिकांश युवती ही थीं। हँसी-किलकारी की छटा छा गयी थी—खूब रंग जमा हुआ था।

युवतियों के हँसने का कारण था—एक बुढिया कुछ चित्र बेचने आकर इनके पल्ले पड गई थी। हाथी-दाँत की तख्तियों पर अंकित छोटे-छोटे अपूर्व चित्र थे। बुढिया एक-एक चित्र कपड़ों की तह से निकाल रही थी; युवतियाँ चित्रित व्यक्तियों का परिचय पूछ रही थीं।

बुढिया के प्रथम चित्र निकालते ही एक कामिनी ने पूछा—"यह किसकी तस्वीर है, आया?"

बुढिया ने कहा—"यह बादशाह शाहजहाँ की तस्वीर है।"

युवती ने कहा—"धत्, मैं इस दाढी को पहचानती हूँ, यह तो तेरे नानाजी की दाढी है।"

दूसरी ने कहा—"यह कैसी बात? नाना के नाम पर पर्दा डालती है? यह तो तेरे दुलहे की दाढी है।" बाद को सबकी ओर घूम कर रसवती ने कहा—"इस दाढी में एक दिन एक बिच्छू छिपा था—मेरी सखी ने झाड़ू से बिच्छू को मारा।"

इसपर हँसी का कहकहा लग गया। तस्वीरवाली ने और एक तस्वीर दिखाई और कहा—"यह बादशाह जहाँगीर की तस्वीर है।"

देखकर रसिक युवतियों ने पूछा—"इसका दाम कितना है?"

बुढ़िया ने बहुत दाम हाँका।

रसिका ने फिर पूछा—"यह तो तुमने तस्वीर का दाम बताया, असली आदमी को बेगम नूरजहाँ ने कितने में खरीदा था?"

तब बुढ़िया ने भी कुछ रसिकता के साथ जवाब दिया—"बिना मूल्य!"

रसिका ने कहा—"जब असल की यह दशा है, तब नकल को कमरे की एक खूँटी पर ही दे जाओ।"

फिर हँसी हुई। बुढिया ने चिढ़ कर चित्रों को लपेट लिया। उसने कहा—"दिल्लगी में तस्वीर नहीं खरीदी जाती। अब राजकुमारी के आने पर मैं तस्वीर दिखाऊँगी, उन्हीं के लिये मैं यह सब लाई हूँ।"

इसपर सातों ने सात ओर से आवाज लगाई—"अजी मैं राजकुमारी हूँ।

ऐ मेरी बूढ़ी। मैं राजकुमारी हूँ।" बुढ़िया पशोपेश में पड़कर चारों ओर देखने लगी। फिर हँसी का फव्वारा छूट पड़ा।

एकाएक हँसी के दौरे में कमी आयी शोर गुल रुक गया। केवल देखा-देखी, खींचा-तानी और वृष्टि के बाद हलकी बिजलीकी तरह होठों पर मुस्कुराहट रह गई। तस्वीरवाली ने इसका कारण जानने के लिए पीछे की ओर पलट कर देखा; जैसे पीछे किसी ने एक देवी की मूर्ति खड़ी कर दी हो।

बुढ़िया टकटकी लगाकर उस सर्व-शोभामयी संगमरमर जैसी कांतिमयी प्रतिमा की ओर देखती रह गई—कैसी सुन्दरी है! उम्र के लिहाज से बुढ़िया को उतना साफ दिखाई नहीं दिया—नहीं तो देखती कि पत्थर का रंग ऐसा नहीं होता, निर्जीव का ऐसा सुन्दर वर्ण नहीं होता। पत्थर तो दूर रहा, फूल में भी यह सुन्दर रंग-रूप नहीं होता। बुढ़िया ने देखा कि प्रतिमा मुस्कुरा रही है। क्या प्रतिमा कभी हँसती है? तब बुढ़िया मन-ही-मन सोचने लगी—यह तो प्रतिमा नहीं धनुषाकार काले भौंहोंवाली, चञ्चल सजल बड़ी-बडी आँखे उसकी ओर देखकर मुस्कुरा रही है।

बुढिया हैरान हो गई। औरों का मुँह देखने लगी—कुछ भी समझ न सकी। घबराहट के साथ रसिका रमणी-मण्डली के मुँह की ओर देख हाँफती हुई बुढ़िया ने कहा—"हाँ जी, तुम लोग बैठो न!"

एक सुन्दरी हँसी रोक न सकी। उसकी स्वर-लहरी लहरा उठी। मुँह से हँसी का फव्वारा आप से आप फूट पड़ा। युवती हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी। इस हँसी को देख विस्मय से खीझ कर बुढ़िया रो पड़ी।

तब प्रतिमा बोली। बहुत ही मीठे स्वर में उसने पूछा—"अरी, रोती क्यों है?"

अब बुढिया समझी कि यह प्रस्तर मूर्ति नहीं, जीवित कामिनी है; राजमहिषी या राजकुमारी होगी। बुढिया ने साष्टांग प्रणाम किया। यह प्रणाम राज-कुल के लिये नहीं; बल्कि सुन्दरता के लिए था। बुढ़िया ने जो सौन्दर्य देखा, उसे देखकर बरबस झुक जाना ही पड़ा।

दूसरा परिच्छेद

चित्र पर पदाघात

यह भुवनमोहिनी सुन्दरी, जिसे देखकर तस्वीवाली झुक पड़ी, रूपनगर की राजकन्या चञ्चलकुमारी है। जो अब तक बुढ़िया से मजाक कर रही थीं, वे सब उसकी सखियाँ और दासियाँ थीं। चञ्चलकुमारी इस कमरे में प्रवेश कर उस परिहास को देख मुस्कुरा रही थी। अब उसने मीठे स्वर में पूछा—"तुम कौन हो?"

सखियाँ परिचय देने लगीं—"यह तस्वीरें बेचने आई है।"

चञ्चलकुमारी ने कहा—"तब तुम लोग इतना हँसती क्यों हो!"

कोई-कोई लज्जित हुई। जिस सखी ने झाड़ूवाली दिल्लगी की थी, उसने कहा—"इसमें हम लोगों का दोष? आप ही कहिये हम क्या करतीं?" ...यह पुराने-पुराने बादशाहों की तस्वीरें लाकर दिखा रही थी। इसी पर हम ...ब हँस रही थीं। हमारे जैसे राजे-रजवाड़ों के घर में क्या शाहजहाँ और जहाँगीर की तस्वीरें नहीं हैं?"

बुढ़िया ने कहा—"होंगी क्यों नहीं बेटी, एक के रहते दूसरी खरीदी नहीं जाती? आपलोग न खरीदेंगी तो हम गरीबों का पालन-पोषण कैसे होगा?"

राजकुमारी ने बुढ़िया की तस्वीरें देखनी चाहीं। बुढ़िया एक-एक तस्वीर ...जकुमारी को दिखाने लगी। बादशाह अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, नूरजहाँ ...रमहल के चित्र दिखाये। राजकुमारी ने हँस-हँस कर सब तस्वीरें लौटा दीं ...र कहा—"हमारे यहाँ इन लोगों की कई तस्वीरें हैं। किसी हिन्दू राजा ...ी तस्वीर है?"

"कमी किस बात की है?" कह कर बुढ़िया ने राजा मानसिंह, राजा ...रबल, राजा जयसिंह आदि की तस्वीरें दिखाईं। राजपुत्री ने उन्हें भी ...टा दिया। कहा—"ये भी न लूँगी। ये सब हिन्दू नहीं, मुसलमानों के ...ग़ाम हैं।"

बुढ़िया ने हँसकर कहा—"मैं क्या जानूँ कि कौन किसका गुलाम है! मेरे पास जो है, उसे दिखाती हूँ। जो पसन्द हो ले लो।"

बुढ़िया और चित्र दिखाने लगी। राजकुमारी ने पसन्द कर राणा प्रताप, राणा अमरसिंह, राणा कर्णसिंह आदि के कई चित्र खरीदे। एक चित्र को बुढ़िया ने छिपा रखा, दिखाया नहीं।

राजकुमारी ने पूछा—"इसे छिपा क्यों रखा है?" बुढ़िया चुप रही। राजकुमारी ने फिर वही सवाल किया।

बुढ़िया ने डरते-डरते हाथ जोड़कर कहा—"मेरा कोई कसूर नहीं। यह असावधानी से अन्य तस्वीरों में मिलकर आ गई है।"

राजकुमारी ने कहा—"इतना डरती क्यों हो? ऐसी किसकी तस्वीर है कि दिखाते डरती हो?"

बुढ़िया—"देखने की जरूरत नहीं। यह आपके घराने के शत्रु की तस्वीर है।"

राजकुमारी—"आखिर किसकी?"

बुढ़िया ने डरते हुए कहा—"राजा राजसिंह की।"

राजकुमारी ने हँस कर कहा—"वीर पुरुष स्त्रियों के शत्रु नहीं होते। मैं वही तस्वीर लूँगी।"

तब बुढ़िया ने राजसिंह की तस्वीर उसके हाथ में दी। चित्र हाथ में लेकर राजकुमारी बहुत देर तक देखती रही। देखते-देखते उसका चेहरा खिल उठा; आँखे फैल गईं। एक सखी ने उसका भाव देख चित्र देखना चाहा। राजकुमारी ने उसके हाथ में चित्र देते हुए कहा—"देखो, देखने योग्य ही है!"

सखियों के हाथों-हाथ वह चित्र फिरने लगा। राजसिंह युवा पुरुष नहीं; फिर भी उनके चित्र को देख सभी प्रशंसा करने लगीं।

बुढ़िया ने मौका देख उस चित्र में दूना मुनाफा किया। इसके बाद उसने लालच में पड़ कर कहा—"राजकुमारीजी, यदि वीरों के चित्र लेना चाहती हैं, तो एक और दिखाती हूँ, इनके जैसा वीर संसार में और कौन होगा!"

यह कहती हुई बुढ़िया ने और एक चित्र निकाल कर राजपुत्री के हाथ में दिया।

राजकुमारी ने पूछा—"यह किसका चित्र है ?"

बुढ़िया—"बादशाह आलमगीर का।"

राजकुमारी—"लूँगी।"

यह कहकर राजकुमारी ने एक परिचारिका को चित्रों का मूल्य लाकर बुढ़िया को विदा करने को कहा। परिचारिका मूल्य लाने चली गई, इस बीच राजकुमारी ने सखियों से कहा—"आओ ज़रा तमाशा करें।"

एक समवयस्का ने कहा—"कौन-सा तमाशा...कहिये ?"

राजकुमारी ने कहा—"मैं बादशाह आलमगीर के इस चित्र को जमीन में रखती हूँ। सब मिलकर उसके मुँह पर बाएँ पैर से एक-एक लात मारो। देखूँ किसकी लात से उसकी नाक टूटती है।"

भय से सखियों का मुँह सूख गया। उनमें से एक ने कहा—"ऐसे वचन ज़बान पर न लाये, कुमारीजी! अगर कौवा भी सुन पायेगा, तो रूपनगर के गढ़ का एक पत्थर भी न बचेगा।"

हँस कर राजकुमारी ने चित्र जमीन पर फेंक दिया और कहा—"कौन लात मारेगी; मार!"

कोई आगे न बढ़ी। निर्मला नाम की एक सखी ने बढ़कर अंचल से मुँह ढककर हँसते-हँसते कहा—"ऐसी बातें मुँह से न निकालो।"

चञ्चलकुमारी ने धीरे-धीरे अलंकारों से सुशोभित अपने बाएँ पैर को औरंगजेब की तस्वीर पर रख दिया। शायद इससे चित्र की शोभा और भी बढ़ गई। चञ्चलकुमारी ज़रा हिली। चुरमुर की आवाज हुई। बादशाह औरंगजेब की तस्वीर राजपूत-कुमारी के पैर तले टूट गई। "सर्वनाश! यह क्या किया।" कहती हुई सखियाँ काँप उठीं।

राजपूत-कुमारी ने हँसकर कहा—"जैसे लड़कियाँ गुड्डे खेल कर सांसारिक शौक मिटाती हैं, वैसे ही मैंने मुगल बादशाह के मुँह पर लात मारने का शौक पूरा कर लिया। इसके बाद उन्होंने निर्मला के मुँह की ओर देखकर कहा—"सखी निर्मल, लड़कियों का शौक मिटता है; समय

पर उनकी सच्ची घर-गृहस्थी होती है। तब क्या मेरा शौक पूरा न होगा? क्या मै कभी जीते जी औरंगजेब के मुँह पर इस प्रकार......"

निर्मल ने राजकुमारी के मुँह पर हाथ रख दिया, मुँह से बात नहीं निकली, किन्तु इसका अर्थ सबकी समझ में आ गया। बुढिया का हृदय काँपने लगा, जहाँ ऐसी प्राणघातक बातें हों, वहाँ से छुटकारा कब मिलेगा? इसी समय उन तस्वीरों का मूल्य आ गया। रुपये पाते ही बुढ़िया जान लेकर भागी।

वह जैसे ही कमरे के बाहर आई, उसके साथ ही साथ निर्मल भी पहुँची। उसने वहाँ पहुँच एक अशर्फी उसके हाथ पर रखकर कहा—"बूढ़ी आया, देखो, तुमने जो कुछ देखा उसे किसी के सामने जुबान पर न लाना। राजकुमारी की जुबान में लगाम नहीं है। अभी वह लड़की ही तो ठहरी।"

बुढ़िया ने अशर्फी लेकर कहा—"भला यह भी कहने की बात है। मै तो आप लोगों की दासी हूँ—मैं कहीं ये सब बातें जुबान पर ला सकती हूँ?" निर्मल सन्तुष्ट हो लौट गई।

तीसरा परिच्छेद

चित्र चिन्तन

दूसरे दिन चंचलकुमारी एकान्त में बैठकर ध्यानपूर्वक खरीदे हुए चित्रों को देख रही थी। निर्मलकुमारी वहाँ उपस्थित हुई। उसे देख चंचल ने कहा—"निर्मल, इनमें किसके साथ तुम्हारी इच्छा विवाह करने की होती है?"

निर्मल ने कहा—"जिसके साथ विवाह करने की मेरी इच्छा थी, उसके चित्र को तो तुमने पैरों से कुचल डाला।"

चंचल—"औरंगजेब से?"

निर्मल—"क्यों, कोई आश्चर्य है?"

चंचल—"कम्बख्त के दाढी है। ऐसा पाखण्डी तो कोई पृथ्वी में पैदा ही नहीं हुआ।"

निर्मल—"कमबख्त को काबू में लाने में ही मुझे आनन्द है। तुम्हें याद नहीं, कि मैंने बाघ पाला था? मेरी इच्छा है, कभी न कभी मैं औरंगजेब से विवाह करूँगी ही।"

चचल—"मुसलमान से?"

निर्मल—"मेरे हाथ पडने पर औरंगजेब भी हिन्दू हो जायगा।"

चंचल—"तुम मरो।"

निर्मल—"इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, किन्तु यह किसकी तस्वीर है, जिसे तुम पचासों बार देख रही हो; उसकी जानकारी हो जाने पर मरूँगी।"

चंचल कुमारी ने और पाँच चित्रों में उस चित्र को मिलाकर कहा—"कौन-सी तस्वीर मैं पचास बार देख रही थी? किसी को कलंक लगाने से क्या होता है? बता, मैं कौन-सी तस्वीर पचास बार देख रही थी?"

निर्मल ने हँसकर कहा—"कोई तस्वीर देखे तो भला इसमें कलंक कैसा? राजकुमारी, तुम क्रोध करके स्वयं पकडा गयीं। उस भाग्यवान् को मैं तस्वीरों में ढूँढ़ कर निकाल सकती हूँ।"

चंचल कुमारी—"अकबरशाह की?"

निर्मल—"अकबर के नाम पर तो राजपूतानियाँ झाड़ू मारती हैं, वह हो ही नहीं सकता।"

यह कहकर निर्मल कुमारी हाथों में तस्वीरें लेकर ढूँढ़ने लगी। उसने कहा—"तुम जिस तस्वीर को देख रही थी, उस तस्वीर की पीठ पर एक काला दाग है।" उसी चिन्ह के सहारे निर्मल कुमारी ने एक चित्र निकाल कर चंचल कुमारी के हाथ में देते हुए कहा—"यही है।"

चंचल कुमारी ने चिढ़कर तस्वीर फेंक दी। कहा—"तेरे लिए और कोई काम नहीं है? इसी से तूने लोगों को जलाना शुरू किया है; दूर हो यहाँ से।"

निर्मल—"दूर क्यों होने लगी; फिर भी राजकुमारी, तुम्हें इस बूढ़े की तस्वीर देखने में क्या मिल रहा है ?"

चंचल—"बूढ़े ! तेरी आँखें फूटी हैं क्या ?"

निर्मल चंचल को चिढ़ा रही थी; और चंचल की चिढ़ देख चुपके-चुपके मुस्करा रही थी। निर्मल बहुत सुन्दर थी, मधुर और सरस मुस्कुराहट से उसका सौन्दर्य और भी बढ़ गया। निर्मल ने हँस कर कहा—"चाहे तस्वीर में बुढ़ापा न दिखाई दे, लोग कहते हैं कि महाराणा राजसिंह की अवस्था बहुत हुई। उनके दो पुत्र ब्याह के योग्य हो गये हैं।"

चंचल—"क्या यह राजसिंह की तस्वीर है ? मैं क्या जानूँ सखी !"

निर्मल—"कल ही खरीदा है और आज कुछ नहीं जानती, सखी ! इनकी उम्र भी हो गई है और यह भी नहीं कि वैसे सुपुरुष हों। तब तुम देखती क्या थी ?"

चंचल—"गौरी जाने भस्ममार, प्यारी जाने काला।
शची जाने सहस्र लोचन, वीर जाने वीर बाला ॥
गङ्गा गरजे शम्भु जटा, धरणी बैठे वासुकि फन में।
पवन बने तो अग्नि सखा, वीर रहेगा युवती मन में ॥"

निर्मल—"मैं देखती हूँ कि तुमने अपने मौत का फन्दा आप ही बिछा रखा है। क्या राजसिंह का नाम जपने से राजसिंह को कभी पा सकती हो ?"

चंचल—"पाने के लिये ही कोई जपता है ? क्या पाने के लिये ही तू बादशाह औरङ्गजेब को जपती है ?"

निर्मल—"मैं औरङ्गजेब को ऐसे जपती हूँ, जैसे बिल्ली चूहे को जपे। अगर मैं औरङ्गजेब को न पा सकी, तो मेरा बिलाई खेल इस जन्म में रह ही जायगा। क्या तुम्हारा भी यही हाल है ?"

चंचल—"मेरा वह हाल न सही, संसार का खेल इस जन्म में रह ही जाता है।"

निर्मल—"क्या कहती हो राजकुमारी, कहीं तस्वीर देखकर इतना हो सकता है ?"

चंचल—"कैसे क्या होता है, इसे हम-तुम क्या जानें? मैं कुछ नहीं जानती, क्या हो गया?"

हम भी यही कहते हैं। यह तो कहा नहीं जा सकता कि चंचलकुमारी को क्या हो गया। यह भी नहीं मालूम कि केवल तस्वीर देखने से क्या होता है। अनुराग तो मनुष्य-मनुष्य में होता है, क्या तस्वीर भी आदमी हो सकती है? हो सकती है, अगर तुम तस्वीर को छोड़ आप ही उसका ध्यान कर सको। हो सकती है, अगर तुमने पहले से ही मन में दृढ़ संकल्प कर रखा हो। फिर उस चित्र को हृत्तल पर अंकित मान लो। क्या चंचलकुमारी को ऐसा ही कुछ हुआ था? तब अट्ठारह वर्ष की लड़की के मन को हम कैसे समझें और समझायें?

चंचलकुमारी के मन में जो हो, मन की आग को सुलगा कर उसने अच्छा नहीं किया, क्योंकि सामने बहुत बड़ी विपद् है; किन्तु हम लोग उस विपद को बता सकें, इसमें अभी बहुत विलम्ब है।

चौथा परिच्छेद

बुढ़िया बहुत चालाक है

जिस बुढ़िया ने तस्वीर बेची थी, वह लौटकर अपने घर आई। उसका मकान आगरा में है। वह देश-विदेश घूमकर तस्वीरें बेचती है। बुढ़िया रूपनगर से आगरे पहुँची। उसने वहाँ जाकर देखा कि उसका पुत्र आया है। उसका लड़का दिल्ली में दूकान करता है।

बहुत ही अशुभ घडी में बुढ़िया रूपनगर तस्वीर बेचने गई थी। वह चंचलकुमारी के जिस साहस को देख आई थी, उसे किसी के सामने न कह सकने के कारण बुढ़िया का मन मसोस रहा था। निर्मलकुमारी उसे इनाम

देकर बात प्रकट करने को मना न कर देती, तब शायद बुढ़िया का मन इतना व्यग्र नहीं भी हो सकता था ? किन्तु जब उसने बात खोलने को विशेष रूप से मना कर दिया तब बुढ़िया का मन आप ही उसे खोलने को आकुल हो उठा है, तब वह क्या करे। एक तो सचाई का वचन दे आई है, उस पर हाथ फैला के अशर्फी लेकर नमक भी खाया; बात खुलने पर दुर्दान्त बादशाह के हाथों चञ्चलकुमारी के विशेष अनिष्ट की भी सम्भावना है, इसे भी वह समझ रही थी, इसीलिए एकाएक वह किसी के सामने कुछ कह न सकी। किन्तु इससे दिन में बुढिया से खाया नहीं जाता, रात को नींद नहीं आती। अन्त में उसने आप ही आप कसम खाई कि यह बात किसी से न कहेगी। इसके बाद ही उसका लडका भोजन करने बैठा। बुढ़िया ने लड़के की थाली में एक स्वादिष्ट कबाब रखकर कहा—"खा बेटा खा ले, रूपनगर से आने के बाद एक दिन ऐसा कबाब बना था, और कभी नहीं।"

खाते-खाते लडके ने कहा—"अम्मी जान! आपने रूपनगर का हाल कहने को कहा था न।"

माँ ने कहा—"चुप रहो, ऐसी बात जुबान पर न लाओ, बेटा। मैंने क्या कहा था, शायद यों ही कुछ कह बैठी थी।"

इस समय बुढिया को यह भूल गया था कि पहले एक दिन जब चंचल-कुमारी की बात उसके पेट में बहुत खौलने लगी, तब उसने पुत्र के सामने कुछ जिक्र किया था। इस बात का जवाब सुन लड़के ने कहा—"ऐसी कौन-सी बात है जो चुप रहूँ, माँ!"

माँ—"सुनने लायक बात नहीं है, बेटा!"

लड़का—"तब रहने दीजिये।"

माँ—"और कुछ नहीं, रूपनगरवाली कुमारी की बातें थी।"

लड़का—"बस, यह तो सीधी बात है कि बहुत खूबसूरत है!"

माँ—"यह बात नहीं, उस बन्दी की मजाल बहुत बड़ी है। या अल्लाह! मैं क्या कह बैठी।"

लड़का—"कहाँ रूपनगर और कहाँ उसकी राजकुमारी की मजाल ! इस बात के कहने की ही क्या जरूरत है और मैं सुनकर ही क्या करूँगा ?"

माँ—"उसकी मजाल तो देखो बेटा, लौंडी शाहेआलम को भी कुछ नहीं गिनती !"

लड़का—"उसने शाहेआलम को गाली दी होगी ।"

माँ—"सिर्फ गाली ही नहीं बेटा, उससे भी कुछ बढ़कर ।"

लड़का—"उससे भी बढ़कर; बढ़कर क्या हो सकता है ? शाहेआलम को वह मार तो सकती नहीं ।"

माँ—"उससे भी बढ़कर ।"

लड़का—"मारने से भी बढ़कर ?"

माँ—"कुछ पूछो न बेटा, मैंने उसका नमक खाया है ।"

लड़का—"नमक खाया है, यह कैसे माँ ?"

माँ—"अशर्फी ली है ।"

लड़का—"यह क्यों ?"

माँ—"इसलिए कि उसके गुनाह की बात किसी से कहना मुनासिब नहीं ।"

लड़का—"यह बात है तो मुझको भी एक अशर्फी दो ।"

माँ—"काहे को ?"

लड़का—"नहीं तो बताओ कि बात क्या है ?"

माँ—"कुछ वैसी बात नहीं; उसने बादशाह की तस्वीर को—तौबा !" तौबा ! बात निकल ही पड़ी ।

लड़का—"तस्वीर तोड डाली ?"

माँ—"अरे बेटे, लात मार कर तोड़ डाली । तौबा ! मुझसे नमक-हरामी हुई ।"

लड़का—"इसमें नमकहरामी काहे की ! तुम मेरी माँ हो और मैं बेटा; मुझसे कहने में नमकहरामी कैसी ?"

माँ—"देखना बेटा, किसी से कहना नहीं ।"

लड़का—"तुम खातिर-जमा रक्खो । मैं किसी से न कहूँगा ।"

तब बुढ़िया ने विशेष रङ्ग चढा कर चित्र के कुन्दले जाने का सारा हाल कह सुनाया।

पाँचवाँ परिच्छेद

दरिया बीबी

बुढिया के लड़के का नाम था शेख खिज्र। वह चित्रकार था। उसकी दिल्ली में दुकान थी। माँ के पास दो दिन रह कर वह दिल्ली चला गया। दिल्ली में उसकी बीबी थी। वह दुकान में ही रहती थी। बीबी का नाम था फातिमा। खिज्र ने अपनी माँ से रूपनगर का जो हाल सुना था, वह सब फातिमा से कह दिया। सब बातें बताने के बाद खिज्र ने फातिमा से कहा—"तुम अभी दरिया बीबी के पास जाओ। इस समाचार को बेगम साहबा के यहाँ बेचने को कहना—शायद कुछ मिल जाय।"

दरिया बीबी पास के ही मकान में रहती है। मकान के पिछवाड़े से जाने की राह है। इसलिये फातिमा बीबी बिना पर्दे के ही दरिया बीबी के घर जा पहुँची।

खिज्र या फातिमा का विशेष परिचय देने की जरूरत नहीं पड़ी; किन्तु दरिया बीबी का विशेष परिचय चाहिए ही। दरिया बीबी का असल नाम दरीवुन्निसा या ऐसी ही कुछ है। किन्तु इस नाम से कोई उन्हें बुलाता न था—लोग दरिया बीबी ही कहते थे। उसके माँ-बाप नहीं थे, केवल बडी बहन और एक बूढी फूफी या खाला, ऐसा ही कुछ थी। मकान में कोई मर्द नहीं था। दरिया बीबी की उम्र सत्रह वर्ष से अधिक नहीं—उसपर कुछ नाटी थी, पन्द्रह वर्ष से अधिक नहीं जान पड़ती थी। दरिया बीबी बहुत सुन्दरी थी, खिले हुए फूल जैसी, सदा खिली हुई।

दरिया बीबी की बहन बहुत अच्छा सुरमा और इत्र तैयार करती थी। उसी को बेच कर इन लोगों की गुजर-बसर होती थी। वह उन्हें इक्का या पालकी की सवारी से बड़े आदमियों के घर बेच आती थी। गरीब होने से रात को पैदल भी जाती थी। बादशाह के अन्तःपुर में किसी को जाने का अधिकार नहीं था। बाहरी औरतें भी नहीं जा सकती थीं। किन्तु दरिया के वहाँ पहुँचने का उपाय था। इसे हम बाद में कहेंगे।

फातिमा ने जाकर दरिया बीबी से चंचलकुमारी का सब हाल कहा और यह भी कह दिया कि इस समाचार को बेचकर रुपये लाने चाहिए।

दरिया बीबी ने कहा—"रङ्गमहल में जाना पडेगा। परवाना कहाँ है?"

फातिमा ने कहा—"तुम्हारे ही पास है।"

तब दरिया बीबी ने पिटारी खोलकर एक कागज निकाला। उसे उलट-पलट कर देखा और कहा—"यही तो है।"

तब दरिया बीबी कुछ सुरमा और परवाना लेकर बाहर निकली।

———

राजसिंह

द्वितीय खण्ड

(स्वर्ग में नरक)

पहिला परिच्छेद

अदृष्ट गणना

चाँदनी की रोशनी में सफेद सङ्गमरमर की सीढ़ियों से बहने वाली नील-सलिला यमुना के किनारे नगरियोंमें प्रधान महानगरी दिल्ली प्रदीप्त मणिखण्ड के समान चमक रही है। सहस्र सङ्ग, सहस्र मर्मर आदि पत्थरों के बने मीनार, गुम्बज, बुर्ज ऊँचे होकर चन्द्रलोक की रश्मिराशि को प्रकट कर रहे हैं, समीप ही कुतुबमीनार की वृहत् चोटी धुएँ के ऊँचे स्तम्भ के समान दिखाई दे रही है। जामा मसजिद के चार मीनार नीलाकाश को भेदते हुए चाँदनी में चमक रहे हैं। सड़कों के किनारे-किनारे बाजार-दुकानों में सैकड़ों दीप-मालाएँ, मालियों की फूल की ढेरियों की सुगन्ध, नागरिकों के गले में पड़े फूल के गजरों की सुगन्ध, इत्र और गूगल की सुगन्ध, घर-घर सङ्गीत की ध्वनि, तरह-तरह के बाजों के स्वर, नागरिकों की कभी उच्च और कभी मधुर हँसी, जेवरों की झनकार—यह सब एकत्र हो नरक में नन्दन-कानन की छाया की तरह विचित्र माया फैला रहे थे। छितराये हुए फूल, इत्र और गुलाब का छिड़काव, कंचनियों की नूपुर ध्वनि, गानेवालियों के गले में सातों सुरों का उतार-चढाव, बाजे की बहार, कमनीय कामिनियों की हथेली से ताल की पटपटाहट, शराब का बहाव, खिचड़ी और पुलाव के ढेर, विकट, कपट, मधुर, चतुर चारों प्रकार की हँसी, राह-राह में घोड़ों के टाप की आवाज, पालकी ढोनेवालों की विचित्र ध्वनि, हाथियों के घण्टे की आवाज, इक्कों की झनझनाहट, गाड़ियों की घरघराहट।

नगर में सबसे गुलजार चांदनी चौक है। वहाँ राजपूत या तुर्क घुड़सवार जगह-जगह पहरा दे रहे हैं। संसार की सब तरह की मूल्यवान् चीजें दुकानों में तह की तह सजाकर रखी हुई हैं। कहीं कंचनियाँ राह में लोगों की भीड़ जमा कर सारङ्गी के स्वर पर नाच रही हैं, गा रही हैं। कहीं जादूगर जादू का

खेल दिखा रहा है, प्रत्येक के पास सैकड़ों दर्शक घेर कर खड़े तमाशा देख रहे हैं। सबसे अधिक भीड़ ज्योतिषियों को घेरे हुई है। मुगल बादशाहों के समय ज्योतिषियों का जैसा आदर था, वैसा शायद और कभी नहीं हुआ। हिन्दू या मुसलमान सभी उनका समान आदर करते थे। मुगल बादशाह लोग ज्योतिष शास्त्र के बिलकुल ही वशीभूत थे, उनकी गणना जाने बिना बहुत बड़े काम में हाथ नहीं लगते थे। जो सब घटनाएँ इन सब ग्रन्थ में वर्णित हुई हैं, उनके कुछ बाद औरङ्गजेब के छोटे लड़के अकबर राज-विद्रोही हो गये थे। पचास हजार राजपूत सेना उनकी सहायक थी, औरङ्गजेब के साथ बहुत थोड़ी सेना थी। किन्तु ज्योतिषियों की गणना के ऊपर भरोसा न कर अकबर ने सैन्य-परिचालन में देर की। इसी बीच औरङ्गजेब ने कौशल से उनकी चेष्टा निष्फल कर दी।

दिल्ली के चाँदनी चौक में, ज्योतिषी लोग सड़क पर आसन बिछा पोथी-लेकर सिर पर पगड़ी बांधे बैठे हैं। सैकड़ों स्त्री-पुरुष अपने-अपने भाग्य की गणना कराने के लिये उनके पास बैठे हुए हैं। पर्दानशीन बीबियाँ भी बुर्का ओढ़ कर जाने में संकोच नहीं करतीं। एक ज्योतिषी के आसन के आस-पास बहुत भीड़ है। उस भीड़ के बाहर बुर्का ओढ़े एक युवती घूम रही है। वह ज्योतिषी के पास जाना चाहती है, किन्तु हिम्मत करके जनता को ठेल कर पहुँच नहीं पाती। इधर-उधर देख रही है। इसी समय उसी स्थान से एक घुड़सवार पुरुष निकला।

घुड़सवार जवान आदमी है। देखने से कोई मुगल जान पड़ता है—बहुत खूबसूरत। सामान्यतः मुगल जाति में ऐसा खूबसूरत पुरुष दुर्लभ है। उसके पहनावे की भड़कीली परिपाटी देख जान पड़ता है कि वह सम्भ्रान्त पुरुष है। उसका घोड़ा भी अच्छी नस्ल का है।

भीड़ की वजह से घुड़सवार बहुत धीरे घोड़ा हाँक रहा था। जो युवती इधर-उधर देख रही थी, उसने इसकी ओर देखा। देखते ही उसने शीघ्रता से आगे बढ़ लगाम पकड़ घोड़े को रोक दिया। कहा—"खाँ साहब, मुबारक, मुबारक!"

घुड़सवार का नाम मुबारक है। उसने पूछा—"तुम कौन हो?"

युवती ने कहा—"या अल्लाह, आप क्या पहचानते भी नहीं?"

मुबारक ने पूछा—"क्या दरिया?"

दरिया ने कहा—"जी हाँ।"

मुबारक—"तुम यहाँ कैसे?"

दरिया—"क्यों मैं तो सभी जगह आती-जाती हूँ। तुमने रोक तो लगाई नहीं, तुमने कभी मना किया है?"

मुबारक—"मैं क्यों मना करूँ? तुम मेरी हो कौन?"

इसके बाद मीठे स्वर में मुबारक ने पूछा—"क्या कुछ चाहती हो?"

दरिया ने कान पर हाथ रख कर कहा—"तौबा! तुम्हारा रुपया मेरे लिए हराम है। हमलोग इत्र बनाना जानती हैं।"

मुबारक—"तब मुझे किसलिए रोका है?"

दरिया—"उतरो तब कहूँ।"

मुबारक घोड़े से उतर गया। उसने कहा—"अब कहो।"

दरिया ने कहा—"इस भीड के भीतर एक ज्योतिषी बैठे हुए हैं। ये नये आये हैं। इनके जैसा ज्योतिषी कभी आया ही नहीं। इनसे तुम्हें अपनी किस्मत पूछनी चाहिए।"

मुबारक—"मेरी किस्मत के हाल से तुम्हें क्या मतलब? तुम अपनी किस्मत दिखाओ।"

दरिया—"अपनी किस्मत का हाल मैं जानना नहीं चाहती। बिना हाल जाने ही मैं सब कुछ जान चुकी हूँ। तुम्हारी किस्मत का हाल जानने की ही मुझे जरूरत है।"

यह कह दरिया मुबारक का हाथ पकड खींच ले जाने को तैयार हुई। मुबारक ने कहा—"मेरे घोड़े को कौन पकड़ेगा?"

कुछ लड़के सड़क पर खडे लड्डू खा रहे थे। मुबारक ने कहा—"तुममें से कोई थोड़े समय तक मेरे घोडे को पकड़े रहो। मैं लौट कर तुम लोगों को और लड्डू खिलाऊँगा।"

यह कहते ही दो-तीन लड़कों ने आकर घोड़े को पकड़ लिया। एक प्रायः नङ्गा था, वह घोड़े पर चढ बैठा। मुबारक उसे मारने चला। किन्तु मारने की जरूरत नहीं पडी, घोड़े ने एक बार पिछले पैरों को उछाल उसे फेंक दिया। उसको जमीन में गिरा देख अन्य लड़के उसका लड्डू छीनकर खाने लगे। तब मुबारक निश्चिन्त हो अपने भाग्य की गणना कराने लगा।

मुबारक को देख अन्य लोग रास्ते से हट गये। दरिया बीबी उसके साथ-साथ गई। ज्योतिषी के सामने मुबारक ने हाथ फैला दिया। ज्योतिषी ने अच्छी तरह देख-सुनकर कहा—"आप पहले जाकर विवाह करिये।" पीछे भीड़ के भीतर छिपी दरिया बीबी ने कहा—"शादी हो गई है।"

ज्योतिषी ने पूछा—"यह कौन बोल रहा है?"

मुबारक ने कहा—"वह एक पगली है। आप यह बता सकते हैं कि मेरी कैसे होगी?"

ज्योतिषी ने कहा—"आप किसी राजपुत्री से विवाह करें।"

मुबारक ने पूछा—"तब क्या होगा?"

ज्योतिषी ने जवाब दिया—"आप के पद की वृद्धि होगी।"

भीड के भीतर से दरिया बीबी ने कहा—"और मौत?"

ज्योतिषी ने पूछा—"यह कौन है?"

मुबारक—"वही पगली।"

ज्योतिषी—"पगली नहीं है। जान पड़ता है कि वह आदमी नहीं है। मैं अब आप का हाथ न देखूँगा।"

मुबारक की समझ में कुछ भी न आया। ज्योतिषी को कुछ देकर उसने भीड़ में दरिया को ढूँढ़ा। किन्तु वह कहीं भी दिखाई नहीं दी। तब वह कुछ उदास हो घोडे पर सवार होकर किले की ओर बढ़ा। यह कहने की जरूरत नहीं कि लड़कों को कुछ लड्डू मिले।

———

दूसरा परिच्छेद

जेबुन्निसाँ

दरिया के समाचार बेचने का क्या हाल हुआ? समाचार बेचा होगा और क्या? किसके हाथ बेचा? यह समझाने के लिये मुगल सम्राट् के गढ़ का कुछ परिचय देना होगा।

भारतवर्ष की जो महिलाएँ राज्य-शासन में सुदक्ष हुई हैं उनके नाम विख्यात हैं। पश्चिम में शायद जेनोबिया, इसाबेला, एलिजाबेथ या कैथराइन के नाम मिलते हैं, किन्तु भारतवर्ष के राजकुलों में पैदा होने वाली अनेक देवियाँ राज्य शासन में सुदक्ष हुई हैं। मुगल सम्राटों की लड़कियाँ इस विषय में खूब प्रसिद्ध हैं। किन्तु जिस परिमाण में वे राजनीति-विशारद थीं, उसी परिमाण में इन्द्रिय-परवश और भोग-विलास में सराबोर भी हुईं। औरङ्गजेब की दो बहनें हैं, जहाँनारा और रोशनआरा। जहाँनारा बादशाह शाहजहाँ की प्रधान सहायिका थी। शाहजहाँ बिना उसकी सलाह के कोई राज-काज करते न थे। वे उसकी सलाह से चलकर काम में सफल और यशस्वी होते थे। वह पिता की बहुत हितैषिणी थी। किन्तु वह जहाँ तक इन गुणों में विशिष्ट थी, उससे अधिक इन्द्रिय-परायण थी। इन्द्रिय की परितृप्ति के लिये कितने ही लोग उसके अनुग्रह के पात्र थे। ऐसे लोगों में, यूरोपीय यात्रियों ने एक ऐसे व्यक्ति का भी नाम लिखा है, जिसे लिखकर हम अपनी लेखनी को कलुषित नहीं कर सकते।

रोशनआरा पिता से द्वेष रखती थी और औरङ्गजेब की पक्षपातिनी थी। वह भी जहाँनारा की तरह राजनीति-विशारद और सुदक्ष थी, और इन्द्रिय के सम्बन्ध में जहाँनारा जैसी ही विचारशून्य और तृप्तिशून्य थी। जब पिता को पदच्युत और कैद कर औरङ्गजेब उनका राज्य अपहरण करने में प्रवृत्त हुआ, तब रौशनआरा उनकी प्रधान मददगार थी। औरङ्गजेब भी रौशनआरा के वशीभूत था। औरङ्गजेब की बादशाहत में रौशनआरा द्वितीय बादशाह थी।

किन्तु रौशनआरा के अभाग्य से एक महाशक्तिशालिनी प्रतिद्वन्द्विनी ने उसके विरुद्ध सिर उठाया था। औरङ्गजेब की तीन लड़कियाँ थीं। छोटी दो कन्याओं को उन्होंने दो कैदी भतीजों को ब्याह दिया था। बड़ी लड़की जेबुन्निसा ने विवाह नहीं किया, फूफियों की तरह वह भी वसन्त के भ्रमर की भाँति फूलों का मधुपान करती फिरती थी।

फूफी-भतीजी दोनों ही अकसर मदन-मन्दिर में बराबरी करने को डट जाती थीं, इसलिये भतीजी ने फूफी को विनष्ट करने का सङ्कल्प किया। फूफी की महिमा वह पिता के आगे बखानने लगी। इसका फल यह हुआ, कि रौशनआरा संसार में अदृश्य हो गई, जेबुन्निसा ने उसकी पद-मर्यादा और महत्ता प्राप्त की।

हमने पद-मर्यादा की जो बात कही, उसका कुछ मतलब है। बादशाह के जनानखाने में खोजा के अतिरिक्त और कोई पुरुष प्रवेश नहीं पाता था; कम से कम प्रवेश का नियम नहीं था। जनानखाने की पहरेदारी के लिये स्त्रियों की एक सेना थी। जैसे हिन्दू राजा मुसलमानिनों को पहरेदारिन बनाते थे, वही मुगल बादशाह भी करते थे। तातार जाति की सुन्दरियाँ मुगल सम्राट् के जनानखाने की पहरेदारिन थीं। इस स्त्री-सैन्य की एक नायिका थी; वह सेनापति के पद पर थी। उसका पद ऊँचा माना जाता था और उसी के अनुसार उसका मान भी होता था। इस पद पर रोशनआरा नियुक्त थी। वह जब एकाएक बदनामी के अन्धकार में छिप गई, तब जेबुन्निसा उसके पद पर नियुक्त हुई थी। जो इस पर नियुक्त होती, वह हर तरह से जनानखाने की मालकिन होती थी। इसीलिये जेबुन्निसा रङ्गमहल की सब कुछ थी। सभी उसके अधीन थीं, पहरेदारिनें, खोजा, बाँदी, दर्बान, खबर ले जानेवाला, रसोईदारिन सभी उसके अधीन थे। इसलिये वह अपने इच्छानुसार महल में लोगों को आने देती थी।

दो श्रेणी के लोग उसकी कृपा से जनानखाने में प्रवेश कर पाते थे—एक प्रणयी लोग, दूसरे वे जो समाचार पहुँचाते थे।

पहले ही कहा गया है कि जेबुन्निसाँ राजनीतिज्ञ थी, मुगल साम्राज्यरूपी जहाज की पतवार एक प्रकार से उसके हाथ में थी। वह मुगल-साम्राज्य की 'नियामक नक्षत्र' भी कही गई है। विदित है कि राजनीति सम्प्रदाय का सबसे अधिक प्रयोजनीय है संवाद। चुपचाप सब मालूम होना चाहिए कि कहाँ क्या हो रहा है। दुर्मुख के मालिक रामचन्द्र से लेकर बिस्मार्क तक सभी इसके प्रमाण हैं। जेबुन्निसा इस बात को अच्छी तरह समझती थी। चारों ओर से वह समाचार संग्रह करती थी। सवाद सग्रह करने के लिये उसके कुछ खास आदमी नियुक्त थे। उन्हीं में तस्वीरवाला खिज्र भी एक था। उसकी माँ देश-विदेश में तस्वीरें बेचने जाती थी। खिज्र अपनी माँ से समाचार-संग्रह करता था। दरिया बीबी की बहन भी इत्र और सुरमा बेचने के बहाने दिल्ली में घूम-घूम कर बहुतेरे समाचार-संग्रह कर लिया करती थी। यह सब समाचार दरिया जेबुन्निसाँ के पास पहुँचाती थी। जेबुन्निसाँ हर बार कुछ-न-कुछ इनाम देती थी। इसी का नाम समाचार-विक्रय है। समाचार बेचने के कारण ही दरिया के लिये महल में जाने में कोई बाधा नहीं थी; इसके लिए जेबुन्निसाँ ने उसे एक परवाना दिया था। परवाने में लिखा था—"दरिया बीबी सुरमा बेचने के लिये रङ्गमहल में प्रवेश कर सकती है।"

किन्तु दरिया बीबी के रङ्गमहल में प्रवेश करने के बारे में एकाएक विघ्न आ पड़ा। उसने देखा कि मुबारक खाँ ने रङ्गमहल में प्रवेश किया। उस समय तक दरिया वहाँ पहुँच न पाई। वह कुछ देर करके आई थी।

दरिया ने वहाँ पहुँच कर देखा कि जहाँ जेबुन्निसाँ का विलास-भवन है, वहीं मुबारक पहुँच गया है। दरिया वाटिका के एक वृक्ष की छाया में छिपकर प्रतीक्षा करने लगी।

———

तीसरा परिच्छेद

ऐश्वर्य का नरक

दिल्ली महानगरी का सारभूत दिल्ली का दुर्ग है; दिल्ली दुर्ग का सारभूत राजप्रासाद-माला है। इस राजप्रासाद-माला की थोड़ी-सी भूमि में जितनी धनराशि, रत्नराशि, रूपराशि और पापराशि थी, वह सारे भारतवर्ष में नहीं थी। राजप्रासाद-माला का सारभूत जनानखाना या रङ्गमहल था। यहाँ कुबेर और कामदेव का राज्य था। चन्द्र-सूर्य का प्रवेश वहाँ नहीं था; यम भी बिना छिपे वहाँ जा नहीं सकते थे; वायु की भी गति नहीं थी। वहाँ के सभी कमरे विचित्र थे; सजावट विचित्र थी; जनानखाने में रहने वाले सभी विचित्र थे। ऐसे रत्न जड़े सङ्गमरमर के बने कमरे और कहीं नहीं थे—ऐसी नन्दन-कानन-नन्दिनी उद्यानशाला भी और कहीं नहीं; ऐसी उर्वशी-मेनका-रम्भा की गर्व-खर्वकारिणी सुन्दरियों की श्रेणी भी और कहीं नहीं; ऐसा भोग-विलास भी और कहीं नहीं; इतना महापाप भी और कहीं नहीं!

इसमें जेबुन्निसा का विलास-भवन ही हमारा उद्देश्य है।

विलास-भवन बहुत ही मनोहर है। सफेद और काले पत्थरों का फर्श है। सङ्गमरमर की बनी दीवार है; पत्थर में रत्न की लता, रत्न के पत्ते, रत्न के फूल और रत्न के ही फल, रत्न की चिड़ियाँ और रत्न के ही भौंरे हैं। कुछ ऊँचाई पर सर्वत्र दर्पण लगे हुए हैं। उसके किनारे-किनारे सोने के कामदार चौखटे हैं। ऊपर रुपहले तार का चँदवा है, उसमें मोती की छोटी-छोटी झालरें हैं और ताजे चुने हुए फूलों की बड़ी झालरें हैं। फर्श पर नव-वर्षा में उगी हुई कोमल दूब से भी सुकोमल गलीचा बिछा हुआ है; उस पर हाथी-दाँत से बना रत्नों अलङ्कृत पलँग है। उसपर जरी का कामदार गद्दा और कामदार मखमल के तकिये हैं। शय्या के ऊपर भाँति-भाँति के पात्रों में गुच्छे के गुच्छे सुगन्धित पुष्प हैं; पात्रों में ही गुलाब और इत्र हैं, सुगन्ध और होशियारी से बनाये हुए पान के बीड़े हैं और अलग सोने की सुराही में स्वादिष्ट शराब है। सबके बीच

फूल और रत्न के ढेरों को मात करती हुई प्रौढ़ा जेबुन्निसाँ पान का पात्र हाथ में लिए खिड़की से रात के तारों की शोभा देखती हुई, मधुर पवन से फूलों से गुँथे हुए मस्तक को शीतल कर रही है; इसी समय मुबारक खाँ वहाँ पहुँचा।

मुबारक जेबुन्निसाँ की बगल में जा बैठा और पान आदि का प्रसाद पाकर धन्य हुआ।

जेबुन्निसाँ ने कहा—"बिना ढूँढे जो आये वही प्रेमी है।"

मुबारक ने कहा—"बिना बुलाए आया हूँ, बेअदबी हुई। लेकिन भिखमगे बिना बुलाए ही आया करते हैं।"

जेबुन्निसाँ—"तुम कौन-सी भिक्षा माँगते हो, प्यारे?"

मुबारक—"भीख यही है कि मुल्ला के हुक्म और शब्द में मेरा अधिकार हो।"

जेबुन्निसाँ ने हँसकर कहा—"फिर वही पुरानी बात! बादशाहजादियाँ कहीं शादी करती हैं?"

मुबारक—"तुम्हारी छोटी बहनों ने तो शादी की है।"

जेबुन्निसाँ—"उन सबने शाहजादों से शादी की है। शाहजादियाँ शाहजादों के अलावा और किसी से शादी नहीं करतीं। भला शाहजादी दो सौ के मनसबदार से शादी कर सकती है?"

मुबारक—"तुम मलकए-मुल्क हो। बादशाह से जो कहोगी, वे वही करेंगे, इस बात को सब जानते हैं।"

जेबुन्निसाँ—"जो अनुचित है उसके लिए मैं बादशाह से अर्ज न करूँगी।"

मुबारक—"और यह क्या उचित है शाहजादी?"

जेबुन्निसाँ—"वह क्या?"

मुबारक—"यही महापाप?"

जेबुन्निसाँ—"कौन महापाप कर रहा है?"

मुबारक ने सिर झुका लिया। फिर उसने कहा—"क्या तुम समझ नहीं रही हो?"

जेबुन्निसाँ—"अगर इसे महापाप समझते हो, तो अब न आना।"

मुबारक ने गिड़गिडा कर कहा—"अगर मुझमें यह मजाल होती तो मैं कभी न आता। किन्तु मैं इस खूबसूरती के हाथ बिक चुका हूँ।"

जेबुन्निसाँ—"अगर बिक चुके हो—अगर मेरे खरीदे हुए हो, तो जो मैं कहती हूँ, वही करो; चुपचाप बैठे रहो।"

मुबारक—"अगर अकेला ही इस पाप का भागी होता, तो चुपचाप बैठा भी रहता। किन्तु मैं तुम्हें अपने से अधिक चाहता हूँ।"

जेबुन्निसाँ ऊँचे स्वर से हँसी। बोली—"बादशाहजादी को पाया!"

मुबारक—"पाप पुण्य अल्लाह का हुक्म है।"

जेबुन्निसाँ—"अल्लाह का यह हुक्म गरीबों के लिए है, काफिरों के लिए है। मैं क्या हिन्दुओं के ब्राह्मणों की लड़की हूँ या राजपूत की लड़की हूँ जो एक खाविन्द कर जिन्दगी भर गुलामी करूँ और आखिर आग में जल मरूँ? अल्लाह को अगर वही बनाना होता, तो बादशाहजादी न बनाते।"

मुबारक मानों आकाश से गिर पड़ा। इस तरह की घृणित बात उसने कभी सुनी नहीं थी। पाप के स्रोत में बही हुई दिल्ली में भी नहीं सुनी। अगर उसके सामने और कोई यह बात कहे होता तो वह कहता, "तुझपर कहरेखुदा पड़े।" किन्तु जेबुन्निसाँ के सौन्दर्य-सागर में वह डूब चुका था; उसे और कहीं का ज्ञान न था। वह केवल आश्चर्य में आकर चुप रह गया।

जेबुन्निसाँ ने कहना शुरू किया—"इन बातों को छोड़ो। बहुतेरी बातें हैं। अब आगे यह बात कभी मेरे सुनने में न आये। अगर सुना तो..."

मुबारक ने कहा—"मुझे डराने-धमकाने की कोई जरूरत नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम जिस पर नाखुश होगी, उसका सिर एक क्षण भी धड़ के ऊपर रह न सकेगा। किन्तु शायद तुम यह मानती हो कि मुबारक मौत से कभी नहीं डरता।"

जेबुन्निसाँ—"मौत के अलावा क्या मुबारक के लिए कोई सजा नहीं?"

मुबारक—है, तुम्हारी जुदाई।"

जेबुन्निसाँ—"बारबार बेमतलब की बात कहने से वही हो सकता है।"

मुबारक समझ गया कि एक के होने से दोनों ही होगा। अगर वह पापिष्ठा समझ कर जेबुन्निसाँ का त्याग करे, तो उसे निश्चय मरना पड़ेगा। जेबुन्निसाँ मुगल-साम्राज्य की सब कुछ है; स्वयं औरङ्गजेब उसके आज्ञाकारी हैं; किन्तु इससे मुबारक दुखी नहीं। उसे इस बात का दुख है कि वह बादशाहजादी के रूप पर मुग्ध है; उसमें सामर्थ्य नहीं कि वह उससे अलग रह सके। इस पाप के कीचड़ से निकलने की उसमें ताकत नहीं।

इसलिये मुबारक ने विनीत भाव से कहा—"आप अपनी मरजी से जितनी मेहरबानी दिखलायेंगी, उससे मेरी जिन्दगी पवित्र होगी। मैं जो और ख्वाहिशें रखता हूँ, उसे गरीबों का फर्ज समझियेगा। कौन-सा गरीब है, जो दुनिया की बादशाहत पाने की ख्वाहिश नहीं रखता?"

इसपर प्रसन्न हो शाहजादी ने मुबारक को शराब का इनाम दिया। मधुर प्रेमालाप के बाद उसे इत्र और पान देकर विदा किया।

मुबारक के रङ्गमहल से निकलने के पहिले ही दरिया बीबी ने उसे रोका। और किसी के न सुन सकनेवाली आवाज में उसने कहा—"क्यों, शाहजादी से शादी ठीक हो गयी?" मुबारक ने आश्चर्य के साथ पूछा—"तुम कौन हो?"

दरिया—"वही दरिया।"

मुबारक—"दुश्मन, शैतान! तू यहाँ कहाँ?"

दरिया—"नहीं जानते कि मैं समाचार बेचा करती हूँ?"

मुबारक काँप उठा। दरिया बीबी ने कहा—"तब क्या राजपुत्री के साथ शादी होगी?"

मुबारक—"राजपुत्री कौन?"

दरिया—"शाहजादी जेबुन्निसाँ बेगम साहिबा। क्या शाहजादी को राजपुत्री नहीं कह सकते?"

मुबारक—"मैं तुझे यहीं मार डालूँगा।"

दरिया—"तब मैं शोर मचाती हूँ।"

मुबारक—"अच्छा, समझ ले कि मैं खून न करूँगा। लेकिन बता कि तू किसके पास खबर बेचने आई है।"

दरिया—"यह कहने के लिए ही तो खड़ी हूँ। शाहजादी जेबुन्निसाँ के पास।"

मुबारक—"कौन-सी खबर बेचेगी?"

दरिया—"यही कि तुम बाजार में ज्योतिषी के आगे अपनी किस्मत का हाल जानने गये थे, इसपर ज्योतिषी ने तुम्हें शाहजादी से विवाह करने को कहा। तभी तुम्हारी तरक्की होगी।"

मुबारक—"दरिया बीवी! मैंने तुम्हारा कौन-सा अपराध किया है, जो तुम मेरे ऊपर इतना जुल्म करने को तैयार हो?"

दरिया—"मैंने क्या किया है? तुमने मेरे साथ क्या नहीं किया है? तुमने जो किया है उससे बढ़कर और क्या नुकसान हो सकता है?"

मुबारक—"क्यों प्यारी! मेरे जैसे तो कितने ही हैं।"

दरिया—"लेकिन ऐसा पापी और कोई नहीं।"

मुबारक—"मैं पापी नहीं हूँ। किन्तु यहाँ खड़े-खड़े इतनी बातें हो नहीं सकतीं। तुम और कहीं मुझसे मिलना। मैं सब समझा दूँगा।"

यह कह मुबारक फिर जेबुन्निसाँ के पास लौट गया। उसने जेबुन्निसाँ से कहा—"मैं फिर आया हूँ, इस बेअदबी के लिए माफ कीजिये। यह कहने आया हूँ कि दरिया बीवी हाजिर है, अभी आप से मिलने आयेगी। वह पागल है। अगर वह आपके पास आकर मेरी कोई निन्दा करे, तो आप मुझसे जवाब तलब किये बिना मुझपर नाराज न होंगी।"

जेबुन्निसाँ ने कहा—"मेरी मजाल नहीं कि मैं तुम पर नाराज होऊँ! अगर तुम पर कभी क्रोध करूँ तो उससे मुझे ही दुख होगा। तुम्हारी निन्दा मैं कान से सुन नहीं सकती।"

"इस सेवक पर इतना अनुग्रह सदा बना रहे।" यह कह मुबारक फिर विदा हो गया।

———

चौथा परिच्छेद

समाचार-विक्रय

जो तातारी युवती हाथ में तलवार लिये जेबुन्निसा के कमरे के दर्वाजे पर पहरे पर नियुक्त थी, उसने दरिया को देखकर कहा—"इतनी रात को कैसे ?"

दरिया बीबी ने कहा—"तुम पहरे वाली से क्या बताऊँ ? तू खबर कर दे।"

तातारी ने कहा—"तू बाहर जा, मै खबर न करूँगी।"

दरिया ने कहा—"क्रोध क्यों करती हो दोस्त ? तुम्हारी नजाकत की बदौलत ही काबुल और पञ्जाब फतह होता है। उसपर यह ढाल-तलवार ! तुम्हारे बिगड़ने से काम कैसे चलेगा ? यह मेरा परवाना देखो; अब इत्तला करो।"

पहरेदारिन ने लाल होठोंपर मुस्कुराहट से कहा—"मैं तुम्हें भी पहचानती हूँ और तुम्हारे परवाने को भी पहचानती हूँ। तब क्या इतनी रात को बेगम साहबा तुम्हारा सुरमा खरीदेंगी ? तुम कल सबेरे आना। इस समय खसम हो, तो उसी खसम के पास जाओ। अगर न हो तो..."

दरिया—"तू जहन्नुम में जा। तेरी ढाल-तलवार जहन्नुम में जाय, तेरी ओढ़नी पायजामा जहन्नुम में जाय। तू क्या समझती है कि मैं आधी रात को बिना मतलब के ही आयी हूँ ?"

तब तातारी ने चुपके से कहा—"बेगमसाहबा इस वक्त जरा मजे में होंगी।"

दरिया ने कहा—"अरी बाँदी, क्या मै इतना नहीं समझती ? तू भी मजे करेगी ? अच्छा तो कर।"

यह कह कर दरिया ने ओढनी के भीतर से एक शीशी शराब निकाली। पहरेदारिन ने मुँह खोला; दरिया ने शीशी की शीशी उसके मुँह में उड़ेल दी। तातारी सूखी नदी की तरह उसे एक साँस में सोख गई। बोली—"बिसमिल्लाह ! बढ़िया शर्बत है। अच्छा तुम खड़ी रहो, मैं इत्तला करती हूँ।"

पहरेदारिन ने कमरे के भीतर जाकर देखा कि जेबुन्निसा हँस-हँस कर फूलों से एक कुत्ता बना रही है; मुबारक के जैसा उसका मुँह बनाया

बादशाही सरपेच और कलँगी के समान उसकी पूँछ बनाई है। जेबुन्निसाँ ने पहरेदारिन को देखते ही कहा—"कचनियों को बुलाओ।"

रङ्गमहल में सभी बेगमों के आमोद के लिये एक-एक सम्प्रदाय की नाचनेवालियाँ नियुक्त थीं। घर-घर में नाच गाना होता था। जेबुन्निसाँ के प्रमोद के लिये भी नाचनेवालियों का एक दल था।

पहरेदारिन ने फिर सलाम कर कहा—"जो हुक्म! दरिया बीबी हाजिर हैं, मैं लौटा रही थी; किन्तु वह मानती नहीं।"

जेबुन्निसाँ—"तुझे कुछ इनाम भी मिला है।"

सुन्दर पहरेदारिन ने लज्जित हो ओढ़नी से मुँह ढँक लिया। तब जेबुन्निसाँ ने कहा—"अच्छा, नाचनेवालियाँ अभी रुकें, दरिया को भेज दो।'

दरिया ने आकर सलाम किया। इसके बाद वह फूल के बने कुत्ते की ओर देखने लगी। यह देखकर जेबुन्निसाँ ने पूछा—"कैसा बना है, दरिया?"

दरिया ने फिर सलाम कर कहा—"ठीक मनसबदार मुबारक खाँ साहब जैसा।"

जेबुन्निसाँ—"ठीक है, तू लेगी?"

दरिया—"क्या देंगी? कुत्ता या आदमी?"

जेबुन्निसाँ ने त्योरी बदली। इसके बाद क्रोध को संभाल हँसकर कहा—"जो तेरे पसन्द आये।"

दरिया—"तब कुत्ता हुजूर के पास ही रहे, मैं आदमी लूँगी?"

जेबुन्निसाँ—"इस वक्त तो कुत्ता मेरे हाथ में है, मनुष्य हाथ में नहीं। अभी कुत्ता ही ले जा।"

यह कहकर जेबुन्निसाँ ने शराब के नशे में प्रसन्न होकर जिस फूल से कुत्ते को बनाया था; वह फूल उठा-उठाकर दरिया पर फेंकने लगी। दरिया ने फूलों को उठा-उठाकर अपनी ओढ़नी में रक्खा नहीं तो बेअदबी होती। इसके बाद उसने कहा—"हुजूर की मेहरबानी से मुझे कुत्ता और आदमी दोनों ही मिले।"

जेबुन्निसाँ—"कैसे?"

दरिया—"आदमी मेरा है।"

जेबुन्निसाँ—"कैसे?"

दरिया—"मेरे साथ शादी हुई है?"

जेबुन्निसाँ—"निकल यहाँ से।"

जेबुन्निसाँ ने कई फूल उठा कर जोर से दरिया पर फेंके।

दरिया ने हाथ जोड कर कहा—"मुल्ला और गवाह दोनों जीते हैं। हुजूर पूछ सकती हैं।"

जेबुन्निसाँ ने त्योरी चढ़ाकर कहा—"मेरे हुक्म से वह सब सूली पर चढ़ा दिये जायेंगे।"

दरिया काँप उठी। वह जानती थी कि वह बाघिन जैसी मुगल कुमारी सब कुछ कर सकती है। उसने कहा—"शाहजादी! मैं बडी दुखिया हूँ; खबर बेचने आई हूँ। मुझे इन सब बातों से कोई मतलब नहीं।"

जेबुन्निसाँ—"क्या खबर है, बोल!"

दरिया—"दो खबरें हैं। एक तो यही मुबारक खाँ के बारे में। हुक्म न मिलने से आगे कहने की हिम्मत नहीं होती।"

जेबुन्निसाँ—"कहो।"

दरिया—"यह आज शाम को चौक में गणेश ज्योतिषी से अपनी किस्मत की गणना करा रहे थे।"

जेबुन्निसाँ—"ज्योतिषी ने क्या कहा?"

दरिया—"कहा कि शाहजादी से शादी करो। तब तुम्हारी तरक्की होगी।"

जेबुन्निसाँ—"झूठी बात। मनसबदार कब ज्योतिषी के यहाँ गया?"

दरिया—"यहाँ आने से पहले।"

जेबुन्निसाँ—"यहाँ कौन आया था?"

दरिया कुछ डरी। किन्तु उसी समय फिर हिम्मत बाँध सलाम कर कहा—"मुबारक खाँ साहब।"

जेबुन्निसाँ—"तूने कैसे जाना?"

दरिया—"मैंने आते देखा था।"

जेबुन्निसाँ—"जो ऐसी बातें कहता है, उसे मैं सूली पर चढ़वा देती हूँ।"

दरिया काँप उठी। बोली—"हुजूर के अलावा और कहीं मैं यह सब बातें जुबान पर भी नहीं लाती।"

जेबुन्निसाँ—"जुबान पर लाई तो मैं जल्लाद से जीभ कटवा लूँगी। बोल, दूसरी क्या खबर है?"

दरिया—"दूसरी खबर रूपनगर की है।"

तब दरिया ने चञ्चलकुमारी के तस्वीर तोड़ने की सारी कहानी कह सुनाई। सुनकर जेबुन्निसाँ ने कहा—"यह खबर अच्छी है, इनाम मिलेगा।"

तब रङ्गमहल के खजाने के नाम इनाम का पर्वाना लिखा गया। उसे लेकर दरिया भागी।

तातारी पहरेदारिन ने उसे पकड़ा। उसने तलवार को दरिया के कन्धे पर रखकर कहा—"भागती कहाँ हो सखी?"

दरिया—"काम हो गया। अब घर जाऊँगी।"

पहरेदारिन—"रुपये मिले हैं, कुछ मुझे न दोगी?"

दरिया—"मुझे रुपयों की बड़ी जरूरत है, एक गाना सुनाये जाती हूँ, सारङ्गी लाओ।"

पहरेदारिन के पास सारङ्गी थी—कभी-कभी बजाती थी। रङ्गमहल में हमेशा गाने-बजाने की धूम रहती थी। सभी बेगमों का एक एक सम्प्रदाय की नाचनेवालियों का दल था। यह सब गणिकाएँ नहीं थीं, आप ही आप यह काम करती थीं। रङ्गमहल में रात को सुर छिड़ा ही रहता था। दरिया तातारी की सारङ्गी लेकर गाने लगी। वह बहुत ही सुरीली और गाने में उस्ताद थी, बड़े ही मधुर स्वर से उसने गाना गाया। जेबुन्निसाँ ने भीतर से पूछा—"कौन गाती है?"

पहरेदारिन ने कहा—"दरिया बीबी।"

हुक्म हुआ उसे भेजो।

दरिया ने फिर जेबुन्निसाँ के सामने जाकर सलाम किया। जेबुन्निसाँ ने

कहा—"गाओ यह वीणा रखी है।"

वीणा लेकर दरिया ने गाया। खूब मधुर गीत गाया। शाहजादी ने अप्सराओं को जलाने वाली अनेक सङ्गीत-विद्या में पटु गायिकाओं के गाने सुने थे, किन्तु ऐसा गाना नहीं सुना था। दरिया का गाना समाप्त होने पर जेबुन्निसा ने उससे पूछा—"तुमने कभी मुबारक के सामने गाया था?"

दरिया—"मेरा गाना सुनकर ही उन्होंने मुझसे शादी की थी।"

जेबुन्निसाँ ने फूल के एक गुच्छे को उठाकर इस जोर से दरिया को मारा, कि उसके कर्णफूल में लगकर कान कट गया और खून बह चला। तब जेबुन्निसा ने उसे और कुछ इनाम देकर विदा किया। कहा—"अब न आना।"

दरिया सलाम कर विदा हुई। मन ही मन बड़बड़ाती गई—"फिर आऊँगी, फिर जलाऊँगी। फिर मार खाऊँगी। फिर रुपये लूँगी; तुम्हारा सर्वनाश करूँगी।"

पाँचवाँ परिच्छेद

उदयपुरी बेगम

औरङ्गजेब संसार में विख्यात बादशाह थे। वे साम्राज्य के अधिकारी हुए थे। वे स्वयं बुद्धिमान, काम में दक्ष, परिश्रमी और अन्यान्य राजगुणों से गुणवान थे। यह सब असाधारण गुण होने पर भी उस संसार-विख्यात राजाधिराज ने अपने संसार-विख्यात साम्राज्य को ध्वंस कर मानव-लीला समाप्त की थी।

उसका एक मात्र कारण यह था कि औरङ्गजेब महापापिष्ठ था। उसके जैसा धूर्त, कपटाचारी, पाप में सङ्कोचशून्य, स्वार्थी, परपीड़क, प्रजापीड़क दो-एक ही दिखाई देते हैं। यह कपटी सम्राट जितेन्द्रिय होने का बहाना करता था। किन्तु उसका अन्तःपुर असंख्य सुन्दरी मधुमक्खियों से परिपूर्ण शहद के छत्ते की तरह दिन-रात आनन्द ध्वनि से गूँजा करता था।

इसकी रानियाँ भी असंख्य थीं और शरियत के नियम के अलावा तनखाह-

दार विलासिनें भी बहुत थीं। इन पापिष्ठाओं से इस ग्रन्थ का सम्बन्ध बहुत कम है; किन्तु किसी-किसी महारानी से इस उपन्यास का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मुगल बादशाह जिससे पहला विवाह करते थे वही प्रधान महारानी होती थी। हिन्दूद्वेषी औरङ्गजेब के दुर्भाग्य से एक हिन्दू-कन्या इनकी प्रधान महारानी थी। बादशाह अकबर ने राजपूत राजाओं की कन्या से विवाह करने की प्रथा चलाई थी। उसी नियम के अनुसार सभी बादशाहों की हिन्दू रानियाँ थीं। औरङ्गजेब की प्रधान महिषी जोधपुरी बेगम थी।

प्रधान महारानी होने पर भी जोधपुरी बेगम प्यारी महारानी नहीं थी। जो सबसे अधिक प्यारी थी वह कृस्तानी उदयपुरी के नाम से इतिहास में परिचित है। उदयपुर से इनका कोई सम्बन्ध होने के कारण इनका नाम उदयपुरी नहीं था। एशियाखण्ड के दूर-पश्चिम प्रान्त का जार्जिया खण्ड इस समय रूस के राज्य में शामिल है, वही इनकी जन्म-भूमि थी। बचपन में एक दास व्यवसायी इसे बेचने के लिए भारतवर्ष में ले आया। औरङ्गजेब के बड़े भाई दारा ने इसे खरीदा। यह बालिका उम्र पाने पर अद्वितीय रूप-लावण्यवती हो गई। उसके रुप पर मोहित हो दारा उसके बहुत ही वशीभूत हो गये। पहले ही कहा गया है कि उदयपुरी मुसलमान नहीं, कृस्तान थी। अफवाह है कि बाद में दारा भी कृस्तान हो गये थे।

दारा को युद्ध में परास्त कर औरङ्गजेब सिंहासन पर बैठ पाये थे। दारा को परास्त करने के बाद औरङ्गजेब ने पहले उन्हें गिरफ्तार कर बाद को उनका वध कराया था। दारा का वध करा नराधम औरङ्गजेब ने एक अद्भुत प्रसङ्ग उठाया था। उड़िया लोगों में एक कलंक है, कि बड़े भाई के मरने पर छोटा भाई विधवा भौजाई से विवाह कर उसका शोक दूर करता है। इसी श्रेणी के एक उड़िया से हमने पूछा था—"तुम लोग ऐसा दुष्कर्म क्यों करते हो?" उसने चटपट जवाब दिया—"तब क्या घर की औरत पराये को दे दें?" शायद भारतेश्वर औरङ्गजेब ने भी ऐसा ही विचारा हो। उन्होंने कुरान का वचन उद्धृत कर प्रमाणित किया कि इस्लाम धर्मानुसार वे बड़े भाई की पत्नी से विवाह करने को बाध्य हैं। इसलिए दारा की दो प्रधान

रानियों को उन्होंने अपनी अर्द्धाङ्गिनी होने को कहा। एक राजपूत कन्या थी और दूसरी यह उदयपुरी साहबा। राजपूत कन्या ने यह आज्ञा सुन कर जो किया, हिन्दू कन्या मात्र ऐसी अवस्था में वही करेगी, किन्तु और किसी जाति की कन्या ऐसा कर नहीं सकती। वह विष खाकर मर गई। कुस्तानी बड़े आनन्द से औरंगजेब के गले लगी। इतिहास ने इस गणिका का नाम कीर्तित कर जन्म सार्थक किया, और जिन्होंने धर्म रक्षा के लिये जहर खाया, उनका नाम लिखने में घृणा दिखाई, यही इतिहास का मूल्य है।

उदयपुरी जैसी अनुपम सुन्दरी थी, वैसी ही अद्वितीय शराबी भी थी। दिल्ली के बादशाह लोग मुसलमान होकर भी शराब के बड़े शौकीन थे। उनका जनानखाना इस विषय में उनके ही दृष्टान्त पर चलता था। रङ्गमहल में भी इस रंग की बाढ़ थी। इस नरक में भी उदयपुरी ने अपना नाम जाहिर कर रखा था।

जेबुन्निसाँ एकाएक उदयपुरी के शयन गृह में प्रवेश करने न पाई। क्योंकि भारतेश्वर की प्रियतमा महारानी मद्यपान से प्रायः बेहोश रहा करती। वस्त्राभूषण का भी ठिकाना नहीं, बाँदियाँ फिर उसकी सजावट दुरुस्त कर देतीं और उसे सचेत तथा सावधान किया करती थीं। जेबुन्निसाँ ने जाकर देखा कि उदयपुरी के बाएँ हाथ में सटक है, अधखुली आँखे हैं और होठों पर मक्खियाँ उड़ रही हैं, आँधी से छिन्न-भिन्न जमीन में बिखरे और वृष्टि से भीगे फूलों के ढेर की तरह उदयपुरी बिछौने पर पड़ी हुई है।

जेबुन्निसाँ ने आकर सलाम कर कहा—"माँ, आपका मिजाज तो अच्छा है न?"

उदयपुरी ने अधजगे जैसे स्वर में लड़खड़ाती जुबान से कहा—"इतनी रात को कैसे?"

जेबुन्निसाँ—"एक बड़ी खबर है।"

उदयपुरी—"क्या मरहठा डाकू मर गया।"

जेबुन्निसाँ—"उससे भी जियादा खुशखबरी है।"

यह कहती हुई जेबुन्निसाँ ने चढ़ा-बढ़ाकर चंचल कुमारी की तस्वीर तोड़ने की कहानी कह डाली। उदयपुरी ने पूछा—"यही खुशखबरी है?"

जेबुन्निसाँ ने कहा—"यह भैंस जैसी बाँदियाँ आपका तम्बाकू भरती हैं, यह मुझसे देखा नहीं जाता। बादशाह से यह वचन माँगिये कि रूपनगर की वह सुन्दरी राजकुमारी आकर हुजूर का तम्बाकू भरे।"

उदयपुरी ने बिना समझे नशे की झोंक में कह दिया—"अच्छी बात है।"

इसके कुछ ही बाद राजकाज से थके-माँदे बादशाह थकान मिटाने के लिये उदयपुरी के भवन में उपस्थित हुए। उदयपुरी ने नशे की झोंक में जेबुन्निसाँ से चंचल कुमारी की जो बातें सुनी थी, वह ज्यों की त्यों कह डाली। साथ ही यह प्रार्थना भी कर दी कि वह आकर मेरा तम्बाकू भरे। औरंगजेब ने कसम खाकर ऐसा ही करने का वचन दिया, क्योंकि वे मारे क्रोध के तिलमिला उठे थे।

छठवाँ परिच्छेद

जोधपुरी बेगम

दूसरे दिन बादशाही हुक्म का प्रचार हुआ। रूपनगर के छोटे से राजा के ऊपर एक हुक्मनामा जारी हुआ। जिस अद्वितीय कुटिलता के भय से जयसिंह और यशवन्तसिंह आदि सेनापतिगण और आजमशाह जैसे शाहजादे सदा घबराते थे, जिस अभेद्य कुटिलता के जाल में फँस कर चतुरों में अग्रगण्य शिवाजी भी दिल्ली में कैद हो गए थे, वैसी कुटिलता से पूर्ण यह हुक्मनामा भी था। उसमें लिखा गया—"बादशाह रूपनगर की राजकुमारी के अपूर्व रूप-लावण्य का हाल सुन मुग्ध हुए हैं। रूपनगर के राव साहब के सत्-स्वभाव और राजभक्ति से बादशाह प्रसन्न हुए है। इसलिए बादशाह राजकुमारी का पाणिग्रहण कर उनकी उस राजभक्ति का पुरस्कार करने की इच्छा रखते हैं। राजा साहब कन्या को दिल्ली से भेजने का बन्दोबस्त करें; शीघ्र बादशाही सैन्य जाकर कन्या को दिल्ली ले आयेगी।"

इस समाचार के रूपनगर पहुँचते ही बड़ी हलचल मच गयी। रूपनगर में आनन्द की सीमा न रही। जोधपुर, अम्बर आदि बड़े-बड़े राजपूत राजा मुगल बादशाह को कन्यादान करना बहुत बड़े सौभाग्य का विषय समझते थे।

ऐसी हालत में रूपनगर के क्षुद्रजीवी राजा के अदृष्ट में यह शुभ फल बड़े ही आनन्द का विषय माना गया। शाहों के शाहंशाह—जिनकी बराबरी का इस मृत्युलोक में कोई नहीं, उनके दामाद होंगे; चंचलकुमारी पृथ्वीश्वरी होंगी; इससे बढकर और क्या सौभाग्य हो सकता है? राजा, राजरानी, पुरवासी, रूपनगर की प्रजा सभी आनन्द से मतवाले हो उठे। रानी ने देव-मन्दिर में पूजा का चढावा भेजा। राजा इस सुयोग में भूमि के किन-किन अधिकारियों का गाँव मांगेंगे, इसके लिये फेहरिस्त तैयार होने लगी।

केवल चंचलकुमारी की सखियों में निरानन्द रहा। वे सब जानती थीं कि इस सम्बन्ध से मुगल-विद्वेषिणी चंचलकुमारी को सुख नहीं।

यह समाचार दिल्ली में भी फैल पडा। बादशाही रङ्गमहल में प्रचारित हुआ। जोधपुरी बेगम सुनकर बहुत दुःखी हुईं। वे हिन्दू की लड़की हैं, मुसलमान के घर पड भारतेश्वरी होने पर भी उन्हें सुख नहीं था। वे औरङ्गजेब के महल में भी अपना हिन्दूपन रखती थीं। हिन्दू दासियों द्वारा उनकी सेवा होती थी, हिन्दू के बनाये बिना वे भोजन नहीं करती थीं। यहाँ तक कि औरङ्गजेब के महल में हिन्दू देवता की मूर्ति स्थापित कर वह पूजा किया करती थीं। विख्यात देवद्वेषी औरङ्गजेब उनकी इन सब बातों को सहते थे, इसी से जान पडता है कि औरंगजेब उनपर अनुग्रह रखते थे।

जोधपुरी बेगम ने भी यह समाचार सुना। बादशाह से मुलाकात होनेपर उन्होंने विनीत भाव से कहा—"जहाँपनाह! जिनकी आज्ञा से नित्य राज-राजेश्वरगण भी राजच्युत होते हैं, उनके क्रोध के योग्य क्या एक मामूली बालिका हो सकती है?"

राजेन्द्र हँसे, किन्तु कुछ कहा नहीं। वहाँ कुछ भी हो न सका।

तब जोधपुर-राजकन्या ने मन ही मन कहा—"हे भगवान्! मुझे विधवा करो, यह राक्षस अधिक दिन जियेगा, तो हिन्दुत्व का नाम लुप्त हो जायगा।"

देवी नाम की उनकी एक परिचारिका थी। वह जोधपुर से उनके साथ आई थी। किन्तु बहुत दिन देश छोडे हो गये, अब अधिक उम्र में मुसलमान महल में वह रहना नहीं चाहती। बहुत दिन से वह घर जाना चाहती थी,

किन्तु बहुत विश्वासी होने की वजह से जोधपुरी उसे छोड़ना भी नहीं चाहती। आज जोधपुरी ने उसे एकान्त में ले जाकर कहा—"तुम बहुत दिन से जाना चाहती हो, मैं आज तुम्हें छोड़ रही हूँ। किन्तु तुम्हें मेरा एक काम करना पड़ेगा। काम बहुत कठिन और मेहनत का है; बड़ी हिम्मत और बड़े विश्वास का है। उसके लिये मैं पूरा खर्च दूँगी, इनाम दूँगी और हमेशा के लिए तुम्हें छुटकारा दूँगी—बोलो करोगी?

देवी ने कहा—"जो आज्ञा हो।"

जोधपुरी ने कहा—"तुमने रूपनगर की राजकुमारी का हाल सुना है? उनके पास जाना होगा, मैं चिट्ठी-पत्री कुछ न दूँगी। जो कहना, मेरे नाम से कहना और मेरे इस पंजे को दिखाना, वह तुमपर विश्वास करेंगी। अगर घोड़े पर चढ़ना हो, तो घोड़े से ही जाओ; घोड़ा खरीदने का खर्च मैं दूँगी।"

देवी—"क्या कहना होगा?"

बेगम—"राजकुमारी से कहना कि हिन्दू की कन्या होकर मुसलमान के घर न आवें। हम लोग आकर नित्य मरने की कामना करती हैं। कहना कि तस्वीर तोड़ने का हाल बादशाह ने सुना है। उन्हें सजा देने के लिये ही लाया जा रहा है। प्रतिज्ञा की है कि रूपनगरवाली से उदयपुरी की चिलम भरवायेंगे। कहना कि चाहे जहर खायें, फिर भी दिल्ली न आयें। और भी कहना कि डरे नहीं; दिल्ली का सिंहासन हिल रहा है। दक्षिण में मरहठे मुगलों की हड्डी कूँच रहे हैं। राजपूत लोग इकट्ठे हो गये हैं। जजिया की आग से सारा राजपूताना जला जा रहा है। राजपूताने में गो-हत्याएँ हो रही हैं, कौन राजपूत इसे सहेगा? सब राजपूत इकट्ठे हो रहे हैं। उदयपुर के राणा वीर पुरुष हैं। मुगल तातार में उनके जैसा कोई नहीं है। वे यदि राजपूतों के अधिनायक हों, अस्त्र धारण करें तो क्या नहीं हो सकता? यदि एक ओर शिवाजी और दूसरी ओर राजसिंह अस्त्र धारण करें तो दिल्ली का सिंहासन कब तक टिकेगा?"

देवी—"ऐसी बात न कहो। दिल्ली का तख्त तुम्हारे लड़के के लिए है। अपने लड़के के सिंहासन को तोड़ने की सलाह आप ही दे रही हैं?"

बेगम—"मुझे यह भरोसा नहीं कि मेरा लड़का इस तख्त पर बैठेगा। जब तक राक्षसी जेबुन्निसाँ और डाकिनी उदयपुरी जियेंगी, तब तक यह भरोसा

न करना। एक बार ऐसा ही भरोसा कर मैं रौशनआरा की बुरी मार खा चुकी हूँ। आज भी मेरे मुँह और आँख पर दाग के निशान हैं।"

कहते-कहते जोधपुरी रो पड़ीं। इसके बाद उन्होंने कहा—"उन सब बातों की जरूरत नहीं। तुम मेरा मतलब समझ न सकोगी। समझ के ही क्या करोगी? जो कह रही हूँ, वही करो। राजकुमारी से कहो, वे राजसिंह की शरण में जाये, राजसिंह राजकुमारी को लौटने न देंगे। कहना मैं आशीर्वाद देती हूँ, राणा की महिषी हो। महिषी होने पर प्रतिज्ञा करे कि उदयपुरी उनका तम्बाकू भरेगी और रौशनआरा उन्हें पखा झलेगी।"

देवी—"यह भी कहीं हो सकता है?"

बेगम—"इसका विचार तुम न करो। मैं जो कहती हूँ वह कर सकोगी या नहीं?"

देवी—मैं सब कर सकती हूँ।"

तब बेगम ने देवी को जरूरी रुपये और पुरस्कार तथा पञा देकर विदा किया।

सातवाँ परिच्छेद

खुदा ने शाहजादी क्यों बनाया

जेबुन्निसा के विलास-भवन में रात को मुबारक उपस्थित हुआ। इस बार मुबारक गलीचे पर घुटने टेक कर बैठा, उसके दोनों हाथ जुडे हुए और चेहरा ऊपर की ओर था। जेबुन्निसा उस रत्न जडे पलँग पर मोती मूँगे की झालर-दार शय्या, जरी का कामदार तकिया टेके सोने के गडगडे में रत्नजटित सटक से तम्बाकू पी रही थी। विलायती महात्माओं की कृपा से उस समय तम्बाकू भारतवर्ष में पहुँच गया था।

जेबुन्निसा ने कहा—"सब ठीक-ठीक कहोगे न?"

मुबारक ने हाथ जोड़कर कहा—"जो हुक्म हो वही कहूँगा।"

जेबुन्निसा—"तुमने दरिया से शादी की है?"

मुबारक—"जब अपने देश में था, तब की है।"

जेबुन्निसा—"तभी मेहरबानी कर मुझसे विवाह करना चाहते थे?"

मुबारक—"बहुत दिन हुए मैंने तलाक़ देकर उसे छोड़ दिया है।"

जेबुन्निसा—"क्यों छोड़ा?"

मुबारक—"वह पागल है। यह तो आपको जरूर ही मालूम हुआ होगा।"

जेबुन्निसाँ—"वह पागल तो कभी नहीं जान पड़ी।"

मुबारक—"वह अपने काम की कामयाबी के लिए हुजूर में हाजिर होती है। काम के समय मैंने भी उसमें पागलपन नहीं देखा। लेकिन और हर समय वह पागल है। आप उसे किसी दिन खामखाह बुलाकर देखें।"

जेबुन्निसाँ—"तुम उसे भेज सकोगे? कह देना कि मुझे कुछ अच्छे सुरमे की जरूरत है।"

मुबारक—"मैं कल सवेरे यहाँ से कुछ दिन के लिए जाऊँगा।"

जेबुन्निसाँ—"बहुत दूर जाओगे? तुमने इसके बारे में तो मुझसे कभी कुछ नहीं कहा?"

मुबारक—"आज इस बात को कहने की ख्वाहिश थी।"

जेबुन्निसाँ—"कहाँ जाओगे?"

मुबारक—"राजपूताना में रूपनगर नाम का कोई किला है। वहाँ के रावसाहब की कन्या को महिषी बनाने के लिए शाहशाह की मरजि-मुबारक है। कल उन्हें ले आने के लिए रूपनगर फौज जायेगी। मुझे फौज के साथ जाना पड़ेगा।"

जेबुन्निसाँ—"उसके बारे में मुझे भी कुछ कहना है। लेकिन पहले और एक बात का जवाब दो। तुम गणेश ज्योतिषी के यहाँ किस्मत दिखाने गये थे?"

मुबारक—"गया था।"

जेबुन्निसाँ—"क्यों गये थे?"

मुबारक—"सभी जाते हैं, इसलिए मैं भी गया था; बस इतना ही आपकी बात का ठीक जवाब है, लेकिन इसके अलावा और भी कुछ कारण है। दरिया वहाँ मुझे जबरन खींच ले गयी थी।"

"जेबुन्निसाँ—"हूँ।"

यह कह जेबुन्निसाँ कुछ देर फूलों से खेल दी रही। इसके बाद बोली—"तुम क्यों गये।"

मुबारक ने सब घटना कह सुनाई। सब सुनकर जेबुन्निसाँ ने पूछा—"क्या ज्योतिषी ने यह कहा था कि तुम शाहजादी से शादी करो—तब तुम्हारी तरक्की होगी?"

मुबारक—"हिन्दू लोग शाहजादी नहीं कहते। ज्योतिषी ने राजपुत्री कहा था।"

जेबुन्निसाँ—"क्या शाहजादी राजपुत्री नहीं है ?"

मुबारक—"क्यों नहीं ?"

जेबुन्निसाँ—"क्या इसीलिये उस दिन तुमने शादी का प्रस्ताव किया था ?"

मुबारक—"मैंने सिर्फ धर्म के ख्याल से यह बात कही थी। आपको यह होगा कि मैं गणना से पहले ही यह बात कह चुका हूँ।"

जेबुन्निसाँ—"कब, मुझे तो याद नहीं। खैर, इन सब बातों की अब कोई जरूरत नहीं। तुमसे इतने सवाल किये, इसके लिये तुम नाराज न होना। तुम्हारी नाराजगी से मुझे बड़ा दुःख होगा। तुम मेरे प्राणाधिक हो। तुम्हें मैं जब तक देखती हूँ, तब तक सुखी रहती हूँ। तुम पलँग पर आकर बैठो, मैं तुम्हें इत्र मलूँगी।"

तब जेबुन्निसाँ मुबारक को अपने पलँग पर बैठाकर अपने हाथों उसे इत्र मलने लगी। इसके बाद उसने कहा—"अब तुमसे रूपनगर की बातें कहूँगी। मालूम नहीं कि चञ्चलकुमारी का पिता उसे देगा या नहीं। न दे तो छीनकर ले आना।"

मुबारक—"ऐसा हुक्म शाहंशाह ने हम लोगों को नहीं दिया है।"

जेबुन्निसाँ—"ऐसी जगह मुझे ही बादशाह समझो। अगर बादशाह का यह मतलब नहीं है, तो फौज क्यों जा रही है ?"

मुबारक—"रास्ते की बाधा दूर करने के लिये।"

जेबुन्निसाँ—"बादशाह आलमगीर की फौज जिस काम के लिये जायेगी, उस काम में उसे निष्फल न होना पड़ेगा। तुम लोग जैसे चाहो, रूपनगर की कुमारी को ले आओ। अगर इसमें बादशाह नाराज होंगे, तो मैं जो हूँ।"

मुबारक—"मेरे लिये इतना ही हुक्म काफी है। लेकिन आपका मतलब समझने से मेरी बाँह में और ताकत आयेगी।"

"जेबुन्निसाँ ने कहा—"वही बात मैं कहना चाहती हूँ। यह रूपनगरवाली मेरी ही चाल से तलब की गई है।"

मुबारक—"उससे मतलब ?"

जेबुन्निसाँ—"मतलब यह कि उदयपुरी के रूप की बड़ाई अब सही नहीं जाती। सुना है कि रूपनगरवाली और भी खूबसूरत है। अगर ऐसा ही है, तो उदयपुरी के बदले वही बादशाह के ऊपर प्रभुत्व करेगी। मैं ही उसे बुला रही हूँ यह खबर पाने पर रूपनगरवाली मेरे वशीभूत होगी। इससे मेरे महल

में जो एक काँटा है, वह दूर होगा। अच्छा ही हुआ है कि तुम जा रहे हो। अगर देखो कि वह उदयपुरी से अधिक खूबसूरत..."

मुबारक—"मैंने जनाब बेगम साहबा को कभी देखा नहीं।"

जेबुन्निसाँ—"देखना चाहो तो दिखा सकती हूँ। इस पर्दे की आड़ में छिपना पड़ेगा।"

मुबारक—"छि।"

जेबुन्निसाँ हँस पड़ी, उसने कहा—"दिल्ली में तुम्हारे जैसे कितने बन्दर हैं? खैर, मैं जो कहती हूँ, उसे सुनो। उदयपुरी को न देखो, मैं तुम्हें तस्वीर दिखाती हूँ। लेकिन चञ्चलकुमारी को भी देखना। अगर वह उदयपुरी से ज्यादा खूबसूरत दिखाई दे, तो उससे कहना कि मेरी ही मेहरबानी से वह बादशाह की बेगम हो रही है। और अगर देखो कि वह देखने में वैसी नहीं हो तो..."

जेबुन्निसाँ कुछ सोचने लगी। मुबारक ने पूछा—"अगर देखूँ कि देखने अच्छी नहीं, तब क्या करूँगा?"

जेबुन्निसाँ—"तुम शादी करना बहुत चाहते हो; तुम खुद उससे शादी कर लेना। इसके बाद बादशाह जो आज्ञा देंगे, उसे मैं करूँगी।"

मुबारक—"क्या इस अधम पर आपका जरा भी प्रेम नहीं?"

जेबुन्निसाँ—"बादशाहजादी और प्रेम?"

मुबारक—"तब अल्लाह ने बादशाहजादियों को किसलिये बनाया है?"

जेबुन्निसाँ—"सुख के लिये। प्रेम में दुःख है।"

मुबारक ने और कुछ सुनना न चाहा। उसने बात को दबाकर कहा—"जो बादशाह की बेगम होंगी, उन्हें मैं कैसे देखूँगा?"

जेबुन्निसाँ—"किसी चालाकी से।"

मुबारक—"बादशाह सुनेंगे, तो क्या कहेंगे?"

जेबुन्निसाँ—"इसकी जवाबदेही और दोष मुझपर होगा।"

मुबारक—"आप जैसा कहेंगी, वैसा ही करूँगा। परन्तु इस गरीब पर जरा प्रेम करना होगा।"

जेबुन्निसाँ—"कहा तो, कि तुम मेरे प्राण से भी बढ़कर हो।"

मुबारक—"क्या यह प्रेम के साथ कह रही हैं?"

जेबुन्निसाँ—"कह तो चुकी कि प्रेम करना गरीब दुखियों का दुःख है। शाहजादियाँ उस दुःख को मंजूर नहीं करतीं।"

मर्माहत हो मुबारक विदा होकर चला गया।

राजसिंह

तीसरा खण्ड

(विवाह में विकल्प)

पहिला परिच्छेद

बक और हंस की कथा

निर्मल धीरे-धीरे राजकुमारी के पास जा बैठी। देखा कि राजकुमारी अकेली बैठी रो रही है। उस दिन जो तस्वीरें खरीदी गई थीं, उनमें एक राजकुमारी के हाथ में दिखाई दी। निर्मल को देखकर चञ्चल ने चित्र उलट दिया; किन्तु निर्मल को यह समझने में देर नहीं लगी कि वह तस्वीर किसकी है। निर्मल ने उसके पास बैठकर पूछा—"अब क्या उपाय है?"

चञ्चल—"उपाय चाहे जो भी हो, मैं किसी तरह भी मुगल की दासी न बनूँगी।"

निर्मल—"यह तो मैं जानती हूँ कि तुम्हारी राय नहीं है। किन्तु बादशाह आलमगीर का हुक्म है; राजा की क्या मजाल जो उसके खिलाफ जा सकें। यह तो तुम्हें स्वीकार करना ही पड़ेगा सखी, कि कोई उपाय नहीं है। स्वीकार करना सौभाग्य की बात है। जोधपुर हो, अम्बर हो; राजा, बादशाह, नवाब, सूबा जो भी हो, संसार में इतना बड़ा आदमी कौन है, जो अपनी कन्या को दिल्ली के तख्त पर बैठाने की इच्छा न करे? पृथ्वीश्वरी बनने से तुम इतना हिचकती क्यों हो?"

चञ्चल ने क्रोध के साथ कहा—"तू यहाँ से हट जा।"

निर्मल ने देखा कि इस राह से कोई काम न होगा। वह यह सोचने लगी कि और किस राह से राजकुमारी का कोई उपकार किया जा सकता है। उसने कहा—"मान लो कि मैं यहाँ से हट गई; किन्तु जिसके द्वारा प्रतिपालित हो रही हूँ, मुझे उसका कुछ हित देखना चाहिए। तुमने यह भी कभी सोचा है कि अगर तुम दिल्ली न गई, तो तुम्हारे बाप की क्या दशा होगी?"

चञ्चल—"सोचा है। अगर मैं न जाऊँ, तो मेरे पिता के धड़ पर सिर न रहेगा; रूपनगर के गढ़ का एक पत्थर भी न बचेगा। मैंने सोच लिया है कि मैं पितृहत्या न करूँगी। बादशाही फौज आते ही मैं उसके साथ दिल्ली चली जाऊँगी, यही मैंने सोचा है।"

निर्मल प्रसन्न हुई। उसने कहा—"मैं भी यही सलाह देना चाहती थी।"

राजकुमारी की भौंहें फिर चढ़ गईं; उसने कहा—"तू क्या समझती है कि मैं दिल्ली जाकर मुसलमान बन्दर की शय्या पर सोऊँगी? हंसिनी क्या बगुले की सेवा करेगी?"

कुछ न समझ सकने के कारण निर्मल ने पूछा—"तब क्या करोगी?"

चञ्चलकुमारी ने अपने हाथ की एक अँगूठी निर्मल को दिखाई। कहा—"दिल्ली की राह में ही जहर खाऊँगी।" निर्मल जानती थी कि इस अँगूठी में विष है।"

निर्मल ने कहा—"क्या और कोई उपाय नहीं?"

चंचल ने कहा—"और क्या उपाय है, सखी? ऐसा कौन-सा वीर इस पृथ्वी में है जो मेरा उद्धार कर दिल्लीश्वर से शत्रुता करेगा? राजपूताने के सभी कुलाङ्गार मुगल के दास हैं—अब न संग्राम ही हैं और न प्रताप ही।"

निर्मल—"यह क्या कहती हो राजकुमारी! संग्राम होते या प्रताप, वे क्या तुम्हारे लिए सर्वस्व की बाजी लगाकर दिल्ली के बादशाह से झगड़ा मोल लेते? दूसरों के लिये कोई सहज ही सर्वस्व की बाजी नहीं लगाता। प्रताप नहीं हैं, संग्राम भी नहीं हैं, राजसिंह तो हैं—किन्तु तुम्हारे लिए राजसिंह सर्वस्व क्यों खोयेंगे; विशेषतः तुम मारवाड़ घराने की हो।"

चंचल—"इससे क्या? भुजा में बल होने से कौन राजपूत शरणागत की रक्षा न करेगा? मैं यही सोच रही थी, निर्मल! मैं इस विपद-समाम में प्रताप के वंशतिलकों की ही शरण लूँगी; क्या वे मेरी रक्षा न करेंगे?"

कहते-कहते चंचल देवी ने उलटे हुए चित्र को पलट दिया—निर्मल ने देखा कि राजसिंह का ही चित्र है। चित्र को देखकर राजकुमारी कहने लगी—"देखो सखी, क्या तुम्हें विश्वास नहीं होता कि ये राजपूत जाति और अनाथ के रक्षक हैं? अगर मैं इनकी शरण लूँ तो क्या ये मेरी रक्षा न करेंगे?"

निर्मलकुमारी बहुत ही स्थिर-बुद्धि की थी। चंचल की सहोदरा से भी बढ़कर निर्मल ने कुमारी से देर तक विचार किया। अन्त में चंचल की ओर

स्थिर दृष्टि से देख उसने कहा—"राजकुमारी ! जो वीर इस विपद से तुम्हारी रक्षा करेगा, उसे तुम क्या दोगी ?"

राजकुमारी समझी। उसने कातर और अविकम्पित स्वर में कहा—"क्या दूँगी सखी, मेरे पास देने लायक क्या है ? मैं अबला हूँ।"

निर्मल—"तुम्हारे पास तुम्हीं हो।"

चचल ने लज्जित हो कहा—"दूर हो।"

निर्मल—"राजाओं के घर ऐसा हुआ ही करता है। अगर तुम रुक्मिणी होतीं, तो यदुपति आकर अवश्य तुम्हारी रक्षा करते।"

चंचलकुमारी ने सिर झुका लिया। जैसे सूर्योदय के समय मेघमाला के ऊपर किरणों की तरङ्ग पर उज्ज्वलतर तरङ्ग आकर पल-पल में नवीन सौन्दर्य बिखेर देती है, वैसे ही चचलकुमारी के चेहरे पर पल-पल में सुख, लज्जा और सौन्दर्य का नव उन्मेष होने लगा। उसने कहा—"मेरा ऐसा भाग्य कहाँ जो मैं उन्हें पाऊँ। अगर मैं अपने को बेचूँ; तो क्या वे खरीदेंगे ?"

निर्मल—"इसके विचारक वही हैं, हमलोग नहीं। सुना है कि राजसिंह की बाहु में बल है। क्या उनके पास दूत नहीं भेजा जा सकता ? छिपकर, कोई जानने न पाये; क्या ऐसा दूत उनके पास नहीं जा सकता ?"

चचल ने विचार किया। कहा—"तुम मेरे गुरुदेव को बुलवाओ; उनसे बढकर और कौन मुझे चाहेगा ? किन्तु उनसे सब बात कहकर और समझाकर मेरे पास ले आओ। सब बातें कहने में मुझे लाज लगेगी।"

इसी समय सखियों ने आकर समाचार दिया कि एक मोतीवाली मोती बेचने आई है। राजकुमारी ने कहा—"इस समय मुझे मोती खरीदने का समय नहीं है। लौटा दो।" महल-परिचारिका ने कहा—"हमने लौटाने की चेष्टा की, किन्तु वह किसी तरह नहीं जाती। जान पडता है कि उसे कोई विशेष जरूरत है।" तब लाचार हो चचलकुमारी ने उसे बुलाया।

मोतीवाली ने आकर कुछ झूठे मोती दिखलाये। राजकुमारी ने चिढ़ कर कहा—"यही झूठे मोती दिखाने के लिए तू इतनी जिद कर रही थी ?"

मोतीवाली ने कहा—"नहीं, मेरे पास दिखलाने लायक चीजें हैं। किन्तु आप जरा एकान्त में समय दें तो दिखाऊँ।"

चंचलकुमारी ने कहा—"मैं अकेली तुमसे बातें न कर सकूँगी; मेरी एक सखी रहेगी; निर्मल को रहने दो और सब बाहर जाओ।"

सब बाहर चली गईं। उस मोतीवाली देवी के अतिरिक्त और कोई रहा नहीं; देवी ने जोधपुर का पंजा दिखाया। उसे देखकर चंचलकुमारी ने पूछा—"यह तुमने कहाँ पाया?"

देवी—"जोधपुरी बेगम ने मुझे दिया है।"

चंचल—"तुम उनकी कौन हो?"

देवी—"मैं उनकी दासी हूँ।"

चंचल—"यह पंजा लेकर किसलिए आई हो?"

तब देवी ने सब बातें समझा दीं।

सुनकर निर्मल और चंचल एक-दूसरे का मुँह देखने लगीं।

चंचल ने देवी को पुरस्कृत कर विदा दी। देवी जाने के समय जोधपुरी का पंजा ले न गई। जान-बूझ कर छोड़ गई। उसने सोचा कि न जाने कहाँ फेंक दूँगी और किसको मिलेगा। यह सोचकर देवी ने चंचलकुमारी के पास ही पंजा छोड़ दिया। उसके जाने पर राजकुमारी ने कहा—"निर्मल, उसे बुलाओ; वह अपना पंजा भूल गई है।"

निर्मल—"भूल नहीं गई, जान पड़ता है कि वह जान-बूझकर रख गई है।"

चंचल—"मैं इसे लेकर क्या करूँगी?"

निर्मल—"अभी रख छोड़ो; किसी समय जोधपुरी को लौटा दे सकोगी।"

चंचल—"चाहे जो हो, बेगम की बातों से मेरा साहस बढ़ गया है। हम दो बालिकाएँ क्या सलाह कर रही थीं—उसमें क्या भलाई है, क्या बुराई, होगा या न होगा, कुछ भी समझ न पाती थी। अब हिम्मत हो गई। राजसिंह का आश्रय लेना ही उचित है।"

निर्मल—"यह तो मैं पहले ही समझे बैठी हूँ।"

यह कहकर निर्मल हँसी। चंचल ने सिर झुका लिया।

निर्मल उठ कर चली गई। किन्तु चंचल के मन में कोई भरोसा न हुआ। वह भी रोती हुई चली गई।

दूसरा परिच्छेद

अनन्त मिश्र

अनन्त मिश्र चंचलकुमारी के पितृकुल के पुरोहित हैं। चंचलकुमारी को कन्या से बढकर मानते हैं। वे महामहोपाध्याय पण्डित हैं। सभी लोग उनकी भक्ति करते हैं। चंचल के नाम से बुलाये जाने पर वे अन्तःपुर में आये। कुलपुरोहित के लिए द्वार पर रोक-टोक नहीं। राह में निर्मल ने उन्हें घेरा और सब बात समझाकर छोड दिया।

विभूति-चन्दन-विभूषित चौड़ा ललाट, लम्बे-चौड़े रुद्राक्ष से शोभित, हँसमुख वे ब्राह्मण चंचलकुमारी के सामने आ खडे हुए। निर्मल ने देखा था कि चंचल रो रही है, किन्तु और किसी के सामने चंचल रोनेवाली लड़की नहीं। गुरुदेव ने देखा कि चंचल स्थिरमूर्ति है। उन्होंने कहा—"लक्ष्मी बेटी ने मुझे क्यों याद किया है?"

चंचल—"मुझे बचाने के लिए। और ऐसा कोई नहीं, जो मुझे बचाये।"

अनन्त मिश्र ने हँसकर कहा—"समझ गया; रुक्मिणी का विवाह है, इसके लिए बूढे पुरोहित को ही द्वारका जाना पडेगा। जरा देखो तो बेटी, लक्ष्मी के भण्डार में कुछ है या नहीं—राहखर्च मिलने से ही तो उदयपुर जा सकूँगा?"

चंचल ने जरी की एक थैली निकाल कर दी। उसमें अशर्फियाँ भरी थीं। पुरोहित ने पाँच अशर्फियाँ लेकर बाकी लौटा दीं, कहा—"राह में अन्न खाना पड़ेगा, अशर्फियाँ खा न सकूँगा। मैं एक बात पूछ सकता हूँ?"

चंचल ने कहा—"अगर आप मुझे आग में कूदने को कहेंगे तो मैं इस विपद् से उद्धार पाने के लिए वह भी करूँगी। कहिये क्या आज्ञा है?"

मिश्र—"राणा राजसिंह को एक चिट्ठी लिख दे सकोगी?"

चंचल ने सोचकर कहा—"मैं बालिका हूँ, उनसे अपरिचित हूँ; कैसे

पत्र लिखूँ ? किन्तु मैं उनसे जो भिक्षा माँग रही हूँ, उसमें लज्जा के लिये जगह ही कहाँ ? लिख दूँगी ।"

मिश्र—"मैं लिखा दूँ या लिख लोगी ?"

चञ्चल—"आप ही बोल दें ।"

निर्मल वहाँ आकर खड़ी हो गई थी। उसने कहा—"यह न होगा। इसमें ब्राह्मण-बुद्धि की जरूरत नहीं—यह स्त्री-बुद्धि का काम है। हम लोग पत्र लिख लेंगी। आप तैयार होकर आये ।"

मिश्रजी महाराज चले गये, किन्तु घर नहीं गये; राजा विक्रमसिंह के पास पहुँचे। कहा—"मै देश पर्यटन के लिये जाना चाहता हूँ, महाराज को आशीर्वाद देने आया हूँ ।"

राजा ने यह जानना नहीं चाहा कि वे किसलिए कहाँ जाते हैं, इधर ब्राह्मण ने भी कुछ खोलकर नहीं कहा—फिर भी यह बता दिया, कि उदयपुर भी जाना है। उन्होंने राणा से परिचित होने के लिये कुछ लिखावट माँगी। राजा ने भी पत्र लिख दिया।

अनन्त मिश्र राजा के पास से पत्र लेकर फिर चञ्चलकुमारी के पास आये। तब तक चंचल और निर्मल दोनों ने बुद्धि लगाकर पत्र समाप्त कर दिया था। पत्र समाप्त कर राजनन्दिनी ने एक डिब्बे में अपूर्व शोभाविशिष्ट मोतियों के वलय सहित पत्र ब्राह्मण के हाथ में देकर कहा—"राणा के पत्र पढ लेने पर मेरे प्रतिनिधि के रूप में आप यह राखी उन्हें बाँध दीजियेगा। राजपूत-कुल में जो शिरमौर हैं, वे कभी राजपूत-कन्या की भेजी हुई राखी अग्राह्य न करेंगे ।"

मिश्रजी ने इसे स्वीकार किया। राजकुमारी ने प्रणाम कर उन्हें विदा किया।

तीसरा परिच्छेद

मिश्रजी का नारायण-स्मरण

पहनने के कपड़े, छाता, छड़ी, चन्दन की मूठ आदि आवश्यक चीजें और एक नौकर साथ लेकर मिश्र ने गृहिणी से विदा ले उदयपुर की

यात्रा की। गृहिणी ने बहुत तङ्ग कर कहा—"क्यों जाते हो?" मिश्रजी ने कहा—"राणा से कुछ वृत्ति मिलेगी।" गृहिणी उसी समय शान्त हो गई, फिर विरह-यन्त्रणा उन्हें जला न सकी। अर्थ-लाभ के आशा स्वरूप शीतल जल के प्रवाह से वह प्रचण्ड विच्छेद की आग कई बार लपट फेंककर बुझ गई; मिश्रजी ने नौकर के साथ यात्रा की। वे चाहते तो कई आदमियों को साथ ले लेते; किन्तु अधिक लोगों के रहने से कानाफूसी भी होती, इसीलिये उन्होंने किसी को साथ नहीं लिया।

रास्ता बहुत ही दुर्गम है—विशेषत. पहाड़ी रास्ता उतार-चढ़ाव का और अनेक स्थान आश्रयशून्य थे। एकाहारी ब्राह्मण, जिस दिन जहाँ आश्रम पाते उस दिन वहाँ ही आश्रय ग्रहण करते थे; दिनमान के हिसाब से रास्ता चलते थे। रास्ते में डाकुओं का डर था—पास में रत्नों का रक्षावन्धन होने के कारण अकेले रास्ता नहीं चलते थे। साथियों के जुटने पर चलते थे। सङ्ग छूटते ही आश्रय ढूँढ़ते थे। एक रात एक देवालय में आतिथ्य स्वीकार कर दूसरे दिन चलने के समय उन्हें साथी ढूँढ़ना न पड़ा। चार वनिये उसी देवालय की अतिथिशाला में सोये थे, सवेरा होते ही वे लोग भी पहाड़ी की चढ़ाई पर चढ़ गये। ब्राह्मण को देखकर उन लोगों ने पूछा—"तुम कहाँ जाओगे?" ब्राह्मण ने कहा—"मैं उदयपुर जाऊँगा।" वनियों ने कहा—"हम भी उदयपुर जायेंगे। अच्छा ही हुआ कि एक साथ चलेंगे।" ब्राह्मण खुश हो उन लोगों के साथी वन गये। उन्होंने पूछा—"उदयपुर अब कितनी दूर है?" वनिये ने कहा—"समीप ही है, आज शाम तक उदयपुर पहुँच सकेंगे। ये सब स्थान राणा के राज्य में ही हैं।"

इस प्रकार बातचीत करते हुए ये लोग चलते रहे। पहाड़ी राह बहुत ही दुरारोहणीय और दुर्गम थी—कहीं वस्ती नहीं। किन्तु यह दुर्गम रास्ता प्रायः समाप्त हो चला था—अब समतल भूमि में उतरना पड़ेगा। पथिक एक बहुत शोभामय अधित्यका में पहुँचे। दोनों किनारे पर कम ऊँचाई के दो पर्वत थे। हरे वृक्षों से सुशोभित हो आकाश माथे पर उठाये हुए थे। दोनों के बीच से कलनादिनी छोटी नदी नीले शीशे के समान फेनदार जल से रूपहले पत्थरों

को धोती हुई जङ्गलों की ओर बह रही थी। नदी के किनारे-किनारे मनुष्य के चलने लायक पगडण्डी बनी थी। वहाँ उतरने से किसी तरफ से कोई भी पथिक को देख नहीं सकता था; सिर्फ पहाड़ के ऊपर से दिखाई दे सकता था।

ऐसे एकान्त स्थान में पहुँच कर एक बनिये ने ब्राह्मण से पूछा—"तुम्हारे पास कितने रुपये-पैसे हैं?"

यह प्रश्न सुनकर ब्राह्मण चौंके और डरे। समझ गये कि शायद यहाँ डाकुओं का विशेष भय है। इसी से होशियार करने के लिए बनिये पूछ रहे हैं। कमजोरी का मतलब है झूठ। ब्राह्मण ने कहा—"मैं एक गरीब ब्राह्मण हूँ मेरे पास क्या रह सकता है?"

बनिये ने कहा—"जो कुछ हो, हमें दे दो, नहीं तो यहाँ रख न सकोगे।"

ब्राह्मण इधर-उधर करने लगे। एक बार उनके मन में आया कि रत्नों की राखी रक्षा के लिए बनियों को दे दूँ। फिर सोचा कि ये सब अपरिचित हैं; इनका विश्वास ही क्या? यही सोच इधर-उधर कर ब्राह्मण ने पहले ही की कहा—"मैं भिक्षुक हूँ, मेरे पास क्या रह सकता है?"

विपद् के समय जो इधर-उधर करता है, वही पकड़ा जाता है। ब्राह्मण को इधर-उधर करते देख बनावटी बनिये समझ गये कि अवश्य ही ब्राह्मण के पास विशेष कुछ है। एक ने चटपट ब्राह्मण की गर्दन पकड़ गिरा दिया और उनकी छाती पर चढ़कर दबाया और दूसरा हाथ उनके मुँह पर रख दिया। मिश्रजी का नौकर किधर भागा, कोई देख भी न सका। मिश्रजी मुँह से बात न निकल सकने के कारण नारायण का याद करने लगे। दूसरे ने इनकी गठरी छीन खोलकर देखना शुरू किया। उसके भीतर से चञ्चलकुमारी की भेजी हुई राखी, दो चिट्ठियाँ और एक अशर्फी निकली। डाकू ने इन्हें पा जाने पर अपने साथी से कहा—"अब ब्रह्महत्या करने की जरूरत नहीं। इसके पास जो कुछ था, उसे हमने ले लिया है। उसे छोड़ दो।"

एक दूसरे डाकू ने कहा—"छोड़ा नहीं जायगा, छोड़ने से अब ब्राह्मण शोर मचाने लगेगा। आजकल राणा राजसिंह का बड़ा दोरात्म्य है। उनके शासन में वीर पुरुष खाने को नहीं पा रहे हैं। इसे किसी पेड़ में बाँध देना चाहिए।"

यह कह डाकुओं ने मिश्रजी के हाथ-पैर-मुँह सब उन्हीं के पहनने के कपड़े से बाँध पहाड़ के निचले हिस्से के एक छोटे से वृक्ष से जकड़ दिया। इसके बाद चचलकुमारी का रक्षाबन्धन और चिट्ठी आदि लेकर पहाड़ की ओट में छिप गये। उस समय पर्वत के ऊपर से एक सवार ने खड़े-खड़े यह तमाशा देखा। डाकू लोग सवार को देख न सके, वे अपने भागने ही में व्यस्त थे।

डाकू नदी के किनारे के वन में घुस कर बहुत ही दुर्गम मनुष्य-समागम-शून्य रास्ते से आगे बढ़े। इसी प्रकार कुछ दूर जाकर वे लोग एक निराली गुफा में घुसे। गुफा के भीतर खाने की चीजें, बिछौना, रसोई के जरूरी सामान आदि मौजूद ही थे। देखकर जान पड़ता है कि डाकू लोग कभी-कभी इस गुफा में छिप कर निवास करते हैं। यहाँ तक कि उसमें घड़ा भर पानी भी था। डाकू लोग वहीं पहुच कर तम्बाकू चढा कर पीने लगे और उनमें से एक ने रसोई का प्रबन्ध शुरू किया। एक ने कहा—"माणिकलाल, रसोई फिर बनेगी। पहले यह फैसला होना चाहिए कि माल का क्या बन्दोबस्त होगा।"

माणिकलाल ने कहा—"पहले यही बातचीत होनी चाहिए।"

तब अशर्फी बाट कर चार हिस्से की गई। सबने एक-एक हिस्सा ले लिया। रक्षाबन्धन को बिना बेचे हिस्सा हो नहीं सकता—उसका बँटवारा न हुआ। जब यह विचार होने लगा कि चिट्ठियों को क्या करें, तो दलपति ने कहा—"कागज किस काम का, उसे जला डालो।" यह कह उसने दोनों चिट्ठियाँ माणिकलाल को जलाने के लिए दे दी।

माणिकलाल कुछ-कुछ लिखना-पढ़ना भी जानता था। उन चिट्ठियों को आद्योपान्त पढ कर प्रसन्न हुआ। उसने कहा—"यह पत्र नष्ट नहीं किया जायगा। इससे फायदा उठाया जा सकता है।'

"कैसे! कैसे!" कहते हुए तीनों बोल उठे। तब माणिकलाल ने चिट्ठी का सब मतलब उन लोगों को समझा दिया। सुनकर चोर लोग बहुत प्रसन्न हुए। माणिकलाल ने कहा—"देखो, यह चिट्ठी राणा को देने से कुछ इनाम मिलेगा।"

दलपति ने कहा—"नासमझ! जब राणा पूछेंगे कि तुमने यह पत्र कहाँ से

पाया; तब क्या जवाब दोगे ? तब क्या यह कह सकोगे कि राहजनी करके पाया है ? तब राणा से पुरस्कार के बदले प्राणदण्ड मिलेगा। ऐसा नहीं यह पत्र ले जाकर बादशाह को देना चाहिए—बादशाह को ऐसा समाचार देने से बहुत पुरस्कार मिलता है, यह मैं जानता हूँ और इसमें..."

दलपति को अपनी बात समाप्त करने का समय नहीं मिला ! बात उसके मुँह में ही रह गई और उसका सिर धड़ से अलग हो जमीन पर जा गिरा।

चौथा परिच्छेद

माणिकलाल

सवार ने पहाड़ के ऊपर से देखा कि चार आदमी एक आदमी को बाँध कर चले गये। आगे क्या हुआ, इसे उन्होंने नहीं देखा—उस समय तक वे पहुँचे नहीं थे। सवार चुपचाप लक्ष्य करने लगा कि वे लोग किस रास्ते से जाते हैं। जब वे सब नदी के किनारे से पलट कर पर्वत की ओट में अदृश्य हो गये, तब सवार अपने घोड़े से उतर पड़ा। इसके बाद उसने घोड़े को चुमकार कर कहा—"विजय ! यहीं रहना मैं आता हूँ। किसी तरह का शब्द न करना..." घोड़ा चुपचाप खड़ा रहा, सवार बहुत तेजी के साथ पैदल ही पहाड़ से उतरा। यह पहले ही कहा जा चुका है कि पहाड़ बहुत ऊँचा नहीं था।

सवार ने पैदल ही मिश्रजी के पास पहुँच उनका बन्धन खोल दिया। ब्राह्मण के छुटकारा पाने पर उसने कहा—"क्या हुआ ? थोड़े में कहिये।" मिश्र ने कहा—"मैं चार आदमियों के साथ आ रहा था। उन सबको मैं नहीं पहचानता, राह की मुलाकात थी। उन सबने अपने को वणिक बताया, यहाँ पहुँचने पर उन सबने मार-पीट कर मेरा सब कुछ ले लिया है।"

प्रश्नकर्त्ता ने पूछा—"क्या-क्या ले गये ?"

ब्राह्मण ने कहा—"एक मोतियों का कड़ा, कई अशर्फी और दो चिट्ठियाँ।"

प्रश्नकर्त्ता ने कहा—"आप यहीं ठहरें, मैं देख आऊँ कि वे सब किधर गये।"

ब्राह्मण ने कहा—"आप कैसे जीतेंगे, वे चार हैं और आप अकेले।"

सवार ने कहा—"आप देखते हैं, मैं राजपूत सिपाही हूँ।"

मिश्र ने अच्छी तरह देखा कि वह मनुष्य युद्ध-व्यवसायी है। उसकी कमर में तलवार, पिस्तौल और हाथ में भाला था। उन्होंने मारे डर के और कुछ नहीं कहा।

जिस राह से डाकू जाते दिखाई दिये थे, उसी राह से राजपूत भी बहुत ही सावधानी के साथ आगे बढा। किन्तु वन में घुसने पर कोई राह दिखाई न दी, डाकुओं का कोई निशान न मिला।

तब राजपूत फिर पहाड के शिखर की ओर चढने लगा। कुछ देर बाद इधर-उधर निगाह दौड़ाकर उन्होंने देखा, दूर वन के भीतर छिपे हुए चार आदमी जा रहे हैं। वहाँ कुछ देर ठहर कर यह देखने लगा कि वे कहाँ जाते हैं। देखा कि कुछ देर बाद वे सब पहाड के निचले हिस्से में उतरे, इसके बाद दिखाई न दिये। तब राजपूत ने विचार किया कि वे सब कहीं बैठ कर विश्राम कर रहे हैं, वृक्षों की ओट में दिखाई नहीं दे रहे हैं। हो सकता है, वहाँ गुफा हो, उसी में सब चले गये हों।

राजपूत ने वृक्षों पर निशाना बनाते हुए वहाँ तक पहुँचने की राह को निश्चित किया। इसके बाद वह उतर कर वन में घुसा और निशान के सहारे आगे बढ़ा। इस तरह बडे कौशल के साथ वह पहले लक्ष्य किये हुए स्थान में पहुँचा। उसने देखा कि पहाड के नीचे एक गुफा है। गुफा के भीतर से आदमियों की आवाज सुनाई दे रही है।

यहाँ तक पहुँचने के बाद राजपूत कुछ इधर-उधर करने लगा। वे सब चार और यह अकेले, इस समय गुफा में घुसना उचित है या नहीं? अगर गुफा के दर्वाजे को रोक कर उन चारों ने उसके साथ सग्राम किया, तो उसके बचने की सम्भावना नहीं। किन्तु यह बात राजपूत के मन में अधिक देर तक ठहर न सकी, मृत्यु से भय काहे का? मृत्यु के भय से राजपूत किसी काम से बाज नहीं आते। दूसरी बात यह कि उसके गुफा में घुसने से उसके हाथ दो-एक अवश्य मरेंगे, अगर वह सब डाकू न हों, तो निरपराधों की हत्या होगी।

यही सोचकर राजपूत सन्देह मिटाने के लिए बहुत धीरे-धीरे गुफा के

दरवाजे के पास पहुँच खड़े-खड़े भीतर के आदमियों की बात कान लगा कर सुनने लगा। उस समय डाकू लोग लूटे हुए माल के बँटवारे की बात-चीत कर रहे थे। यह सुनकर राजपूत ने निश्चय किया कि ये सब डाकू हैं। तब राजपूत ने गुफा में घुसना ही स्थिर किया।

उसने धीरे-से भाले को वन में ही छिपा दिया। इसके बाद तलवार निकाल कर दाहिने हाथ की मुट्ठी में कस कर पकड़ी। बाएँ हाथ में पिस्तौल ले ली। जिस समय डाकू लोग चञ्चलकुमारी के पत्र को लेकर रुपये पाने की इच्छा से विमुग्ध हो लापरवाह हो रहे थे, उसी समय राजपूत बहुत सावधानी से कदम बढ़ाता हुआ गुफा में घुसा। दलपति गुफा के दरवाजे की ओर पीठ किये बैठा था। घुसते ही राजपूत ने मुट्ठी कस कर उस पर तलवार का वार किया। उसके हाथ में इतना बल था कि एक ही वार में डाकू का सिर धड़ से अलग हो जमीन पर जा गिरा।

उसी समय दूसरे डाकू के सिर पर जो दलपति के पास बैठा था, राजपूत ने जोर से लात मारी कि वह भी बेहोश हो जमीन पर गिर पड़ा। राजपूत बाकी दो डाकुओं की ओर निगाह कर देखा कि उनमें एक गुफा के कोने से उसपर वार करने के लिये बहुत बड़े पत्थर को उठा रहा है। राजपूत ने उसको निशाना बना पिस्तौल चलाया, वह घायल होकर जमीन में गिरा और उसी समय मर गया। बाकी रहा माणिकलाल, वह कोई राह न देख गुफा के दरवाजे से बहुत तेजी के साथ निकल कर एक ओर भागा। राजपूत भी उसका पीछा करता गुफा के दरवाजे से बाहर निकला। इसी समय जो भाला राजपूत वन में छोड़ गया था, वह माणिकलाल के पैर से टकराया। माणिकलाल उसे झटपट उठा दाहिने हाथ से तान कर राजपूत की ओर पलट कर खड़ा हो गया। उसने उसे लक्ष्य कर कहा—"महाराज, मैं आपको पहचानता हूँ, आप शान्त हों, नहीं तो इस भाले से मार दूँगा।"

राजपूत ने हँस कर कहा—"यदि तू मुझ पर भाला चलाता, तो मैं बाएँ हाथ से पकड़ लेता। तू मुझे मार न सकेगा...।" इसके बाद राजपूत ने अपने हाथ के खाली पिस्तौल को उसकी दाहिनी मुट्ठी की ओर खींच कर मारा,

चोट से उसके हाथ से भाला गिर गया। राजपूत ने उसे उठाकर माणिकलाल को पकड़ा; इसके बाद वह तलवार से उसका सिर काटने को तैयार हुआ।

तब माणिकलाल ने गिड़गिड़ा कर कहा—"महाराजाधिराज! मुझे जीवन-दान दें; क्षमा करें; मैं शरणागत हूँ।"

राजपूत ने उसके सिर के बाल छोड़ कर तलवार झुका ली। कहा—"तू मरने से इतना डरता क्यों है?"

माणिकलाल ने कहा—"मैं मरने से नहीं डरता; किन्तु मेरी सात वर्ष की एक कन्या है—बिना माँ की, उसके और कोई नहीं, केवल मैं हूँ। मैं सवेरे उसे खिला-पिलाकर बाहर निकला हूँ, शाम को फिर जाकर खिलाऊँगा, तब वह खायेगी। मैं उसकी वजह से मर नहीं सकता। अगर मुझे मारना चाहते हैं तो पहले उसे मार डालिये।"

डाकू काँपने लगा; इसके बाद आँख के आँसू पोंछ कर कहने लगा—"महाराजाधिराज, मैं आप के पैर छूकर कसम खाता हूँ कि अब कभी डकैती न करूँगा। हमेशा आपका दास होकर रहूँगा और अगर जीता रहा, तो किसी न किसी दिन इस सेवक से आप का उपकार होगा।"

राजपूत ने कहा—"तू मुझे पहचानता है?"

डाकू ने कहा—"महाराणा राजसिंह को कौन नहीं पहचानता?"

तब राजसिंह ने कहा—"मैंने तुझे जीवन-दान किया। किन्तु तूने ब्राह्मण का धन हरण किया है, अगर मैं तुझे कुछ दण्ड न दूँ, तो राजधर्म से पतित होऊँगा।"

माणिकलाल ने विनीत भाव से कहा—"महाराजाधिराज! इस पाप में मैं नया फँसा हूँ। कृपा कर मुझे कोई हलका दण्ड दें। मैं आपके सामने ही सजा ग्रहण करता हूँ।"

यह कह डाकू अपनी कमर से छोटा छुरा निकाल अनायास ही अपनी तर्जनी उँगली काटने को तैयार हुआ। छुरी से मांस तो कट गया, लेकिन हड्डी नहीं कटी। तब माणिकलाल ने पत्थर पर उँगली रख और ऊपर छुरे

पर दूसरे पत्थर से मार उँगली काट डाली। उँगली कट कर जमीन पर गिर पड़ी। डाकू ने कहा—"महाराज, इस सजा को मंजूर करें।"

राजसिंह यह देख विस्मित हुए कि वह अपनी उँगली की ओर देख भी नहीं रहा था। उन्होंने कहा—"इतना ही यथेष्ट है, तेरा नाम क्या है?"

डाकू ने कहा—"इस अधम का नाम माणिकलाल सिंह है। मैं राजपूत कुल का कलंक हूँ।"

राजसिंह ने कहा—"माणिकलाल, आज से तुम मेरे पार्षद नियुक्त हुए, आज से तुम घुड़सवार सिपाहियों में शामिल हुए—तुम अपनी कन्या लेकर उदयपुर चले आओ, तुम्हें भूमि और रहने को मकान मिलेगा।"

तब माणिकलाल ने राणा के पैर की धूल ग्रहण की और राणा को क्षण भर के लिये ठहरा कर गुफा में से मोतियों का कड़ा, अशर्फी के चारों टुकड़े और दोनों पत्र ले आया। उसने कहा—"हम लोगों ने ब्राह्मण का जो कुछ लिया था, उसे मैं श्रीचरणों में अर्पण करता हूँ। ये दोनों चिट्ठियाँ आप ही के लिए हैं। इस सेवक ने जो चिट्ठी पढ़ ली है, उसके लिये क्षमा करें।"

राणा ने पत्र को हाथ में लेकर देखा—उन्हीं के नाम का सरनामा था। उन्होंने कहा—"माणिकलाल, यह पत्र पढ़ने का स्थान नहीं। मेरे साथ आओ—तुम यहाँ का रास्ता जानते हो, मुझे बताओ।"

माणिकलाल राह दिखाता हुआ चला। राणा ने देखा कि माणिकलाल ने एक बार भी अपने घाव या घायल हाथ की ओर देखा भी नहीं, अथवा उसके बारे में एक शब्द भी न बोला और न मुँह सिकोड़ा। राणा शीघ्र ही वेगवती छोटी नदी के किनारे एक सुरम्य खुले मैदान में आ पहुँचे।

पाँचवाँ परिच्छेद

चंचलकुमारी का पत्र

वहाँ पत्थरों से टकराती हुई कलकलनादिनी नदी के साथ सुन्दर मधुर वायु और स्वर-लहरी को फैलानेवाले कुञ्ज के पक्षियों की ध्वनि मिल रही है। वहाँ गुच्छे के गुच्छे जङ्गली फूल खिलकर पहाड़ी वृक्षों को शोभित कर रहे हैं।

वहाँ रूप छलक रहा है, शब्द तरङ्गायित हो रहा है, सुगन्ध फैल रही है और मन प्रकृति के वशीभूत हो रहा है। वहाँ राजसिंह एक बड़ी-सी चट्टान पर बैठ कर दोनों चिट्ठियाँ पढ़ने लगे।

पहले उन्होंने राजा विक्रमसिंह का पत्र पढ़ा। पढ़ने के बाद फाड़ कर फेंक दिया। सोचा कि ब्राह्मण को कुछ देने से ही पत्र का उद्देश्य सफल होगा। इसके बाद चंचलकुमारी का पत्र पढ़ने लगे। पत्र इस प्रकार था—

"राजन्! आप राजपूत-कुल के शिरमौर हैं। हिन्दुओं से शिरोभूषण हैं। मैं अपरिचिता हीनबुद्धि बालिका हूँ। अगर विपद् में बिलकुल ही फँसी न होती तो आपको पत्र लिखने की हिम्मत न कर सकती। बहुत विपद् में ही समझ कर मेरे दुःसाहस को क्षमा कीजियेगा।

"जो इस पत्र को लेकर जाते हैं, वे मेरे गुरुदेव हैं। उनसे पूछने पर आपको मालूम होगा कि मैं राजपूत-कन्या हूँ। रूपनगर बहुत छोटा राज्य है; फिर भी विक्रमसिंह सोलकी राजपूत हैं। राजकन्या के नाम से मैं मध्यदेशाधिपति के आगे किसी गिनती में नहीं। राजपूत कन्या होने की वजह से दया की पात्री; हूँ क्योंकि आप राजपूत-पति हैं। राजपूत-कुलतिलक हैं।"

"अनुग्रह कर मेरी विपद् सुनें। मेरे दुर्भाग्य से दिल्ली के बादशाह मेरे पाणिग्रहण की इच्छा करते हैं। शीघ्र ही उनकी फौज मुझे दिल्ली ले जाने को आयेगी! मैं राजपूत-कन्या क्षत्रियकुल में उत्पन्न हुई हूँ। कैसे उसकी दासी बनूँ! राजहंसिनी बगुले की सहचरी कैसे हो सकती है! हिमालय-नन्दिनी होकर किस प्रकार कीचड़ के तालाब से मिलूँ? राजकुमारी होकर कैसे बर्बर मुगल की आज्ञाकारिणी बनूँ! मैंने स्थिर किया है कि इस विवाह के पहले विष खाकर प्राणत्याग करूँगी।"

"महाराजाधिराज! मुझे अहंकारिणी न समझें। मैं जानती हूँ कि मैं छोटी-सी भूमि के अधिकारी की कन्या हूँ। जोधपुर, अम्बर आदि दुर्दण्ड प्रतापशाली राजाधिराजगण भी दिल्ली के बादशाह को कन्यादान करना कलंक नहीं समझते। कलंक समझना तो दूर रहा, बल्कि वे अपना गौरव समझते हैं। मैं उन घरानों के आगे धूल बराबर हूँ। आप पूछ सकते हैं कि तुझमें इतना

अहंकार क्यों है? किन्तु महाराज! क्या सूर्यदेव के अस्त होने पर जुगनू नहीं चमकता? शिशिर नलिनी के मुँद जाने पर क्या छोटा-सा कुसुम विकसित नहीं होता? क्या जोधपुर और अम्बर का कुल ध्वंस होने पर रूपनगर अपने कुल की रक्षा नहीं कर सकता? महाराज! मैंने भाटों से सुना है कि वनवासी राणाप्रताप के साथ महाराजा मानसिंह के भोजन करने आने पर महाराणा ने भोजन नहीं किया; उन्होंने कहा था, जिसने मुसलमान को बहन दी है, उसके साथ भोजन न करूँगा। उन महावीर के वंशधर को क्या मुझे समझाना पड़ेगा कि यह सम्बन्ध राजपूत-कुलकामिनी के लिये इहलोक और परलोक में घृणास्पद है? महाराज! आज भी आपके वंश में मुसलमान विवाह क्यों न कर सका? आप लोग वीर्यवान् महाबल-पराक्रान्त वंश के हैं, किन्तु इसी से यह नहीं। महाबल-पराक्रान्त रूस के बादशाह या फारस के शाह दिल्ली के बादशाह को कन्यादान करने में गौरव समझते हैं, फिर भी उदयपुरेश्वर ने उसे कन्यादान क्यों नहीं किया? वह केवल राजपूत होने के कारण। मैं भी वही राजपूत हूँ। महाराज! चाहे प्राण ही क्यों न त्यागने पड़ें, मैं अपने कुल की रक्षा करूँगी, यही मेरी प्रतिज्ञा है।"

"मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ कि प्रयोजन होने से प्राण-विसर्जन कर दूँगी; फिर भी अट्ठारह वर्ष की उम्र में इस अभिनव जीवन को रखने की इच्छा होती है। किन्तु इस विपद् में इस जीवन की रक्षा कौन करेगा? मेरे पिता की तो कोई बात ही नहीं, उनमें इतनी मजाल कहाँ कि आलमगीर के साथ विवाद करें? और राजपूत राजा छोटे हों या बड़े, सभी बादशाह के सेवक हैं—सभी बादशाह के भय से काँपते हैं। केवल आप ही राजपूत-कुल के [illegible] प्रदीप हैं। केवल आप ही स्वाधीन हैं, केवल उदयपुरेश्वर ही बादशाह की [illegible] के हैं। हिन्दूकुल में और कोई नहीं है, जो इस विपद् में [illegible] की रक्षा करे। मैंने आपकी शरण ली—क्या आप मेरी रक्षा न करेंगे?"

"ऐसे गुरुतर काम के लिये मैं आपसे अनुरोध [illegible] समझें कि मैं समझती नहीं। यह बात भी नहीं [illegible] वशीभूत हो ऐसा लिख रही हूँ। मैं जानती हूँ कि [illegible]

सहज नहीं है। इस पृथ्वी में ऐसा कोई नहीं जो उनके आज्ञा पर रह सके। किन्तु महाराज! याद करें, महाराणा संग्रामसिंह ने बाबरशाह को प्रायः राज्यच्युत कर दिया था। महाराणा प्रतापसिंह ने भी शाह अकबर को मध्य देश से बाहर निकाल दिया था। आप उसी सिंहासन पर आसीन हैं। आप उन्हीं संग्राम और उन्हीं प्रताप के वंशधर हैं। क्या आप उनसे बल में हीन हैं? सुना है कि महाराष्ट्र में एक मामूली से पहाड़ी राजा ने आलमगीर को परास्त कर दिया है, वह आलमगीर राजस्थान के राजेन्द्र के आगे किस गिनती में है?"

"आप कह सकते हैं कि मेरी बाहु में बल है, किन्तु होने पर भी मैं तुम्हारे लिये क्यों इतना कष्ट करूँ? आप क्यों अपरिचिता मुखरा कामिनी के लिये प्राणि-हत्या करें और भीषण समर में अवतीर्ण हों? महाराज! सर्वस्व की बाजी लगाकर शरणागत की रक्षा करना क्या राजधर्म नहीं है? सर्वस्व की बाजी रखकर क्या कुलकामिनी की रक्षा करना राजपूतों का कर्त्तव्य नहीं है?"

यहाँ तक पत्र में राजकन्या के हाथ की लिखावट थी, बाकी उनके हाथ की नहीं उसे निर्मलकुमारी ने लिख दिया था; हम नहीं कह सकते कि राजकन्या इस बात को जानती थीं या नहीं। वह लिखावट यों है—

"महाराज! और एक बात कहते लज्जा जान पड़ती है, किन्तु बिना कहे भी नहीं बनता। मैंने इस विपद् में पड़ प्रतिज्ञा की है कि मुगल के हाथ से जो वीर मेरी रक्षा करेंगे, वे यदि राजपूत हों और यदि मुझे यथाशास्त्र ग्रहण करें तो मैं उनकी दासी होऊँगी। हे वीरश्रेष्ठ! युद्ध में स्त्रीलाभ वीरों का धर्म है! समस्त क्षत्रीकुल के साथ युद्ध कर पांडवों ने द्रौपदी को प्राप्त किया था। काशी-राज्य में एकत्र राजमंडल के सामने अपनी वीरता को प्रकट करने के लिए भीष्मदेव राजकन्याओं को ले आये थे। हे राजन्! आपको रुक्मिणी के विवाह की याद है? आप इस पृथ्वी में आज भी अद्वितीय वीर हैं— क्या आप वीर-धर्म से मुँह फेर लेंगे?"

"मैं जो आपकी रानी होने की कामना कर रही हूँ, वह मेरी दुराकांक्षा है सही, यदि मैं आपके ग्रहण के योग्य न होऊँ तो क्या आपके साथ और किसी तरह के सम्बन्ध की स्थापना का मैं भरोसा नहीं कर सकती? कम से कम

ऐसे अनुग्रह से भी मैं वंचित न होऊँ, इसी अभिप्राय से मैंने गुरुदेव के हाथ राखी-बन्धन भेजा है। वे राखी बाँध देंगे इसके बाद आपका राजधर्म आपके हाथ है, मेरा प्रण मेरे हाथ है; यदि दिल्ली जाना पड़ा, तो मैं दिल्ली की राह में ही विष सेवन करूँगी।

पत्र पढ़कर राजसिंह कुछ देर विचार में डूबे रहे। इसके बाद उन्होंने सिर उठा कर माणिकलाल से कहा—"माणिकलाल, इस चिट्ठी का हाल सिवा तुम्हारे और कौन जानता है?"

माणिकलाल—"जो लोग जानते थे, उन्हें महाराज गुफा में मार आये हैं।"

राजा—अच्छी बात है। तुम घर आओ। उदयपुर में आकर मुझसे मिलना। इस पत्र का हाल किसी के आगे प्रकट न करना।"

यह कहकर राजसिंह ने अपने पास से कई स्वर्ण मुद्राएँ माणिकलाल को दीं। माणिकलाल प्रणाम कर चला गया।

छठवाँ परिच्छेद

माताजी की जय

राणा अनन्त मिश्र को अपनी प्रतीक्षा करने को कह गये थे, अनन्त मिश्र भी उनका आसरा देख रहे थे; किन्तु उनका चित्त स्थिर नहीं था—घुड़सवार के योद्धावेश और तीव्र दृष्टि से वे कुछ प्रभावित हो पड़े थे। एक बार घोर विपद्ग्रस्त होकर भाग्य से प्राण रक्षा हुई था—किन्तु फिर सब खो बैठे हैं, चञ्चलकुमारी का आशा-भरोसा खो बैठे हैं, अब क्या कह कर उनके आगे मुँह दिखायेंगे! ब्राह्मण ऐसा सोच ही रहे थे कि उन्होंने देखा—पहाड़ के ऊपर दो-तीन आदमी खड़े कुछ इशारा कर रहे हैं। ब्राह्मण डर सोचने लगे कि कहीं डाकुओं का दूसरा दल तो नहीं आ पहुँचा? उस समय तो पास में कुछ था भी, जिसे पाकर डाकुओं ने उनका प्राण-वध नहीं किया था, यदि इस बार इन लोगों ने पकड़ा तो क्या देकर अपना प्राण बचायेंगे! ऐसा सोच रहे थे, इसी समय उन्होंने देखा कि पहाड़ के ऊपर के आदमी हाथ पसार कर [illegible]

की ओर इशारा करते और आपस में कुछ बात करते हैं। यह देखते ही ब्राह्मण का सारा साहस भाग गया। ब्राह्मण भागने के लिए उठ खड़े हुए। तब पहाड़ के ऊपर के लोगों में एक नीचे उतरने लगा। यह देख वे भागे।

तब 'पकड़ो-पकड़ो' कहते हुए तीन-चार आदमी उनके पीछे-पीछे दौड़े। ब्राह्मण भी भागे-घबराये से, लड़खड़ाती चाल, फिर भी 'नारायण, नारायण!' जपते ब्राह्मण तीर के समान जा रहे थे।

ये सब और कोई नहीं—महाराणा के नौकर थे। महाराज के साथ उन लोगों की यहाँ कैसे मुलाकात हो गई, उसे कुछ समझाना पड़ेगा। राजपूतों में शिकार का बड़ा शौक है। आज महाराणा सौ घुड़सवार और नौकरों के साथ शिकार के लिए बाहर निकले थे। अब वे शिकार खेलने के बाद उदयपुर की ओर जा रहे थे। राजसिंह हमेशा पहरेदारों से घिरे रह कर राजा बने रहना पसन्द नहीं करते थे। वे कभी-कभी अनुचरों को दूर रख अकेले घोड़े पर सवार हो छिपे वेश में प्रजा की अवस्था देखते-सुनते थे। इसी से उनके राज्य में प्रजा बहुत सुखी थी। वे अपनी आँखों से सब देखते और आप ही सबका दुःख निवारण करते थे।

आज शिकार से लौटने के समय वे अनुचरों को पीछे आने की आज्ञा देकर विजय नामक तेज घोड़े पर सवार हो अकेले आगे बढ़े। इस अवस्था में अनन्त मिश्र से मुलाकात होने पर जो घटनाएँ हुईं वह कही गई हैं; राजा डाकुओं का अत्याचार सुनकर अपने हाथ ब्राह्मण का उद्धार करने के लिये आगे बढ़े थे। जो दुःसाध्य और विपद् से भरा काम होता था, उसमें उन्हें बड़ा आमोद प्राप्त होता था।

इधर बहुत देर हुई देख कितने राज-सिपाही तेजी के साथ उन्हें ढूँढ़ने निकले। उन लोगों ने नीचे उतरते समय देखा कि राणा का घोड़ा खड़ा है—इससे वे बड़े विस्मित और चिन्तित हुए। उन लोगों को आशंका हुई कि राणा किसी आफत में फँस गये हैं। नीचे पत्थर की चट्टान पर अनन्त मिश्र को बैठे देख उन लोगों ने विचार किया कि यह आदमी अवश्य कुछ जानता होगा। इसी से वे लोग हाथ के इशारे से उधर दिखला रहे थे। उनसे कुछ

पूछने के लिए वे लोग नीचे उतर रहे थे, ऐसे समय पण्डित जी नारायण स्मरण कर वहाँ से भागे। तब उन लोगों ने समझा कि यह आदमी [illegible] अपराधी है। यही सोचकर उन लोगों ने दौड़ाया। ब्राह्मण ने एक गुफा [illegible] छिपकर अपनी प्राण-रक्षा की।

इधर महाराणा चञ्चलकुमारी का पत्र पढ़ और माणिकलाल को विदा [illegible] अनन्त मिश्र की खोज में चले, उन्होंने देखा कि वहाँ ब्राह्मण नहीं है। [illegible] बदले नौकर-चाकर और उनके साथी सवार आकर उस मैदान में फैल [illegible] हैं। राजा को देख कर सबने जय-ध्वनि की। [illegible] प्रभु को देख कर [illegible] उछाल में उतर कर उनके पास पहुँचा। उसकी पीठ पर राणा सवार हुए, उनके कपड़े पर खून के छींटे देख सब लोग समझ गये कि कोई छोटा-[illegible] काण्ड हो गया है, राजपूतों का यह नित्य का काम ठहरा—इसीलिए किसी [illegible] कुछ पूछा नहीं।

राणा ने कहा—"यहाँ एक ब्राह्मण बैठे थे, वह कहाँ गये? किसी [illegible] जा है?"

जो लोग उनके पीछे दौड़े थे, उन्होंने कहा—"महाराज! वह आदमी तो भाग गया।"

राणा ने कहा—'शीघ्र उन्हें ढूँढ कर ले आओ।

तब नौकरों ने सब बातें समझा कर कहा—"हम लोगों ने बहुत ढूँढा, किन्तु वे मिले नहीं।"

सवारों में राणा के दो पुत्र और अमात्यगण थे। राजा ने दोनों पुत्रों और दर्बारियों को एकान्त में ले जाकर बात-चीत की। इसके बाद [illegible] उन्होंने सब लोगों से कहा—"प्रिय [illegible]! आज [illegible] देर हो गई। इसमें सन्देह नहीं कि [illegible] भूख-प्यास मिटाना [illegible] लोगों को फिर लौटकर [illegible] जिसे युद्ध का शौक [illegible] जिसे शौक न हो वह उदयपुर लौट जाय।"

यह कह राणा [illegible]

माताजी की जय !" बोलते हुए सब सवार उनके पीछे-पीछे पहाड़ पर चढ़ने लगे। ऊपर पहुँच सब लोग हर-हर कहते हुए रूपनगर जानेवाली राह से बढ़े। पहाड़ी भूमि घोड़ों की टाप से गूँज उठी।

सातवाँ परिच्छेद

निराशा !

इधर अनन्त मिश्र के रूपनगर से जाते ही रूपनगर में महाधूम मच गई। मुगल बादशाह की दो हजार सवार सेना रूपनगर के गढ़ के सामने जा पहुँची। यह सब चञ्चलकुमारी को लेने आये थे !

निर्मल का मुँह सूख गया; शीघ्रता से उसने चंचलकुमारी के पास जाकर कहा—"अब क्या होगा सखी ?"

चंचलकुमारी ने मधुर हँसी के साथ कहा—"किसका क्या होगा ?"

निर्मल—"ये सब तुम्हें लेने आये हैं; किन्तु अभी मिश्र जी उदयपुर गये हैं। अभी उनके लौटने में देर है। राजसिंह के आते-आते ये सब ले जायेंगे। अब क्या होगा सखी ?"

चंचल—"अब कोई उपाय नहीं, केवल मेरा वही आखिरी उपाय है दिल्ली की राह में विष खाकर प्राण-त्याग करना। इसके बारे में मैंने मन को स्थिर कर लिया है। इसलिए मुझे कोई घबराहट नहीं। एक बार मैं केवल पिता से अनुरोध करूँगी, शायद मुगल सेनापति सात दिन का अवसर दे।"

चंचलकुमारी ने समय देखकर पिता से निवेदन किया—"मैं जन्मभर के लिए रूपनगर से चली। अब कब आप लोगों के श्रीचरण के दर्शन होंगे, कब अपनी बचपन की सखियों के साथ आमोद कर सकूँगी; इसका कोई ठिकाना नहीं। मैं सिर्फ सात दिन के अवसर की भिक्षा माँगती हूँ, सात दिन तक मुगल सेना यहीं पड़ी रहे, इन सात दिनों के भीतर आप लोगों से मिल-जुलकर जन्म भर के लिए विदा हो जाऊँगी।"

राजा रो दिये, उन्होंने कहा—"देखूँ, सेनापति से अनुरोध करूँगा; नहीं कह सकता कि वे मानेंगे या नहीं।"

यह अङ्गीकार कर राजा ने मुगल सेनापति से अपना निवेदन प्रकट किया। सेनापति ने विचार कर देखा कि बादशाह ने कोई समय तो निश्चित किया नहीं। यह भी नहीं कहा कि इतने दिन में लौट आना। किन्तु सात दिन देर करने की उन्हें हिम्मत नहीं हुई, दूसरी ओर राजा का अनुरोध भी वे टाल नहीं सके! तब उन्होंने पाँच दिन रहना स्वीकार किया। इससे चंचलकुमारी को बहुत भरोसा नहीं हुआ।

इधर उदयपुर से कोई समाचार नहीं आया—मिश्रजी भी नहीं लौटे। चंचलकुमारी ने आकाश की ओर देख हाथ जोड़ कर कहा—"हे अनाथनाथ, देवाधिदेव! अबला को मार न डालना।"

रात को निर्मल आकर उसके पास ही सोई। सारी रात दोनों एक-दूसरे को छाती से लगा-लगाकर रोयीं। निर्मल ने कहा—"मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।" कई दिनों से वह यही बात कह रही थी। चंचल ने कहा—"तुम मेरे साथ कहाँ जाओगी? मैं तो मरने जा रही हूँ।" निर्मल ने कहा—"मैं भी मरूँगी। क्या मुझे छोड़ जाओगी, इससे मैं जीती रहूँगी?" चंचल ने कहा—"छि:, ऐसी बात न कहो, मेरे दुःख पर और दुःख क्यों लादती हो?" निर्मल ने कहा—"तुम मुझे ले जाओ, मैं तुम्हारे साथ निश्चय चलूँगी, कोई मुझे रोक नहीं सकता।" इस तरह दोनों ने रो-रो कर रात बिताई।

आठवाँ परिच्छेद

मेहरजान

जिन कई दिनों तक मुगल सैनिक रूपनगर में छावनी डाले पड़े थे, वे कई दिन बड़े आमोद-प्रमोद में बीते। मुगल सैनिकों के साथ नाचने-गानेवालों का दल चलता था। जब युद्ध नहीं होता, तब तम्बू के भीतर नाच-गाने की धूम मच जाती थी। सैनिक लोग रूपनगर में केवल आनन्द करने के लिए आये थे। इसलिए रात को तम्बू में नाच और गाने का खूब समा बँधा था।

नाचनेवालियों में एक ने बहुत ख्याति पाई थी। दिल्ली में किसी ने कभी मेहरजान का नाम नहीं सुना—किन्तु जिनका नाम प्रसिद्ध है, वह भी रूपनगर में आकर मेहरजान के समान प्रसिद्ध नहीं हो सकी। मेहरजान नाचनेवाली होने पर भी सच्चरित्रा है, इसलिए उसका यश और भी बढ़ गया है।

मुगल सेनापति सय्यद हसनअली ने उसका गाना सुनना चाहा। किन्तु मेहरजान ने स्वीकार नहीं किया। कहा—"मैं बहुत से आदमियों के सामने नाच-गा नहीं सकती।" सय्यद हसनअली ने स्वीकार किया कि उनके कोई भी मित्र उपस्थित न रहेंगे। नाचनेवाली ने आकर नाच-गाना सुनाया। उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर नाचनेवाली को रुपयों से पुरस्कृत करना चाहा, किन्तु नाचनेवाली ने रुपये नहीं लिये, कहा—"मैं रुपये नहीं चाहती। अगर सन्तुष्ट हुए हों, तो जो मैं चाहती हूँ वह दें। नहीं तो मुझे कोई पुरस्कार नहीं चाहिये।"

सय्यद हसनअली ने पूछा—"तुम क्या इनाम चाहती हो?"

मेहरजान ने कहा—"मैं आपकी सवार सेना में दाखिल होना चाहती हूँ।"

हसनअली बड़े आश्चर्य में आये, हतबुद्धि हो मेहरजान के सुन्दर हास्यमय चेहरे की ओर देखते रहे। मेहरजान ने उन्हें चुप देखकर कहा—"मैं घोड़े, हथियार और वर्दी का दाम दूँगी।"

हसनअली ने कहा—"औरत होकर सवार सिपाही!"

मेहरजान ने कहा—"हर्ज क्या है? कुछ लड़ाई तो होती नहीं, फिर लड़ाई होने पर भी मैं न भागूँगी।"

हसनअली—"लोग क्या कहेंगे?"

मेहरजान—"मैं जानूँ या आप, और कोई जान न सकेगा।"

हसनअली—"तुम ऐसा क्यों चाहती हो?"

मेहरजान—"चाहे जिस लिए हो, इसमें बादशाह का कोई नुकसान नहीं।"

पहले तो हसनअली ने किसी तरह स्वीकार नहीं किया, किन्तु मेहरजान ने भी इन्हें किसी तरह छोड़ा नहीं। अन्त में हसनअली ने स्वीकार किया। मेहरजान की प्रार्थना स्वीकृत हुई।

मेहरजान वही दरिया बीबी है।

नवाँ परिच्छेद

कुछ भक्ति

इस समय एक बार माणिकलालजी का जिक्र करना पड़ा। माणिकलाल राणा से विदा होकर फिर उसी पहाड़ी पर पहुँचा। अब उसकी इच्छा नहीं थी, कि वह डकैती करे, किन्तु वह क्यों न देखे कि उसके पहले के मित्र जिये या मर गये। अगर कोई मरा न हो, तो सेवा करके उसे बचाना चाहिए। इसी सोच-विचार में माणिकलाल ने गुफा में प्रवेश किया।

उसने देखा कि दो आदमी मरे पड़े हैं, जो केवल बेहोश हो गया था, वह होश में आकर कहीं चला गया। तब माणिकलाल दुःखी होकर जङ्गल से लकड़ियों का ढेर ले आया और उससे दो चिताएँ बनाकर दोनों को उसपर सुला दिया। उसने गुफा से चकमक पत्थर और लोहा लाकर उसकी रगड़ से आग [illegible] की। इस तरह अपने साथियों का अन्तिम संस्कार कर वह वहाँ से चला [illegible]या। इसके बाद उसने सोचा कि जिस ब्राह्मण को सताया था, उसकी क्या दशा हुई, तनिक देख लूँ। उसने जहाँ अनन्त मिश्र को बाँध दिया था, वहाँ आकर देखा कि ब्राह्मण वहाँ नहीं है। उसने देखा कि स्वच्छ सलिला पहाड़ी नदी का पानी कुछ मटमैला हो गया है—जगह-जगह वृक्षों की शाखा, लता गुल्म, तृणादि टूटे-फूटे पड़े हैं। इन सब निशानों को देख माणिकलाल समझ गया कि यहाँ बहुतेरे लोग इकट्ठे हुए जान पड़ते हैं। इसके बाद उसने देखा, जगह जगह घोड़ों के टापों के निशान भी हैं; विशेषकर [illegible] कुचल गई हैं; टाप के नाल जड़े अर्धगोल निशान पड़े हुए हैं। माणिकलाल ध्यान पूर्वक बहुत देर तक देखने पर समझ गया कि यहाँ [illegible] सवार आया था।

इसके बाद चतुर माणिकलाल यह जाँच करने लगा कि सवार लोग किधर से आये और किधर गये। उसने देखा कि कुछ निशान [illegible] और हैं और कुछ उत्तर की तरफ। कुछ दूर दक्षिण बढ़ने के बाद निशान फिर उत्तर की ओर बढ़ने लगे। इससे वह समझ गया कि सवार लोग [illegible] यहाँ तक आकर फिर उत्तर को बढ़ गये हैं।

यह सब विचार कर माणिकलाल अपने घर गया। वहाँ से माणिकलाल का मकान कोस भर था। वहाँ रसोई बना भोजन आदि के उपरान्त उसने कन्या को गोद में लिया। इसके बाद घर में ताला लगा, वह कन्या को लेकर बाहर निकला।

माणिक्लाल के कोई नहीं था—केवल एक फूफी की ननद की चचेरी बहन थी। सौजन्य से या आत्मीयता का शौक पूरा करने के लिए माणिक उसे फूफी कहता था।

माणिकलाल कन्या को लिए हुए उसी फूफी के घर गया। बुलाया—"फूफी है?"

फूफी ने कहा—"क्या है बेटा, माणिकलाल? कैसे आये?"

माणिकलाल ने कहा—"फूफी, तुम मेरी इस लड़की को रख सकती हो?"

फूफी—"कितनी देर के लिए?"

माणिक—"यही दो-चार महीने के लिये।"

फूफी—"यह क्या कहते हो बेटा, मैं गरीब औरत लडकी को खिलाऊँगी कहाँ से?"

माणिक—"फूफी, तुम इतनी गरीब हो कि पोती को दो महीने खिला न सकोगी?"

फूफी—"एक लड़की को दो महीने पालने में ही एक अशर्फी का खर्च है।"

माणिक—"अच्छा, मैं एक अशर्फी देता हूँ; तुम लडकी को दो महीने रखो। मैं उदयपुर रहूँगा—वहाँ मैंने राज-दरबार में बहुत बड़ी नौकरी पाई है।"

यह कह माणिक्लाल ने राणा की दो अशर्फियों में से एक उसके सामने फेंक दी और उस कन्या को सौंप कर उसने कहा—"जा, दादी की गोद में बैठ जा।"

फूफी कुछ लोभ में पडी, वह अपने मन में अच्छी तरह समझती थी कि एक अशर्फी से उस लड़की का एक साल का भोजन चल सकता है। माणिक-लाल केवल दो महीने का करार कर रहा था; इसलिए कुछ लाभ होने की ही सम्भावना है। इसके अलावा माणिकलाल ने राज-दरबार में नौकरी स्वीकार

कर ली है—चाहे तो बड़ा आदमी हो सकता है। तब क्या फूफी को कुछ न देगा! इसलिए इस आदमी को हाथ में रखने से लाभ है।

फूफी ने अशर्फी उठाकर कहा—"यह कौन-सी बड़ी बात है, बेटा! तुम्हारी लड़की को पालकर सयानी करना कोई बड़ा काम नहीं। तुम निश्चिन्त रहो बेटा!" कहकर फूफी ने कन्या को गोद में उठा लिया।

कन्या के बारे में ऐसा बन्दोबस्त हो जाने पर माणिकलाल निश्चिन्त हो गाँव से बाहर निकला। किसी से कुछ न कह कर वह रूपनगर जानेवाली सड़क पर चल पड़ा।

माणिकलाल विचार कर रहा था—इस पहाड़ी अधित्यका में इतने सवार क्यों आये थे। यहाँ राणा भी अकेले घूम रहे थे। किन्तु उदयपुर से अकेले राणा के यहाँ आने की सम्भावना नहीं। तब ये सब राणा के साथ के ही सवार हैं। इसके बाद दिखाई देता है कि ये लोग उत्तर से आगे उदयपुर की ओर जा रहे थे, शायद राणा शिकार या वन-विहार के लिए निकले हों और फिर उदयपुर लौट रहे हों। इसके बाद दिखाई दे रहा है कि ये लोग उदयपुर नहीं गये। फिर उत्तर को ही क्यों गये? उत्तर की तरफ तो रूपनगर है। जान पड़ता है कि चंचलकुमारी का पत्र पाकर राणा अपने सवारों की सैन्य के साथ उनका निमन्त्रण स्वीकार करने गये हैं। अगर वे न गये तो उनका राजपूत नाम मिथ्या है। मैं उनका नौकर हूँ, मुझे उनके पास जाना ही चाहिये, किन्तु वे लोग घोड़े से गये हैं और मेरे पैदल जाने में देर होगी। फिर भी एक भरोसा है, पहाड़ी रास्ते में घोड़े उतनी तेजी से न जा सकेंगे और मैं पैदल चलने में तेज हूँ। माणिकलाल दिन-रात चलने लगा। यथासमय वह रूपनगर पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि रूपनगर में दो हजार मुगल सवारों ने आकर छावनी डाल दी है, किन्तु राजपूत सेना का कोई निशान दिखाई नहीं देता। उसने और भी सुना कि दूसरे दिन सवेरे मुगल-सैन्य चंचलकुमारी को लेकर जायगी।

माणिकलाल बुद्धि में एक छोटा सेनापति था। राजपूतों का पता न था। वह कुछ भी दुखी न हुआ। उसने मन-ही-मन कहा—"मुगल [illegible] न सकेंगे, किन्तु मैं अपने प्रभु का पता तो लगा लूँ।"

एक नागरिक से माणिकलाल ने पूछा—"मुझे दिल्ली की सड़क बता सकते हो? तुम्हें कुछ इनाम दूँगा।" नागरिक ने राजी होकर कुछ दूर आगे बढ़कर उसे रास्ता बता दिया। माणिकलाल उसे पुरस्कार देकर विदा हुआ। इसके बाद दिल्ली की सड़क के चारों ओर देखता हुआ आगे बढ़ा। माणिकलाल ने विचार किया था कि राजपूत सवार अवश्य ही दिल्ली की राह में कहीं छिपे होंगे। पहले कुछ दूर तक राजपूत-सैन्य का भी निशान दिखाई नहीं दिया। इसके बाद उसने एक स्थान में देखा कि रास्ता बहुत संकीर्ण हो गया है। दोनों किनारे दो पहाड़ प्रायः आध कोस तक समान रूप से चले गये हैं। बीच में सिर्फ सँकरा रास्ता है। दाहिनी ओर का पहाड़ बहुत ऊँचा और दुर्गम है—उसकी चोटी प्रायः रास्ते की ओर झुक पड़ी है। बाईं ओर का पहाड़ कुछ-कुछ नीचा है। चढ़ने की सुविधा है और पहाड़ भी ऊँचा नहीं है। एक स्थान में बाईं ओर एक दरार-सी पड़ी है, उसमें से एक छोटी राह है।

नैपोलियन आदि अनेक डाकू सुदक्ष सेनापति थे, राजा होने पर लोग उन्हें डाकू नहीं कहते। माणिकलाल राजा नहीं है, इसलिए हम उसे डाकू कहने को बाध्य हैं। किन्तु राजा डाकुओं की तरह उस छोटे डाकू में भी सेनापति दृष्टि थी। पर्वत से रुकी हुई संकीर्ण राह देखकर उसके मन में आया कि यदि राणा आये होंगे तो यहाँ ही होंगे। जब मुगल-सैन्य उस सँकरी राह से जायेगी, तभी पर्वत शिखर से राजपूत सवार वज्र की तरह उनके सिर पर टूट पड़ेंगे। दाहिनी ओर का पहाड़ दुर्गम है; सवारों के उतरने और चढ़ने लायक नहीं है; अतएव वहाँ राजपूत-सेना रह नहीं सकती; किन्तु बाईं ओर के पहाड़ से उन लोगों को उतरने में सुविधा है। माणिकलाल उसी पहाड़ पर चढ़ा। उस समय सन्ध्या हुई थी।

चढ़ने पर उसे कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। उसने सोचा कि जरा और ढूँढ़ कर देखूँ। किन्तु फिर उसे ख्याल आया कि सिवा राजा के और कोई राजपूत मुझे पहचानता नहीं, मुगलों का जासूस समझ कोई भी छिपा हुआ राजपूत मुझे मार डाल सकता है। यह सोच कर वह और आगे नहीं बढ़ा; उसने वहीं खड़े-खड़े कहा—"महाराणा की जय हो!"

होगा। राजकुमारी की पालकी के साथ-साथ तुम्हें रहना पड़ेगा और जो-जो मैं कहता हूँ, वह सब करना होगा।" इसके बाद राणा ने उसे विस्तार के साथ बताया। सुनकर माणिकलाल ने कहा—"महाराज की जय हो। मैं काम सिद्ध करूँगा, कृपा कर मुझे एक घोड़ा दिला दें।"

राणा ने कहा—"हम एक सौ योद्धा हैं, एक ही सौ घोड़े हैं, और घोड़े नहीं हैं; जो तुम्हें दूँ। दूसरे का घोड़ा भी दे नहीं सकता। मेरा घोड़ा ले सकते हो।"

माणिक—"जीवित रहते मैं उसे ले नहीं सकता। मुझे जरूरी हथियार दे दें।"

राणा—"कहाँ पाऊँ? जो अस्त्र हैं, वही हम लोगों के लिये पूरे नहीं हैं। किसे निरस्त्र करके तुम्हें हथियार दिलाऊँ? मेरे हथियार ले सकते हो।"

माणिक ने कहा—"ऐसा नहीं हो सकता। मुझे वर्दी मिलने की आज्ञा हो।"

राणा—"यहाँ जो लोग पहन कर आये हैं, उसके अलावा और कोई पोशाक नहीं। मैं कुछ भी नहीं दे सकता।"

माणिक—"महाराज! तब आज्ञा दें; मैं जैसे होगा, वैसे ही सब संग्रह कर लूँगा।"

राणा हँसे। उन्होंने कहा—"चोरी करोगे?"

माणिकलाल ने कहा—"मैंने कसम खाई है कि अब वह काम न करूँगा।"

राणा—"तब क्या करोगे?"

माणिक—"ठग कर लूँगा।"

राणा हँसे। उन्होंने कहा—"युद्ध के समय सभी चोर और ठग हैं। मैं भी बादशाह की बेगम चुराने आया हूँ। चोर की तरह छिपा हुआ हूँ। तुम जैसे चाहो, यह सब संग्रह कर सकते हो।"

माणिकलाल प्रसन्न चित्त से प्रणाम कर विदा हुआ।

दसवाँ परिच्छेद

रसिका पानवाली

माणिकलाल उसी समय रूपनगर लौट आया; उस समय सन्ध्या बीत गई थी। रूपनगर के बाजार में पहुँच माणिकलाल ने देखा कि बाजार बहुत ही

शोभामय है। दूकान के सैकड़ों दीपकों की शोभा से बाजार जगमगा रहा है। तरह-तरह की भोजन की चीजें जबान में पानी ला रही हैं। फल-फूलों की माला के ढेर के ढेर आँखों में तरावट और सुगन्ध से मुग्ध कर रहे हैं। माणिक का मतलब था घोड़ा और हथियार संग्रह करना; किन्तु इसके साथ माणिकलाल अपने पेट को कुछ देना चाहता था। माणिक ने कुछ मिठाई लेकर खाना शुरू किया। छः सेर भोजन करके माणिक ने डेढ़ सेर पानी पिया। दुकानदार को उचित मूल्य देकर पान खाने चला।

उसने देखा कि एक पान की दूकान पर खूब भीड़ लगी हुई है। उसने देखा कि दूकान में बहुतेरे चिराग और विचित्र फानूसों से स्निग्ध ज्योति फैल रही है। दीवार में रंग-बिरंगे कागज जड़े हुए हैं; तरह-तरह की बढ़िया तस्वीरें लटक रही हैं; चित्र विशेष रूप से रंगीन हैं, जिसे आधुनिक भाषा में 'अश्लील' और प्राचीन भाषा में 'अत्यन्त भोंडी' कहते हैं। बीच में कोमल [illegible]चे पर बैठी दूकान की मालकिन पान बेच रही है। उम्र में तीस के ऊपर परन्तु कुरूपा नहीं। वर्ण गोरा, आँखें बड़ी-बड़ी, निगाह बहुत ही चंचल, मुस्कराहट खूब मजेदार—उसकी हँसी अनिन्द्य दाँतों की श्रेणी में सदा खेलती हुई-सी है; हँसी के साथ उसके सब जेवर भी झूम रहे थे। जेवर कितने ही चाँदी और कितने सोने के हैं, किन्तु बनावट में अच्छे और खूबसूरत हैं। माणिकलाल ने सब देख-सुन कर पान माँगा।

पान वाली खुद पान नहीं बेचती। सामने एक दासी पान बनाती और बेचती है, पान वाली केवल पैसे लेती है और मीठी हँसी हँसती है।

दासी ने एक पान बनाकर दिया, माणिकलाल ने दूना दाम दिया। फिर पान माँगा, जब तक पान बनता रहा, तब तक माणिकलाल पानवाली के साथ हँस-हँस कर कुछ बातें करने लगा। [illegible] पान वाली [illegible] से बढ़ हुआ न जाने, [illegible] की प्रशंसा करने लगा। [illegible] मीठी बात करने लगा। [illegible] माणिकलाल ने दूकान पर [illegible] चबाते पानवाली का हुक्का खींच कर पीना शुरू किया। [illegible] माणिकलाल ने

पान खाते-खाते दूकान का सारा मसाला ही खतम कर दिया। दासी मसाला लेने के लिए दूसरी दूकान में गई। इस अवसर में माणिकलाल ने पानवाली से कहा—"महरजिया! तू बड़ी चतुर है, मैं एक चालाक औरत ढूँढ रहा था। मेरा एक दुश्मन है; उसे जरा सजा देने की इच्छा है। जो कुछ करना होगा, वह सब मैं तुम्हें समझा दूँगा। यदि तुम मुझे सहायता दोगी, तो एक अशर्फी इनाम दूँगा।"

पानवाली—"क्या करना होगा?"

माणिक ने चुपके से कहा। पानवाली बड़ी रसिया थी; वह उसी समय राजी हो गई। उसने कहा—"अशर्फी की जरूरत नहीं, मजाक ही मेरा ईनाम है!"

तब माणिकलाल ने दावात, कलम और कागज माँगा। दासी पास ही के बनिये की दूकान से ले आई। माणिक ने पानवाली से सलाह कर यह पत्र लिखा—"हे प्राणनाथ! जब तुम नगर घूमने आये थे, तब मैं तुम्हें देखकर बिलकुल ही आशिक हो गई। तुमसे एक बार मुलाकात न हुई, तो मेरी जान पर बन आयेगी। सुनती हूँ कि तुम लोग कल चले जाओगे। इसलिए आज एक बार मुझसे अवश्य मुलाकात करो; नहीं तो मैं छूरी से गला काट लूँगी। जो चिट्ठी लेकर जाता है, उसी के साथ आओ; वह तुम्हें रास्ता दिखाकर ले आयेगा।"

पत्र लिख जानेपर माणिकलाल ने सरनामे पर लिखा—"मुहम्मद खाँ।"

पानवाली ने पूछा—"यह कौन आदमी है?"

माणिक—"एक मुगल सरदार है।"

वास्तव में माणिकलाल मुगलों में से किसी को भी पहचानता नहीं था। किसी का नाम तक भी नहीं जानता था। उसने सोचा कि दो हजार मुगलों में अवश्य ही कोई मुहम्मद खाँ होगा। वैसे तो सभी मुगल खाँ होते ही हैं। इसलिये उसने अटकल कर मुहम्मद खाँ लिख दिया। लिखावट समाप्त होने पर माणिकलाल ने कहा—"इसे कहाँ ले जाऊँ?"

पानवाली ने कहा—"इस घर से काम न चलेगा। और कोई जगह किराये पर लेनी होगी।"

तब दोनों ने बाजार में जा किराये का मकान ले लिया। पानवाली मुगल के स्वागत के लिए उसे सजाने में लगी—माणिकलाल चिट्ठी लेकर मुगल-छावनी में पहुँचा। छावनी में खूब चहल-पहल थी, कोई बन्दोबस्त नहीं, कोई नियम नहीं। छावनी में बाजार लगा हुआ है; खेल-तमाशे और रोशन-चौकी की धूमधाम है। माणिकलाल किसी मुगल को देखते ही पूछता—"मुहम्मद खाँ कौन साहब हैं? उनके नाम का एक खत है।" कोई जवाब नहीं देता, कोई गाली देता है, कोई कह देता है—"नहीं जानता।" कोई कहता—"खोज लो।" अन्त में एक मुगल ने कहा—"मैं मुहम्मद खाँ को नहीं जानता, लेकिन मेरा नाम भी मुहम्मद खाँ है। चिट्ठी देखूँ देखने से मालूम होगा कि वह चिट्ठी मेरी है या नहीं।"

माणिकलाल ने बड़े आनन्द के साथ उसके हाथ चिट्ठी दे दी और मन में सोचा—कोई भी मुगल हो, फन्दे में आना चाहिये। उधर मुगल ने सोचा कि चिट्ठी किसी की क्यों न हो, इसी मौके पर जरा बीबी से मिल तो आऊँ। तब उसने खुश होकर कहा—"हाँ, यह चिट्ठी मेरी ही है। चलो मैं तुम्हारे साथ चलूँगा।" यह कह मुगल अपने खेमे में गया और वहाँ कंघी कर इत्र लगाकर कपड़े पहन लिए। उसने बाहर निकलकर पूछा—"क्यों नौकर, वह जगह यहाँ से कितनी दूर है?"

माणिकलाल ने हाथ जोड़कर कहा—"हुजूर, बहुत दूर है। घोड़े पर चलना ठीक है।"

"बहुत अच्छा!" कहकर खाँ साहब घोड़े पर सवार होने लगे, इसी समय माणिकलाल ने फिर हाथ जोड़कर कहा—"हुजूर, [illegible] है, हथियार से लैस होकर चलना ही अच्छा है।"

नये आशिक ने सोचा कि यह अच्छी बात है, [illegible] बिना हथियार क्यों जाऊँ? तब शरीर पर [illegible] सवार हुआ।

ठीक जगह पर पहुँच कर माणिकलाल ने [illegible] — [illegible] मैं आप के घोड़े को पकड़ता हूँ। आप उतर [illegible]।"

खाँ साहब उतर पड़े। माणिकलाल ने घोड़े को पकड़े रखा। खाँ बहादुर मकान में घुस रहे थे—उसी समय उनके मन में आया कि हथियार से लदे-फदे रमणी के पास जाना उचित नहीं। तब उसने लौटकर अस्त्र-शस्त्र भी माणिकलाल के हवाले किये। माणिकलाल को और भी सुविधा हुई।

घर में जाकर खाँ साहब ने देखा कि चौकी पर बहुत बढ़िया बिस्तर लगा हुआ है। उस पर सुन्दरी बैठी हुई है, इत्र और गुलाब की सुगन्ध से कमरा बसा हुआ है। चारों ओर फूल बिखरे हुए हैं और सामने ही फर्श पर सुगन्धित तम्बाकू तैयार है। खाँ साहब जूता उतार कर चौकी पर बैठ, बीवी से मीठे वचन से बोले, इसके बाद वर्दी उतार कर खूँटी पर रख फूलों के पंखे की हवा खाने लगे और सटक हाथ में ले सुख की आशा में तम्बाकू पीने लगे। बीवी ने भी प्रेम की दो-चार बातों में उन्हें मोहित कर लिया।

तम्बाकू पीते ही समय माणिकलाल ने आकर दर्वाजा खटखटाया। बीवी ने पूछा—"कौन है ?"

माणिकलाल ने आवाज बिगाड़ कर कहा—"मैं।"

तब चतुरा औरत ने बहुत घबरा कर खाँ साहब से कहा—"मेरे मालिक आ गये हैं, मैं समझती थी कि आज वह नहीं आयेंगे। तुम जरा इस चौकी के नीचे छिप जाओ। मैं उन्हें विदा किए देती हूँ।"

मुगल ने कहा—"यह कैसी बात ? मर्द होकर डर के मारे छिप जाऊँ ! उसे आने दो, अभी कत्ल किए देता हूँ।"

पानवाली ने दाँतों से जुबान दबाकर कहा—"सब चौपट हो गया। अपने आदमी को मरवा कर मैं अपना अन्न-वस्त्र क्यों बन्द करूँ ? क्या तुम्हारी मुहब्बत का यही फायदा है ? जल्दी चौकी के नीचे छिपो। मैं अभी उन्हें विदा किए देती हूँ।"

इधर माणिकलाल बार-बार दर्वाजा खटखटा रहा था। लाचार हो खाँ साहब चौकी के नीचे चले गये। मोटा शरीर, बहुत जल्दी घुस न सका। एकाध जगह चमड़ा छिल गया। क्या करे, प्रेम में बहुत कुछ सहना पड़ता

है। उस मोटे-ताजे शरीर के चौकी के नीचे घुसने पर पानवाली ने दर्वाजा खोल दिया।

घर में माणिक के आने पर पानवाली ने पहले की सलाह के अनुसार कहा—"तुम फिर आ गए न! तुमने तो कहा था कि आज न आओगे!"

माणिकलाल ने पहले ही की तरह आवाज बिगाड़ कर कहा—"चाभी भूल गया हूँ।"

पानवाली चाभी ढूँढने के बहाने खाँ साहब की वर्दी लेकर बाहर निकल आई। इसके बाद सिकड़ी लगाकर बाहर ताला बन्द कर दिया। भीतर खाँ साहब चौकी के नीचे चूहों के दाँत बर्दाश्त कर रहे थे।

उसे कोठरी के पिंजड़े में बन्द कर माणिकलाल ने उसकी वर्दी पहन ली। इसके बाद उसके हथियारों से लैस हो और उसके घोड़े पर सवार हो वह मुसलमानी छावनी में उसकी जगह दखल जमाने चला।

राजसिंह

चौथा खण्ड

पहला परिच्छेद

चञ्चल की विदाई

सवेरे मुगल सेना तैयार हो गई। रूपनगर गढ़ के सिंहद्वार से साफे और कमरबन्द से सुशोभित, दाढ़ी-मूँछवाले; भयानक अस्त्रों से सजे हुए घुड़सवारों की कतार बँध गयी। पाँच-पाँच सवारों का एक-एक दल बना, दल के पीछे दल, इसके बाद फिर पंक्ति, कतार बाँधकर सवार चलने लगे। भौरे के झुण्ड से घिरे हुए खिले कमल जैसे उन लोगों के चेहरे सुशोभित थे। उनके घोड़ों की गर्दन का घुमाव सुडौल था। लगाम की रोक से अधीर, घोड़े खडे थे। कतार में हिलते-डोलते और उछलते और नाचते हुए घोडे आगे बढ़ने को तैयार थे।

चंचलकुमारी सवेरे उठ स्नानादि कर जेवरों से सज गई। निर्मल ने उन्हें जेवर पहनाये। चंचल ने कहा—"फूलों की माला पहनाओ सखी, मैं चिता पर बैठने जा रही हूँ।" प्रबल वेग से बढ़ने को तैयार आँसुओं को पीकर निर्मल ने कहा—"रत्न के अलंकार पहनाऊँगी सखी, तुम उदयपुरेश्वरी होने जा रही हो।" चंचल ने कहा—"पहनाओ-पहनाओ निर्मल, मैं कुत्सित होकर क्यों मरूँ? मैं राजा की लड़की हूँ, राजा की लड़की की तरह सज-धजकर मरूँगी। सौन्दर्य के समान और कौन-सा राजत्व है? राज्य भी क्या बिना सौन्दर्य के शोभा देता है? यह पहनाओ।" निर्मल ने अलंकार पहना दिये और उस फूले हुए वृक्ष की कली को देखकर रो पड़ी। उसने कुछ कहा नहीं तब चंचलकुमारी निर्मल के गले से लिपट कर रोई।

इसके बाद चंचल ने कहा—"निर्मल, अब तुम्हें देख न सकूँगी। विधाता ने क्यों इतनी विडम्बना की। देखो, छोटा-सा कँटीला पेड़ जहाँ जन्म लेता है वहीं रहता है, मैं रूपनगर में क्यों न रहने पाई!"

निर्मल ने कहा—"फिर मुझसे मिलोगी। तुम चाहे जहाँ रहो, मुझसे फिर मुलाकात होगी ही। मुझे देखे बिना तुम मर न सकोगी और तुम्हें देखे बिना मैं न मरूँगी।"

चंचल—"मैं तो दिल्ली की राह में मरूँगी।"

निर्मल—"तब दिल्ली की राह में ही मुझे भी देख पाओगी।"

चंचल—"यह कैसी बात निर्मल ! तुम वहाँ कैसे पहुँचोगी ?"

निर्मल कुछ न बोली, चंचल के गले से लिपट कर रोने लगी।

चंचलकुमारी सज-धजकर महादेव के मन्दिर में गई। उसने भक्ति-भाव से अपने नित्य के व्रत के अनुसार शिव की पूजा की। पूजा के बाद उसने कहा—"देवाधिदेव महादेव ! मैं मरने जा रही हूँ; किन्तु पूछती हूँ कि बालिका के मरने में तुम्हें इतनी तुष्टि क्यों है प्रभो ! क्या मेरे जीने से तुम्हारी सृष्टि न चलती ? अगर तुम्हारे मन में यही था, तब तुमने राजा की लड़की बनाकर मुझे संसार में क्यों भेजा ?"

महादेव की वन्दना कर चंचलकुमारी माता के चरणों में प्रणाम करने गई। माता को प्रणाम कर चंचल बहुत रोई। इसके बाद एक-एक सखियों से चंचल ने विदाई ली। सब ने रो-रोकर बहुत कुहराम मचा दिया। चंचल ने किसी को जेवर, किसी को खिलौना और किसी को धन से पुरस्कृत किया। किसी से कहा—"रोओ नहीं, मैं फिर आऊँगी।" किसी से कहा—"रोओ मत देखती नहीं कि मैं पृथ्वीश्वरी होने जा रही हूँ।" किसी से कहा—"रोना नहीं, अगर रोने से दुःख दूर होता तो मैं रो-रोकर रूपनगर के पहाड़ को बहा देती।"

सबसे विदाई लेकर चंचलकुमारी डोले पर सवार हुई। एक हजार सवार डोले के आगे हुए, एक हजार पीछे। चाँदी का बना हुआ [illegible] डोला विचित्र सुनहले वस्त्रों से ढँक गया। बाजा, [illegible] आवाज से दर्शकों को आनन्दित करने लगा। चंचलकुमारी [illegible] हुई; किले में शंख की ध्वनि हुई। [illegible] सेनापति ने चलने की आज्ञा दी, तब [illegible] की तरह वह घुड़सवार श्रेणी प्रवाहित हुई, [illegible] घोड़े आगे बढ़े—सवारों के हथियार [illegible]।

सवार लोग [illegible] की [illegible] के पीछे जो सवारों की कतार थी, उनमें [illegible]

"शरम मरम से प्यारी,
सुमरे वशीधारी।
झरते लोचन से वारी,
न समझे गोप कुमारी॥
वहाँ बैठे कृष्ण मुरारी,
निरखते राह तुम्हारी।

राजकुमारी के कान में गाने की यह आवाज पहुँची। उसने मन में ही कहा—"हाय, काश सवार का गाना सच होता!" उस समय राजकुमारी राजसिंह की चिन्ता में थी। वह नहीं जानती थी कि उँगलीकट्टा माणिकलाल उनके पीछे यह गाना गा रहा है। माणिकलाल ने कोशिश कर पालकी के पीछे स्थान लिया था।

इधर निर्मलकुमारी ने बड़ा तूफान खड़ा किया। चञ्चल तो रत्नजटित पालकी में सवार हो चली गई—आगे-पीछे दो हजार सवार खुदा की महिमा की आवाज लगाते रूपनगर के पहाड़ों को ध्वनित करते हुए चले। किन्तु निर्मल की रुलाई बन्द नहीं हुई। सैकड़ों पुरजन में चञ्चल के अभाव से निर्मल अकेली हो गई। निर्मल ऊँचे बुर्ज पर चढ़कर देखने लगी—वह देखने लगी कि कोस भर फैले अजगर साँप के समान घुड़सवारों की श्रेणी पहाड़ी राह में खिसकती, कभी ऊँचे कभी नीचे उतरती जा रही है—सवेरे के सूर्य की किरणों में उनके ऊपर उठे भालों के फल चमक रहे हैं। कुछ देर तक निर्मल देखती रही। उसकी आँखें जलने लगीं। तब निर्मल आँख मूँद छत से नीचे उतरी। निर्मल कुछ सोचकर छत से नीचे उतरी। उतर कर उसने पहले सब जेवर उतार कहीं छिपाकर रख दिये, जिन्हें कोई देख न सका। जमा किए रुपयों में से कुछ रुपये निर्मल ने चुपचाप ले लिए। केवल वही लेकर निर्मल राजपुरी से बाहर निकली। इसके बाद तेजी के साथ, जिधर सवार सेना गई थी, उसी ओर अकेली चल पड़ी।

—:o:—

दूसरा परिच्छेद

रण-पंडित मुबारक

बड़े अजगर साँप की तरह घूमती-फिरती वह सवार-सेना पहाड़ी राह से चली। जिस दर्रे की राह से पहाड़ पर चढ़कर माणिकलाल राजसिंह से मुलाकात कर आया था, वह सवारों की कतार, बिल से घुसते हुए महासर्प की तरह उसी दर्रे में घुसी। घोड़ों की असंख्य टापों से पहाड़ प्रतिध्वनित होने लगे यहाँ तक कि उस स्थिर सन्नाटे के जङ्गली देश में सवारों के शस्त्रों की आवाज इकट्ठी हो रोमहर्षण प्रतिध्वनि की उत्पत्ति का कारण बनने लगी। बीच बीच में घोड़ों की हिनहिनाहट और सैनिकों की आवाज थी। पर्वत के तल में जो लतागुल्म थे, पैरों की चोट से उनके पत्ते काँपने लगे। छोटे जङ्गली पशु, पक्षी, कीड़े जो उस वनप्रदेश में निर्भय रहते थे, वह सब तेजी से भागने लगे। इस प्रकार घोड़ों की सारी कतार उस दर्रे में घुस पड़ी। तब एकाएक धमाके के साथ एक विकट आवाज हुई। जहाँ आवाज हुई, वहाँ के सवार क्षण भर के लिए स्तम्भित होकर खड़े हो गए। देखा कि पर्वत के शिखर से एक बहुत बड़ा पत्थर लुढ़ककर सेना के बीच गिरा जिसकी चोट से एक सवार मर गया और एक घायल हो गया।

देखते-देखते कोई समझ न सका, क्या हुआ; फिर सेना में एक ढोका गिरा—एक, दो, तीन, चार, धीरे-धीरे दस, पचीस—इसके बाद एक एक बार ही [illegible] छोटे-बड़े ढोकों की शिलावृष्टि होने लगी। [illegible] और [illegible], [illegible] मरे, कोई घायल हो राह में गिरकर उस [illegible] [illegible]। [illegible] को लेकर भागने को तैयार हुए—[illegible] पेन से भरा ढका हुआ था—[illegible] सैनिक लोग आपस में ही अस्त्र चलाकर [illegible] बिलकुल ही बन्द हो गई—सेना में [illegible]।

'[illegible] होशियार, [illegible] [illegible] राजकुमारी की पालकी थी, उसके [illegible]

उपद्रव हो रहा था। कहार अपना प्राण बचाने में व्यस्त थे। घोड़े पीछे हटकर ऊपर चढे पडते थे। पाठकों को याद होगा कि इस पहाड़ी राह में बाईं ओर से एक बहुत ही सँकरी गली है। उसमें एक बार में एक ही सवार प्रवेश कर सकता है। जिस समय उसके पास सेना के बीच की पालकी पहुँची, उसी समय यह काण्ड आरम्भ हुआ था। ऐसा ही राजसिंह ने बन्दोबस्त किया था। सुशिक्षित माणिकलाल ने कहारों को यही राह बताई। माणिकलाल की बात सुनते ही कहारों ने अपनी और राजकुमारी की प्राणरक्षा के लिए पालकी को लेकर उसी राह में प्रवेश किया।

साथ ही साथ माणिक्लाल भी घोडा बढ़ाकर उसी राह चला। पास के सैनिकों ने देखा, जान बचाने की एक यही राह है; तब और एक सवार माणिकलाल के पीछे-पीछे उस राह में घुसने चला। इसी समय ऊपर से एक बड़ा शिलाखण्ड गडगडाता और उस पहाड़ी प्रदेश को कँपाता हुआ उसी राह में आकर गिरा और रास्ता बन्द हो गया। उसकी चोट से दूसरा सवार पिस उठा। गली का मुहाना बिलकुल बन्द हो गया। फिर कोई उस राह में घुसने न पाया। अकेला माणिकलाल पालकी के साथ अपनी इच्छित राह पर चला।

सेनापति हसनअली खाँ मनसबदार उस समय सेना में सबसे पीछे थे वे प्रवेश-पथ के मुहाने पर स्वयं खडे हो सँकरी राह में सेना के घुसने का प्रबन्ध कर रहे थे। बाद को सेना के प्रविष्ट होने पर स्वय धीरे-धीरे सबसे पीछे आ रहे थे। उन्होंने देखा कि एकाएक सैन्यश्रेणि बड़ा शोर मचाती पीछे हट रही है। कारण पूछने पर कोई अच्छी तरह समझा कर कुछ कह न सका। तब वे सिपाहियों को धिक्कारते हुए लौटने लगे और स्वयं आगे बढकर देखने चले कि मामला क्या है।

किन्तु तब तक सेना रही नहीं। पहले ही कहा गया है कि उस पहाड के दाहिने का पहाड बहुत ही ऊँचा और दुर्गम है—उसकी चोटी प्राय: राह के ऊपर झुल कर राह में अन्धेरा किए हुई है। राजपूत लोग अपने रहने की जगह से अनुसन्धान कर राह निकाल पचास आदमियों से अधिक ऊपर चढ़े अदृश्य रूप से वहाँ ही छिपे थे। एक-एक ने दूसरे से चालीस-पचास हाथ दूर के स्थान

पर अधिकार ग्रहणकर सारी रात पत्थर के ढोंके इकट्ठे कर अपने [illegible] एक ढेर लगा रखा था। इस समय क्षण-क्षण में पचास आदमी पचास ढोंके नीचे सवारों पर बरसा रहे थे। एक एकबार की चोट से पचास पचास सवार घायल हो मारे जा रहे थे। यह दिखाई नहीं देता कि कौन मार रहा है। देख सकने पर भी दुर्गम पहाड़ के ऊपर के शत्रुओं पर किसी तरह से मार सम्भव नहीं थी—इसलिए मुगल लोग बिना भागने के और कोई चेष्टा कर नहीं रहे थे। हजारों सवार पालकी के बीच में मरने और घायल होने से बचकर भागते हुए उस राह से निकल प्राणरक्षा कर रहे थे।

पचास राजपूत दाहिने पहाड़ के ऊपर से शिलावृष्टि कर रहे थे, बाकी के पचास स्वयं राजसिंह के साथ बाईं ओर के कम ऊँचे पहाड़ पर छिपे बैठे थे। यह लोग अभी तक कुछ करते नहीं थे किन्तु अब उनके काम का समय उपस्थित हुआ। जहाँ शिलावृष्टि के कारण भयानक विपत्ति का सामना था वहाँ मुबारक खड़ा था। उसने पहले सिपाहियों को शृङ्खला के साथ पहाड़ी राह से बाहर निकालने का यत्न किया, किन्तु जब उसने देखा कि सकरी गली से राजकुमारी की पालकी चली गई, केवल एक दो सवार उसके साथ गया और उसी समय दरवाजे की तरह एक ढोंका वहाँ आकर रास्ता बन्द हो गया, तब उसके [illegible]।

त्याग किया। ऊपर से दौड़कर वह लोग घोड़े समेत मुगल सवारों पर टूट पड़े। जो नीचे थे, वे तो दबकर ही मर गये। सिर्फ पाँच-सात आदमी बचे। मुबारक उन लोगों को लेकर लौट पड़ा। राजपूतों ने उनका पीछा नहीं किया।

मुबारक के साथ मुगल सवार का वेश धारण किये हुए माणिकलाल भी बाहर निकल आया। वह आते ही एक मरे सवार के घोड़े पर चढ़ उस छितराई हुई मुगल सैन्य में कहाँ छिप गया इसे कोई देख न सका।

जिस मुहाने से मुगल सैनिक उस पहाड़ी प्रदेश में घुसे थे उसी राह से माणिकलाल भी निकला। जिन लोगों ने उसे देखा, वह समझे कि भाग रहा है। माणिकलाल गलियारे से बाहर हो तेजी के साथ रूपनगर गढ़ की ओर चला।

मुबारक ने पत्थर के ढोंके को फिर लाँघ कर बाहर आने पर कहा—"इस पहाड पर चढ़ने में कष्ट नहीं, सभी लोग घोडा लेकर इस पहाड़ पर चढ़ो। डाकू बहुत थोड़े हैं। हम उन सबको मार डालेंगे। तब पाँच सौ मुगल सेना "दीन-दीन" आवाज के साथ घोड़े सहित बाईं ओर के उस पहाड़ के ऊपर चढने लगी। मुबारक अधिनायक था। मुगलों के साथ दो तोपें भी थीं। तोपों को ठेल कर यह लोग पहाड पर चढ़ाने लगे। एक छोटी तोप और थी उसे मुगलों ने खींचकर सीकड बाँध हाथी को लगाकर, जो पत्थर के ढोंके से मुहाना बन्द किया गया था उसी पर चढ़ा दिया।

तीसरा परिच्छेद

जयशीला चञ्चलकुमारी

तब "दीन-दीन" के नारे लगाते पाँच-सौ सवार कालान्तक यम की तरह पहाड के ऊपर चढ गये। यह पहले ही कहा गया है कि पहाड़ कम ऊँचा था। ऊपर पहुँचते उन्हें ज्यादा देर नहीं लगी। किन्तु उन लोगों ने पहाड़ पर डट कर देखा कि वहाँ कोई नहीं है। गलियारे में घुसकर वे लोग पराभूत हो लौट आये थे, अब मुबारक की समझ में आया कि सब डाकू गलियारे में हैं, वे सब डाकू और कोई नहीं, राजपूत डाकू हैं। मुबारक ने विचार किया

कि उस गलियारे के दूसरे मुहाने को घेर उन सबको मार डालें। दुश्मन लोग दूसरी तरफ तोप लगाकर बैठे थे, इसलिए मुबारक गलियारे के किनारे किनारे अपनी फौज लेकर चले। धीरे-धीरे रास्ता चौड़ा मिलता गया। तब मुबारक ने पहाड़ के किनारे आकर देखा कि चालीस आदमी के अन्दाज राजपूत पालकी के साथ खून से लथपथ इसी ओर बढ़ रहे हैं। मुबारक समझ गया कि ये लोग अवश्य ही निकलने की राह जानते होंगे। उन लोगों पर निगाह रखते हुए धीरे-धीरे वह उस गलियारे के पास पहुँचा। जिस रास्ते से राजपूत पहाड़ से उतरे थे। वैसे ही एक राह और दिखाई दी। पहले राजपूत लोग ऊपर थे, बाद को नीचे उतरे, इसके बहुतेरे निशानात दिखाई दे रहे थे। मुबारक राजपूतों पर दृष्टि रख धीरे-धीरे चलने लगा। कुछ देर बाद उसे दिखाई दिया कि पहाड़ ढालू होता जाता है। सामने ही निकलने की राह है। मुबारक ने घोड़ों को तेजी से चढ़ाकर नीचे उतर गलियारे के मुँह को बन्द कर दिया। राजपूत लोग गलियारे के घुमाव से जा रहे थे, इसलिए वे लोग पहले गलियारे के मुहाने पर पहुँच न सके। मुगलों ने पहले ही मुहाने पर पहुँच कर तोप लगा दी और आनेवाले राजपूतों का स्वागत करने के लिए वज्रनाद स्वर में "दीन-दीन" का नारा लगाया। आसमान के साथ साथ पहाड़ों से भी प्रतिध्वनि हुई। यह सुनकर उनके जवानों में दुगनी [illegible]

हुए हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसलिए हम लोगों के बचने का भरोसा नहीं है। नहीं है तो इसमें हर्ज क्या है? राजपूत होकर मरने से कौन कायरता दिखाता है। सभी मरेंगे; एक भी न बचेगे, किन्तु मारकर मरेंगे। जो मरने से पहले दो मुगलों को मारकर न मरे वह राजपूत नहीं। राजपूतों, सुनो। इस राह घोड़े दौड़ नहीं सकते, इसलिए सब घोड़े छोड़ दो। आओ, हम लोग तलवार लेकर तोपों पर टूट पड़ें। तोप तो हमारे दखल में आ जायगी, फिर देखा जायगा कि हम लोग कितने मुगलों को मार पाते हैं।"

तब राजपूत लोग घोड़े से उतर तलवार निकाल "महाराणा की जय!" कहकर खड़े हो गये। उनके दृढ़ प्रतिज्ञ चेहरे को देखकर राजसिंह समझ गये कि चाहे प्राणरक्षा न हो, किन्तु एक भी राजपूत हटनेवाला नहीं। प्रसन्नचित्त से राणा ने आज्ञा दी—"दो-दो आदमियों की लाइन बना लो।" घोड़े की पीठ पर सब अकेले बढ़ रहे थे—पैदल दो-दो राजपूत हो गये। राणा सबके आगे चले। आज मृत्यु को सामने देख वह बहुत प्रसन्न थे।

इस समय एकाएक पहाड़ी गलियारे को कम्पित कर पर्वत में प्रतिध्वनि करती हुई राजपूत सेना ने नारा लगाया—"माता की जय! काली माई की जय!"

बहुत ही हर्षसूचक घोर नारे की आवाज सुन राजसिंह ने पीछे पलट कर देखा कि मामला क्या है! उन्होंने देखा कि दोनों किनारे राजपूत सेना कतार बाँधे हैं—बीच में विशाललोचना स्मितवदना कोई देवी आ रही है। हो सकता है कि किसी देवी ने मनुष्य मूर्ति धारण की हो या किसी मानवी को विधाता ने देवीमूर्ति गढ़ा हो—राजपूत लोग समझे कि चित्तौराधिष्ठात्री राजपूतकुलरक्षिणी भगवती इस संकट से राजपूतों की रक्षा करने को स्वयं रण में अवतीर्ण हुई हैं। इसलिये वे जयध्वनि कर रहे थे।

राजसिंह ने देखा कि है तो यह मानवी किन्तु सामान्य मानवी नहीं। उन्होंने आवाज दी—"देखो तो डोला कहाँ है?"

एक ने पीछे से कहा—"डोला इधर है।"

राणा ने कहा—"देखो डोला खाली है या नहीं।"

सैनिक ने कहा—"डोला खाली है। कुमारी महाराज के सामने हैं।"

तब चंचलकुमारी ने राजसिंह को प्रणाम किया। राणा ने पूछा—"राजकुमारी आप यहाँ कैसे।"

चंचल ने कहा—"महाराज! आपको प्रणाम करने आई हूँ। प्रणाम कर चुकी, अब एक भिक्षा चाहती हूँ। मैं वाचाल हूँ—स्त्रियों की शोभा जो लज्जा है, वह मुझमें नहीं है; क्षमा कीजिएगा। मैं जो भिक्षा चाहती हूँ, उससे निराश न कीजिएगा।"

चंचलकुमारी ने मुस्कुराहट छोड़कर हाथ जोड़ कातर स्वर से यह बात कही। राजसिंह ने कहा—"आप ही के लिए इतनी दूर आया हूँ। इसलिये ऐसा कुछ नहीं, जो आपको न दिया जा सके, रूपनगर की राजकन्या क्या चाहती हैं?"

चंचलकुमारी ने फिर हाथ जोड़कर कहा—"मैंने नासमझ बालिका होने की वजह आपको आने के लिये लिखा था; किन्तु मैं अपने मन की बात ही पहचान न सकी। इस समय मैं मुगल सम्राट् के ऐश्वर्य की बातें सुन बहुत ही मुग्ध हो गई हूँ। आप आज्ञा दें मैं दिल्ली जाना चाहती हूँ।"

न होगा। आज राजपूत नहीं बचेंगे—आज राजपूतों को मरना होगा। नहीं तो आज राजपूत के नाम बहुत बड़ा कलंक होगा। जब तक हमलोग न मरे, तब तक अपने को कैद समझें हमलोगों के मरने पर आपकी जहाँ इच्छा हो जा सकती हैं।

चञ्चलकुमारी हँसी—उसने बहुत ही प्रेम-प्रफुल्ल, भक्ति से मेरे, साक्षात् महादेव के लिए ही अनिवार्य एक कटाक्ष बाण राजसिंह पर चलाया वह मन ही मन कहने लगी—"वीरचूणामणि। मै आज से तुम्हारी हुई। अगर तुम्हारी दासी न रह सकी तो चञ्चल कभी जीती न रहेगी। तब प्रकट रूप में कहा—"हाँ महाराज, दिल्लीश्वर ने जिसको महारानी बनाने की इच्छा की है, वह किसी की बन्दिनी नहीं हो सकती। यह देखिये, मैं मुगल सेना के सामने जा रही हूँ, किसमें सामर्थ्य है, जो मुझे रोके।"

यह कह चञ्चलकुमारी—जीती जागती देवीमूर्त्ति-राजसिंह की बगल से गली के मुहाने की ओर चली। किसकी मजाल जो उसे छू भी सके। इसीलिए कोई उनकी राह न रोक सका। हँसती हिलती-डोलती वह स्वर्णमुक्तामयी प्रतिमा गली के मुहाने में चली गई।

अकेली चंचलकुमारी उस जलती हुई आग के समान क्रुद्ध और सशस्त्र पाँच सौ मुगल-सवारों के सामने जा खड़ी हुई। वहाँ वही रास्ता रोके हुई तोप लगी थी—मनुष्य का बनाया वज्र आग उगलने के लिए मुँह फैलाये तैयार था—उसके सामने रत्नों में मंडित लोकातीत सुन्दरी खड़ी हुई देखकर विस्मित हो मुगल-सैन्य ने ख्याल किया, मानो पर्वत निवासिनी परी आकर खड़ी हो गई।

मनुष्य की बोली में बोलकर चचलकुमारी ने उनके उस भ्रम को दूर किया। उन्होंने कहा—"इस सेना का सेनापति कौन है ?"

स्वयं मुबारक गलियारे के मुहाने पर राजपूतों की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने कहा—"यह सब मुझ खाकसार के अधीन है। आप कौन हैं ?"

चंचलकुमारी ने कहा—"मैं मामूली औरत हूँ। आपसे कुछ भिक्षा चाहती हूँ—अगर एकान्त में सुनें, तो कह सकती हूँ।

मुबारक ने कहा—"तब गलियारेसे आगे आवें।" चंचलकुमारी गलियारे से आगे बढ़ी—मुबारक उनके पीछे चले।

जहाँ की आवाज कोई सुन न सके, ऐसे स्थान में पहुँच कर चंचलकुमारी ने कहना शुरू किया—"मैं रूपनगर की राजकन्या हूँ। बादशाह ने [illegible] विवाह करने की इच्छा से यह सेना मुझे लाने को भेजी है। इस बात पर आपको विश्वास है?"

मुबारक—आपको देखकर ही यह एतबार हो गया।

चंचल—मैं मुगल से विवाह नहीं करना चाहती—धर्म से पतित होना पड़ेगा। किन्तु मेरे पिता कमजोर हैं; उन्होंने मुझे आपलोगों के हवाले कर दिया है। उनका कोई भरोसा न होने पर मैंने राजसिंह के पास दूत भेजा था। मेरे भाग्य से वह केवल पचास सिपाहियों को लेकर आये हैं। उनके [illegible] को तो आपने देख लिया?" मुबारक ने चौंककर पूछा—"यह क्या, पचास सिपाहियों ने इतने मुगलों को मार डाला!"

चचंल—कोई विचित्र बात नहीं। सुना है कि हल्दीघाटी में भी [illegible] ऐसा ही हुआ था। किन्तु चाहे जो हो, राजसिंह इस समय आप लोगों के सामने परास्त हैं। उनको परास्त देखकर ही मैं सामने आकर गिरफ्तार हो रही हूँ। मुझे दिल्ली ले चलें—अब युद्ध की जरूरत नहीं।

मुबारक ने कहा—"मैं समझ गया, अपने [illegible] को त्याग कर आप [illegible] पूतों की रक्षा करना चाहती हैं। क्या उन लोगों की भी यही [illegible] है?"

चंचल—यह भी कभी हो सकता है? मुझे [illegible], [illegible] युद्ध से विरत न होंगे। मेरा अनुरोध है कि आप [illegible] उन लोगों के प्राण की रक्षा करेंगे।

मुबारक—यह कर सकता हूँ, लेकिन [illegible] होगा। मैं उन सबको कैद करूँगा।

चचल—आप सब कर सकते हैं [illegible] की जान मार सकते हैं, किन्तु [illegible] नहीं सकते। [illegible] और मरेंगे।

मुबारक—मुझे इसका विश्वास है। तब यह ठीक है कि आप दिल्ली चलेंगी?

चञ्चल—इस समय आप लोगों के साथ चलने को तैयार हूँ। किन्तु दिल्ली तक पहुँचने में सन्देह है।

मुबारक—यह क्यों?

चञ्चल—आप लोग युद्ध करके मरना जानते हैं, हम स्त्रियाँ क्या मरना नहीं जानतीं?

मुबारक—हमलोगों के शत्रु हैं, इसलिए मरते हैं। संसार में आपका कौन शत्रु है?

चञ्चल—मैं स्वयं।

मुबारक—हमारे शत्रुओं के पास तो अनेक प्रकार के अस्त्र हैं; आपके?

चञ्चल—जहर।

मुबारक—कहाँ है?

कहकर मुबारक ने चञ्चलकुमारी के मुँह की ओर देखा। शायद और कोई होता, तो मन ही मन कहता कि सिवा आँखों के और भी कहीं जहर है! किन्तु मुबारक ऐसी छोटी प्रकृति के आदमी नहीं थे। वह राजसिंह जैसे यथार्थ वीर पुरुष थे। उन्होंने कहा—"माता आत्मघात क्यों करेंगी? अगर आप जाना न चाहें तो हमलोगों की क्या मजाल जो आपको ले चलें! स्वयं दिल्लीश्वर भी उपस्थित होते तो आपके ऊपर बल-प्रयोग कर न सकते। हमलोग तो नाचीज हैं। आप निश्चिन्त रहें, किन्तु इन राजपूतों ने बादशाही सेना पर आक्रमण किया है; मैं मुगल-सेनापति कैसे इन्हें क्षमा कर सकता हूँ?"

चञ्चल—क्षमा करने की जरूरत नहीं; युद्ध करिये!

इसी समय राजपूतों को लेकर राजसिंह भी वहाँ आ उपस्थित हुए। तब चंचलकुमारी कहने लगी—"युद्ध करिये; राजपूतों की लड़कियाँ भी मरना जानती हैं।"

मुगल सेनापति से लज्जाहीना चञ्चल क्या कह रही है, यह सुनने के लिए इस समय राजसिंह चञ्चल की बगल में आकर खड़े हो गये। तब चंचल ने उन

आगे हाथ पसार हँसकर कहा—"महाराजाधिराज, आपकी कमर से जो तलवार लटक रही है उसे राज-प्रसाद स्वरूप इस दासी को दीजिये।"

राजसिंह ने हँसकर कहा—"मैं समझ गया कि तुम सच्ची भैरवी हो।"

यह कह राजसिंह ने कमर से तलवार निकाल चंचलकुमारी के हाथ में दे दिया।

यह देखकर मुगल मुस्कराया। उसने चंचलकुमारी की बात का कोई जवाब नहीं दिया। केवल उसने राजसिंह के मुँह की ओर देखकर कहा—"उदयपुर के वीर स्त्रियों के बाहु बल से कब से रक्षित हुए?"

राजसिंह की चमकती हुई आँखों से आग की चिनगारी निकली। उन्होंने कहा—"जब से मुगल-बादशाहों ने अबलाओं पर अत्याचार आरम्भ किया है, तब से राजपूत-कन्याओं की बाहुओं में बल आ गया है।"

तब राजसिंह ने सिंह की तरह गर्दन टेढ़ी कर राजपूतों की ओर फिरकर कहा—"राजपूत लोग जुबानी वाग्युद्ध में चालाक नहीं होते और बैरियों के साथ वाग्युद्ध करने का हमें समय भी नहीं, नाहक समय गँवाने की जरूरत नहीं—चींटियों की तरह इन मुगलों को मार डालो।"

चञ्चल—महाराज, आपको मरने से कौन मना कर रहा है! मैं तो केवल पहले मरना चाहती हूँ। जो अनर्थ का मूल है, उसे पहले मरने का अधिकार है।

चञ्चल हटी नहीं। मुगलों ने बन्दूक उठाई थी, किन्तु रख दी। मुबारक चञ्चलकुमारी का काम देख मुग्ध हो गये। तब दोनों सेना के सामने मुबारक ने आवाज दी—"मुगल बादशाह स्त्रियों के आगे युद्ध नहीं करते। इसलिये कहता हूँ कि हम लोग इस सुन्दरी के आगे पराभव स्वीकार कर युद्ध से बाज आते हैं। राजा राजसिंह के सामने युद्ध में जय-पराजय की मीमांसा, आशा है कि दूसरे क्षेत्र में होगी। मैं राजा से अनुरोध किये जाता हूँ कि इस बार वे स्त्रियों को लेकर न आयें।"

चञ्चलकुमारी मुबारक के लिये चिन्तित हुई! मुबारक उस समय उसके सामने ही घोड़े पर चढ़ रहे थे। चंचलकुमारी ने उनसे कहा—"साहब मुझे क्यों छोड़े जाते हैं? मुझे ले जाने के लिये आप लोगों को दिल्लीश्वर ने भेजा है। अगर मुझे लेकर न चलेंगे, तो बादशाह क्या कहेंगे?"

मुबारक ने कहा—"बादशाह से भी बड़े और एक हैं; मैं इसका जवाब उनके सामने दूंगा।"

चंचल—"वह तो परलोक में, किन्तु इस लोक में?"

मुबारक—मुबारकअली इस लोक में किसी से नहीं डरता। ईश्वर आप को कुशल से रखें—मैं विदा होता हूँ।

यह कह मुबारक घोड़े पर सवार हो गये। वे सेना को लौटने की आज्ञा दे रहे थे। इसी समय पीछे से एकाएक एक हजार बन्दूकों की आवाज सुनाई दी। एकबार में सौ मुगल योद्धा धराशायी हो गये। मुबारक ने देखा, भयानक विपत्ति है।

चौथा परिच्छेद

हरण और अवहरण में दक्ष माणिकलाल

माणिकलाल पहाड़ी राह से निकलते ही घोड़ा दौड़ा कर एक दम रूपनगर गढ़ उपस्थित हुआ था। रूपनगर के राजा के कुछ सिपाही थे, वे सब तन

आगे हाथ पसार हँसकर कहा—"महाराजाधिराज, आपकी कमर से जो तलवार लटक रही है उसे राज-प्रसाद स्वरूप इस दासी को दीजिये।"

राजसिंह ने हँसकर कहा—"मैं समझ गया कि तुम सच्ची भैरवी हो।"

यह कह राजसिंह ने कमर से तलवार निकाल चंचलकुमारी के हाथ में दे दिया।

यह देखकर मुगल मुस्कराया। उसने चंचलकुमारी की बात का कोई जवाब नहीं दिया। केवल उसने राजसिंह के मुँह की ओर देखकर कहा—"उदयपुर के वीर स्त्रियों के बाहु बल से कब से रक्षित हुए?"

राजसिंह की चमकती हुई आँखों से आग की चिनगारी निकली। उन्होंने कहा—"जब से मुगल-बादशाहों ने अबलाओं पर अत्याचार आरम्भ किया है, तब से राजपूत-कन्याओं की बाहुओं में बल आ गया है।"

तब राजसिंह ने सिंह की तरह गर्दन टेढ़ी कर स्वजन वर्ग की ओर फिरकर कहा—"राजपूत लोग जुबानी वाग्युद्ध में चालाक नहीं होते छोटे सैनिकों के साथ वाग्युद्ध करने का हमें समय भी नहीं; नाहक समय गँवाने की जरूरत नहीं—चींटियों की तरह इन मुगलों को मार डालो।"

अब तक बरसनेवाले बादल की तरह दोनों सेनाएँ शान्त थीं—बिना प्रभु की आज्ञा के कोई युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो रहा था। इस समय राणा की आज्ञा पाकर "माता जी की जय।" शब्द के साथ राजपूत लोग जल-प्रवाह की तरह मुगल-सेना पर टूट पड़े। इधर मुबारक की आज्ञा पा मुगल लोग "अल्लाहो-अकबर!" शब्द से उन्हें रोकने को तैयार हुए; किन्तु एकाएक दोनों सेनाएँ चुप हो खड़ी रह गयीं। उस रण-क्षेत्र में दोनों सेनाओं के बीच तलवार तानकर स्थिरमूर्ति चंचलकुमारी खड़ी हो गई—हटती ही नहीं।

चंचलकुमारी ऊँचे स्वर से कहने लगी—"जब तक एक पक्ष न हटे तब तक मैं यहाँ से न हटूँगी। पहले मुझे बिना मारे कोई अस्त्र न चला सकेगा।"

राजसिंह ने नाराज होकर कहा—"यह तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है। तुम अपने हाथ से राजपूत कुल पर कलंक क्यों लगा रही हो? लोग कहेंगे कि आज स्त्री की सहायता से राजसिंह ने प्राण-रक्षा की।"

चञ्चल—महाराज, आपको मरने से कौन मना कर रहा है! मैं तो केवल पहले मरना चाहती हूँ। जो अनर्थ का मूल है, उसे पहले मरने का अधिकार है।

चञ्चल हटी नहीं। मुगलों ने बन्दूक उठाई थी, किन्तु रख दी। मुबारक चञ्चलकुमारी का काम देख मुग्ध हो गये। तब दोनों सेना के सामने मुबारक ने आवाज दी—"मुगल बादशाह स्त्रियों के आगे युद्ध नहीं करते। इसलिये कहता हूँ कि हम लोग इस सुन्दरी के आगे पराभव स्वीकार कर युद्ध से बाज आते हैं। राजा राजसिंह के सामने युद्ध में जय-पराजय की मीमांसा, आशा है कि दूसरे क्षेत्र में होगी। मैं राजा से अनुरोध किये जाता हूँ कि इस बार वे स्त्रियों को लेकर न आयें।"

चञ्चलकुमारी मुबारक के लिये चिन्तित हुई! मुबारक उस समय उसके सामने ही घोड़े पर चढ़ रहे थे। चंचलकुमारी ने उनसे कहा—"साहब मुझे क्यों छोड़े जाते हैं? मुझे ले जाने के लिये आप लोगों को दिल्लीश्वर ने भेजा है। अगर मुझे लेकर न चलेंगे, तो बादशाह क्या कहेंगे?"

मुबारक ने कहा—"बादशाह से भी बड़े और एक हैं; मैं इसका जवाब उनके सामने दूंगा।"

चंचल—"वह तो परलोक में, किन्तु इस लोक में?"

मुबारक—मुबारकअली इस लोक में किसी से नहीं डरता। ईश्वर आप को कुशल से रखें—मैं विदा होता हूँ।

यह कह मुबारक घोड़े पर सवार हो गये। वे सेना को लौटने की आज्ञा दे रहे थे। इसी समय पीछे से एकाएक एक हजार बन्दूकों की आवाज सुनाई दी। एकबार में सौ मुगल योद्धा धराशायी हो गये। मुबारक ने देखा, भयानक विपत्ति है।

चौथा परिच्छेद

हरण और अवहरण में दक्ष माणिकलाल

माणिकलाल पहाड़ी राह से निकलते ही घोड़ा दौड़ा कर एक दम रूपनगर गढ़ उपस्थित हुआ था। रूपनगर के राजा के कुछ सिपाही थे, वे सब तन

खाहदार नौकर नहीं थे; वे लोग खेती करते थे; बुलाहट पड़ने पर ढाल खाँड़ा, लाठी-सोंटा लेकर आ पहुँचते थे; इन सबके पास एक-एक घोड़ा था। मुगल सेना के आने पर रूपनगर के राजा ने उन लोगों की बुलाहट की थी। प्रगट रूप में उनकी बुलाहट का कारण मुगल सेना के सम्मान और देख-रेख में उन्हें नियुक्त करना था। छिपा अभिप्राय था कि अगर मुगल सेना एकाएक कोई उपद्रव खड़ा करे, तो उससे बचाव। बुलाहट पड़ते ही राजपूत लोग ढाल खाँड़ा और घोड़ा लेकर गढ में उपस्थित हुए—राजा ने उन्हें अस्त्रागार से अस्त्र देकर सुसज्जित किया। उन लोगों ने तरह-तरह की खातिरदारी में नियुक्त मुगल सेना के साथ हँसी-दिल्लगी और रंग-रस मे कई दिन बिताये। इसके बाद उस दिन सवेरे मुगल सेना की छावनी भंग कर राजकुमारी को ले जाने पर रूपनगर के सैनिकों को भी घर लौटने की आज्ञा हुई! तब उन लोगों ने अस्त्र इकट्ठे किये और राजा के अस्त्रागार में ले आये। राजा स्वय उन लोगों को इकट्ठा कर स्नेह-सूचक वचन से विदाई कर रहे थे, इसी समय उंगली कटा माणिकलाल पसीने-पसीने हो घोड़े पर सवार हो वहाँ आ पहुँचा।

माणिकलाल का वही मुगल सैनिकों जैसा पहिनावा था। एक मुगल सैनिक के घबराहट के साथ गढ़ में पहुँचने पर सभी विस्मित हुए। राजा ने पूछा "क्या समाचार है?"

माणिकलाल ने अभिवादन कर कहा—"महाराज, बहुत बखेड़ा मच गया है। पाँच हजार डाकुओं ने आकर राजकुमारी को घेर लिया है। जनाब हसनअली खाँ बहादुर ने मुझे आपके पास भेजा है। हम जी जान से युद्ध कर रहे हैं, किन्तु बिना कुछ सेना के उनकी रक्षा हो न सकेगी। आप से उन्होंने सेना की सहायता चाही है।"

राजा ने घबरा कर कहा—"सौभाग्य से मेरी सेना सज्जित है।" उन्होंने सैनिकों से कहा—"तुम लोगों के घोड़े तैयार हैं, हथियार हाथ में है तुम लोग सवार होकर अभी युद्ध में जाओ, मैं स्वय तुम लोगों को लेकर चलता हूँ।"

माणिकलाल ने कहा—"अगर इस सेवक का अपराध क्षमा हो, तो मेरा निवेदन है कि इन लोगों को लेकर मैं आगे बढता हूँ, महाराज और कुछ सेना

संग्रह कर लेकर आवें। डाकू लोग गिनती में कोई पांच हजार हैं। बिना और कुछ सेना के मङ्गल की सम्भावना नहीं।"

स्थूलबुद्धि राणा इसी पर राजी हो गये। एक हजार सैनिकों को लेकर माणिकलाल आगे बढ़ा। राणा और सैन्य संग्रह करने के लिए गढ़ में लौटे। माणिकलाल रूपनगर की सेना लेकर युद्ध क्षेत्र की ओर चला।

राह में जाते-जाते माणिकलाल को एक छोटा-मोटा लाभ हो गया। राह के किनारे एक वृक्ष की छाया में एक स्त्री पड़ी हुई है—जान पड़ता है कि वह बीमार है। घुड़सवारों की दौड़ देख वह उठ बैठी। उसने खड़े होने की चेष्टा की, शायद भागने की इच्छा थी, किन्तु ऐसा कर न सकी। उसमें बल न देख माणिकलाल घोड़े से उतर कर उसके पास पहुँचा। उसने जाकर देखा कि स्त्री बहुत सुन्दर है। उसने पूछा—"तुम कौन हो? यहाँ इस प्रकार क्यों पड़ी हो?

स्त्री ने पूछा—"यह फौज किसकी है?"

माणिकलाल—मैं राणा राजसिंह का आदमी हूँ।

युवती—मैं रूपनगर की राजकुमारी की दासी हूँ।

माणिक—तब यहाँ इस हालत में क्यों हो?

युवती—राजकुमारी दिल्ली जा रही हैं। मैंने साथ जाना चाहा, किन्तु वह मुझे साथ ले जाने को राजी नहीं हुईं; मुझे छोड़ आईं, इसलिए मैं पैदल उनके पास जा रही हूँ।

माणिकलाल—इसी से राह की थकावट के कारण पड़ी हुई हो?

निर्मलकुमारी ने कहा—"बहुत चली—अब चला नहीं जाता।"

रास्ता उतना अधिक नहीं, फिर भी निर्मल कभी चली नहीं; इसलिये उसके लिए इतना ही बहुत था।

माणिक—तब अब क्या करोगी?

निर्मल—करूँगी क्या, यहीं मरूँगी।

माणिक—छि. मरोगी क्यों। राजकुमारी के पास क्यों नहीं चलती?

निर्मल—कैसे जाऊँ? देखते नहीं कि मैं चल नहीं सकती।

माणिक—घोड़े पर क्यों नहीं चलती?

निर्मल ने हँसकर कहा—"घोड़ा कहाँ है!"

माणिक—घोड़ों की क्या कमी है?

निर्मल—क्या मैं सवार हूँ?

माणिक—तो बन जाओ न!

निर्मल—कोई आपत्ति नहीं। एक बाधा है कि मैं घोड़े पर चढ़ना नहीं जानती।

माणिक—इससे क्या होता है! मेरे घोड़े पर आओ।

निर्मल—तुम्हारा घोड़ा कल का है या मिट्टी का।

माणिक—मैं तुम्हें पकड़े रहूँगा।

निर्मल निर्लज्जता के साथ मजाक कर रही थी, अब उसने मुँह फेरा, तेवर बदले। फिर क्रोध के साथ कहा—"आप अपने काम से जायँ, मैं अपने पेड़ के नीचे ही पड़ी रहूँगी। राजकुमारी से मिलने की मुझे कोई जरूरत नहीं।"

माणिकलाल ने देखा कि युवती बहुत सुन्दरी है इसलिए वह अपना लोभ संवरण न कर सका। उसने कहा—"क्यों जी आपका विवाह हो गया है?"

दिल्लगीबाज निर्मल माणिकलाल का ढंग देख हँसी। उसने कहा—"नहीं।"

माणिक—तुम किस जाति की हो।

निर्मल—मै राजपूत की लड़की हूँ।

माणिक—मै भी राजपूत का लड़का हूँ। मेरे भी स्त्री नहीं है। मेरी एक छोटी लड़की है; उसके लिए एक माँ ढूँढ रहा हूँ। तुम माँ बनोगी, मुझसे विवाह करोगी; तब मेरे साथ एक संग घोड़े पर चढने में कोई आपत्ति नहीं।

निर्मल—कसम खाओ।

माणिक—क्या शपथ करूँ।

निर्मल—तलवार छू कर शपथ लो कि मुझसे विवाह करोगे।

माणिकलाल ने तलवार छू कर शपथ ली—"यदि आज के युद्ध में जीता रहूँ, तो तुमसे विवाह करूँगा।"

निर्मल ने कहा—"तब चलो, घोड़े पर सवार होऊँ।"

तब माणिकलाल ने बड़ी प्रसन्नता से उसे घोड़े पर चढ़ा, सावधानी के साथ घोड़े को आगे बढ़ाया।

शायद यह कोर्टशिप पाठक को अच्छी न लगे। इसके लिये हम क्या करें! प्रेम और प्रेमी की तो बात ही नहीं हुई—बहुत दिन से चलती हुई प्रेम की कोई कहानी थी नहीं, न 'हे प्राण, प्राणाधिक!" यह सब कुछ नहीं—धिक्!

पाँचवाँ परिच्छेद

फलभोगी राणा

युद्धक्षेत्र के समीप के एक एकांत स्थान में निर्मल को उतार और उसे वहीं बैठी रहने का उपदेश दे माणिकलाल, जहाँ राजसिंह के साथ मुबारक का युद्ध हो रहा था, बिलकुल उसी जगह मुबारक के पीछे जा उपस्थित हुआ।

माणिकलाल ने जाने के समय यह नहीं देखा था कि वहाँ युद्ध हो रहा है। किन्तु राजसिंह गलियारे में घुसे थे; एकाएक उसे शंका हुई कि मुगल लोग इस गलियारे का मुँह बन्द कर राजसिंह को विनष्ट कर सकते हैं। इसलिये वह रूपनगर सैन्य संग्रह करने गया था। और इसी से वह पहले ही रूपनगर की सेना लेकर इधर आ पहुँचा। आते ही समझ गया कि राजपूतों की साँस बन्द हो रही है—मरने में अब देर नहीं। तब माणिकलाल ने मुबारक की सेना की ओर उँगली से इशारा कर कहा—"यही सब डाकू हैं! इन्हें मार डालो!"

सिपाहियों में किसी-किसी ने कहा—"यह सब तो मुसलमान हैं!"

माणिकलाल ने कहा—"तो क्या मुसलमान लुटेरे नहीं होते? क्या हिन्दू ही सब दुष्कर्म करनेवाले हैं? मारो!"

माणिकलाल की आज्ञा से एक बार में एक हजार बन्दूकें दग गईं।

मुबारक ने पलट कर देखा कि कहीं से एक हजार सवार आकर उसके पीछे से आक्रमण कर रहे हैं। तब मुगलों ने डर कर फिर युद्ध नहीं किया।

जिसे जिधर राह मिली उधर ही भागा। मुबारक उन्हें सँभाल न सका। तब राजपूत लोग "माता जी की जय!" कहकर उनके पीछे लगे।

मुबारक की सेना छिन्न-भिन्न हो पहाड से भागने लगी। रूपनगर की सेना उनका पीछा करती हुई पर्वत पर चढने लगी। मुबारक सेना को लौटाने गये लेकिन खुद न जाने कहाँ गायब हो गये।

इस अवसर में माणिकलाल ने आश्चर्य में पड़े राजसिंह के पास उपस्थित हो उन्हें प्रणाम किया। राणा ने पूछा—"यह कैसा काण्ड है, माणिकलाल! मेरी समझ में कुछ नहीं आता; तुम कुछ जानते हो?"

माणिकलाल ने हँस कर कहा—"जानता हूँ। जब मैंने देखा कि महाराज गलियारे में उतरे, तभी मैं समझ गया था कि सर्वनाश हुआ। प्रभु की रक्षा के लिये मुझे एक नये प्रकार की जालसाजी करनी पड़ी।"

यह कह माणिकलाल ने जो कुछ किया था, उसे संक्षेप में महाराणा को सुना दिया। प्रसन्न हो राणा ने माणिकलाल का आलिङ्गन कर कहा—"माणिकलाल! तुम सच्चे प्रभुभक्त हो। तुम ने जो काम किया उसका पुरस्कार मैं उदयपुर लौटकर दूँगा। किन्तु तुमने मेरे शौक में बाधा दी, नहीं तो आज मैं मुसलमानों को सिखा देता कि राजपूत लोग कैसे मरते हैं।"

माणिकलाल ने कहा—"महाराज मुगलों को यह शिक्षा देने के लिये महाराज के अनेक सेवक हैं। यह राजकाज में गिना नहीं जाता। अब उदयपुर की राह साफ है। राजधानी छोड कर पहाड-पहाड फिरना उचित नहीं। अब राजकुमारी को लेकर अपने देश चलिये।"

राजसिंह ने कहा—"मेरे कुछ साथी अब भी उधर के पहाड पर हैं—उन्हें उतार लाना चाहिये।"

माणिकलाल ने कहा—"मैं उन्हें ले आता हूँ। आप आगे बढ़ें। राह में हमलोग मिल लेंगे।"

राणा राजी हुए; उन्होंने चंचलकुमारी के साथ उदयपुर की यात्रा की।

———

छठवाँ परिच्छेद

स्नेहमयी फूफी

राणा को विदा कर माणिकलाल रूपनगर की सेना के पीछे-पीछे पहाड़ पर चढ गया। भागनेवाली मुगल सेना उन लोगों द्वारा खदेड़ी जाकर इधर-उधर भागी। तब माणिकलाल ने रूपनगर के सैनिकों से कहा—"शत्रु भाग गये, अब वृथा परिश्रम क्यों करते हो? काम सिद्ध हो गया, अब रूपनगर लौट जाओ। सैनिकों ने भी देखा कि ऐसा ही है, अब सामने कोई नहीं। माणिकलाल ने जो चालबाजी की, उसे भी वे लोग समझ गये। एकाएक जो गया, उसके लिये कोई उपाय न देख वह सब लूट-पाट में लग गये और इच्छानुसार धन-सम्पत्ति हरण कर प्रसन्न चित्त से हँसते हुए बादशाह की जय-जयकार करते हुए रण में विजय के गर्व से घर की ओर लौटे। क्षण भर में पर्वत जनशून्य हो गया—केवल मरे और घायल मनुष्य तथा घोडे रह गये; यह देख पहाड़ के ऊपर से पत्थर लुढ़काने में जो राजपूत नियुक्त थे, वे उतर आये। वहाँ किसी को न देख यह विचार कर कि राणा बाकी लोगों के साथ उदयपुर गये, वे लोग भी उनकी खोज में बढे। राह में राजसिंह से मुलाकात हो गई। सब लोग इकट्ठे हो उदयपुर की ओर चले।

सब आ गये—केवल माणिकलाल नहीं है। माणिकलाल निर्मल के फेर में पड़ा था। सेवकों को इकट्ठा कर और विदाकर वह निर्मल के पास आ पहुँचा। उसे दूध पिलाया। गांव से कहार तथा पालकी ले आया। पालकी में निर्मल को सवार करा, जिस राह से राणा गये थे, उसे छोड़ दूसरी राह से चला। वह नहीं चाहता था कि माल के साथ पकडा जाय।

माणिकलाल निर्मल को लेकर फूफी के घर आया। उसने फूफी को बुलाकर कहा—"फूफी जी, मैं एक बहू ले आया हूँ।" बहू को देखकर फूफी कुछ उदास हुई—उसने सोचा कि मैंने लाभ की जो आशा की थी, उसमें बहू बाधा देगी। क्या करे, नकद दो अशर्फियां मिली थीं, इसलिये बिना खिलाये बहू को निकाल नहीं सकती थी। इतना कहा—"बहू अच्छी है।"

माणिकलाल ने कहा—"फूफी, अभी बहू के साथ मेरा विवाह नहीं हुआ।"

तब फूफी समझी कि यह कोई खेली है। अवसर पाकर उन्होंने कहा—"तब मेरे मकान में।"

माणिकलाल ने कहा इसकी चिन्ता क्या है! विवाह हो जायगा। निर्मल ने लज्जा से सिर झुका लिया।"

फूफी को फिर मौका मिला, उन्होंने कहा—"यह बड़े सुख की बात है—तुम्हारा विवाह न करूँगी तो और किसका करूँगी! लेकिन विवाह के लिये कुछ खर्च तो चाहिये!"

माणिकलाल ने कहा—"इसकी क्या चिन्ता है!"

पाठकों को मालूम हो सकता है कि युद्ध के बाद लूट होती है। माणिकलाल युद्धक्षेत्र से आने के समय मरे मुगल सवारों के वस्त्र की तलाशी ले कुछ संग्रह कर लाया था। उसने टनाटन फूफी के आगे कई अशर्फियाँ फेंक दीं। फूफी प्रसन्नता से उसे उठा, पिटारे में रख विवाह की तैयारी के लिए बाहर निकली। विवाह के लिए फूल, चन्दन और पुरोहित जुटाना था। इसलिये फूफी को पिटारी से अशर्फी निकालने की जरूरत न पड़ी। माणिकलाल को यह लाभ हुआ कि वह यथा शास्त्र निर्मलकुमारी का स्वामी बना। यह कहने की जरूरत नहीं कि माणिकलाल ने राणा के सैनिकों में विशेष ऊँचा पद पाया और उससे सब जगह सम्मान पाया।

—:०:—

राजसिंह

पाँचवाँ खण्ड

पहला परिच्छेद

शाहजादी से दुखिया अच्छी

पहले ही कहा है कि मुबारक रणभूमि में पहाड़ के निचले हिस्से में एकाएक गायब हो गया! गायब होने का कारण यह था कि वह जिस राह से घोड़े पर सवार जा रहा था, उस राह में एक कुआँ था। किसी ने पर्वत पर निवास करने के अभिप्राय से पानी के लिए यह कुआँ खुदवाया था। इस समय चारों ओर से जङ्गल ने कुएँ का मुँह ढँक रखा था। मुबारक ने उसे न देख उसपर घोड़ा चला दिया। घोड़े समेत वह उसके भीतर गिर कर गायब हो गया। उसमें पानी नहीं था। किन्तु गिरने की चोट से घोड़ा मर गया। गिरते समय मुबारक होशियार हो गया था, इससे उसे अधिक चोट न लगी; किन्तु कुएँ से निकलने का कोई उपाय दिखाई न दिया। शायद कोई आवाज सुनकर निकाले, इसलिये चिल्लाने लगा। किन्तु युद्ध के कोलाहल में उसे कोई आवाज सुनाई नहीं दी। केवल एक बार किसी ने दूर से आवाज दी—"ठहरो, निकालता हूँ।" यह सन्देह ही था।

युद्ध समाप्त होने और रणक्षेत्र में सन्नाटा होने पर किसी ने कुएँ के ऊपर से आवाज दी—"जीते हो?"

मुबारक ने कहा—"हाँ, तुम कौन हो?"

उसने कहा—"मैं चाहे जो हूँ, क्या अधिक चोट आई है?"

"मामूली।"

"मैंने एक लकड़ी में दो-चार धोतियाँ लपेट लम्बी डोरी के समान बना लिया है। बट कर मजबूत कर लिया है। उसे कुएँ में लटकाता हूँ। दोनों हाथ से लकड़ी पकड़ो मैं खींच लूँगा।"

मुबारक ने विस्मय से कहा—"यह तो स्त्री जैसी आवाज है; तुम कौन हो?"

स्त्री ने कहा—"इस आवाज को पहचानते नहीं?"

मुबारक—"पहिचानता हूँ। दरिया, यहाँ कहाँ?"

दरिया ने कहा—"तुम्हारे ही लिये। अब खींचती हूँ, पकड़ो।"

यह कह दरिया ने कपड़े से बँधी लकड़ी को कुएँ के भीतर डाल दिया, तलवार से कुएँ के मुँह पर छाये जङ्गल को साफ कर दिया। मुबारक ने लकड़ी के दोनों किनारे पकड़ लिये; दरिया खींचने लगी। जोर कम नहीं लगता था—रुलाई आने लगी। तब दरिया एक वृक्ष की झुकी हुई शाख पर कपड़े की बटी रस्सी रख कर स्वयं लेट कर खींचने लगी। मुबारक बाहर निकला। दरिया को देख मुबारक बड़े आश्चर्य में आया। उसने कहा—"यह क्या, यह वेश कैसा?"

दरिया ने कहा—"मैं शाही सवार हूं।"

मुबारक—क्यों?

दरिया—तुम्हारे ही लिये।

मुबारक—क्यों?

दरिया—नहीं तो आज तुम्हें कौन बचाता?

मुबारक—क्या इसीलिये दिल्ली से यहाँ आई हो? क्या इसीलिये तुमने सवार का वेश धारण किया है? यह खूब रहा? तुम जखमी हुई हो। ऐसा क्यों किया?

दरिया—तुम्हारे ही लिये सब किया। नहीं तो तुम बचते? शाहजादी भी ऐसा प्रेम करती है?

मुबारकने उदास हो सिर झुकाकर कहा—"शाहजादियाँ प्रेम नहीं करतीं।"

दरिया ने कहा—"हम लोग दुखिया हैं—हम प्रेम करती हैं। अब बैठो, मैंने तुम्हारे लिये पालकी ले रखी है। उसे लेकर अभी आती हूँ। तुम्हें चोट बहुत है, घोड़े पर चढ़ने को कहना अच्छी सलाह नहीं।"

जो पालकियाँ मुगल सेना के साथ थीं, युद्ध से डरकर उनके कहार पालकी लेकर भागे थे। दरिया युद्ध-क्षेत्र में मुबारक को कुएँ में गिरते देख पहिले ही पालकी की खोज में गई थी। भागे हुए कहारों का पता लगा कर उसने दो पालकियाँ ठीक कर रखी थीं। इसके बाद वह उन्हें वहीं ले आई। एक में उसने घायल मुबारक को लिटाया और दूसरी में आप चढ़ी।

तब मुबारक को लेकर दरिया दिल्ली की ओर चली। पालकी चढ़ने के समय मुबारक ने दरिया का मुँह चूम कर कहा—"अब कभी तुम्हारा त्याग न करूँगा।"

उपयुक्त स्थान में पहुँच दरिया ने मुबारक की सेवा की। दरिया की चिकित्सा से ही मुबारक ने आरोग्य लाभ किया।

दिल्ली पहुँचने पर मुबारक दरिया का हाथ पकड़ अपने घर ले गया। इसने कुछ दिन दोनों बहुत सुखी हुए। इसके बाद इसका जो फल हुआ, वह बहुत भयानक था। दरिया के लिए भयानक, मुबारक के लिए भयानक; जेबुन्निसा के लिए भयानक और औरङ्गजेब के लिए भी भयानक हुआ। इस अपूर्व रहस्य को हम बाद में कहेंगे। अब चंचलकुमारी के बारे में कुछ कहना आवश्यक है।

दूसरा परिच्छेद

राजसिंह का पराभव

यह कहा जा चुका है, कि राजसिंह उदयपुर आये। चंचलकुमारी के उद्धार के लिए युद्ध हुआ। इसलिये चंचलकुमारी को लाकर उन्होंने महल में बैठाया। किन्तु यह फैसला करना उनके लिए कठिन हुआ कि उन्हें उदयपुर में रहने दें या रूपनगर में उनके पिता के पास पहुँचवा दें। वे जब तक इसका फैसला न कर पाये, तब तक उन्होंने चंचलकुमारी से मुलाकात भी नहीं की।

इधर चंचलकुमारी राजा के भाव को देख बहुत विस्मित हुई। वह सोचने लगी, भाव को देखकर यह नहीं मालूम हो रहा है कि राजा मुझसे विवाह कर मुझे ग्रहण करेंगे। अगर विवाह न करें, तो उनके अन्तःपुर में क्या निवास करूँ! फिर जाऊँ भी तो कहाँ!

राजसिंह कुछ भी ठीक न कर सकने के कारण कुछ दिन बाद चंचलकुमारी के मन का भाव जानने के लिए उनके पास उपस्थित हुए। जाने के समय जो पत्र चंचलकुमारी ने अनन्त मिश्र के हाथ भेजा था और जिसे राजसिंह ने माणिकलाल से पाया था, उसे भी साथ लेते गये।

राणा के आसन ग्रहण करने पर चंचलकुमारी उन्हें प्रणाम कर सरल और विनीत भाव से एक किनारे खड़ी रहीं। लोकमनोमोहिनी मूर्ति देख राना कुछ मुग्ध हुए। किन्तु उसी समय मोह को दूर कर उन्होंने कहा—"राजकुमारी! अब तुम्हारी क्या इच्छा है, यही जानने के लिए मैं आया हूँ। तुम्हारी पिता के घर जाने की इच्छा है या यहाँ रहना चाहती हो?"

यह सुन कर चंचलकुमारी का हृदय मानो टूट गया। वह कुछ बोल न सकी, चुप रही।

तब राणा ने चंचलकुमारी का पत्र निकाल कर उसे दिखाया। पूछा—"यह तुम्हारा ही पत्र है?"

चंचल ने कहा—"जी हाँ!"

राणा—किन्तु सारे पत्र में एक हाथ की लिखावट नहीं है। दो हाथों का लिखा दिखाई देता है। तुम्हारे अपने हाथ का लिखा कौन-सा अंश है?

चंचल—पहला हिस्सा मेरे हाथ का लिखा है।

राणा—तब अन्तिम हिस्सा दूसरे का लिखा है?

पाठकों को याद होगा कि आखिरी हिस्से में ही विवाह का प्रस्ताव था। चंचलकुमारी ने जवाब दिया—"वह मेरे हाथ की लिखावट नहीं है।"

राजसिंह ने पूछा—"किन्तु यह तुम्हारी राय से ही लिखा गया था?

यह प्रश्न बहुत ही निर्दय था। किन्तु चंचलकुमारी ने अपने उन्नत स्वभाव के उपयुक्त उत्तर दिया। कहा—"महाराज! क्षत्रिय लोग विवाह के लिए ही कन्या हरण करते हैं; और किसी कारण से कन्या-हरण महापाप है। मैं महापाप करने के लिए आपसे अनुरोध क्यों करती।'

राणा—मैंने तुम्हें हरण नहीं किया है, तुम्हारी जाति और कुल की रक्षा के लिए मुसलमान के हाथ से तुम्हारा उद्धार किया है। अब तुम्हें तुम्हारे पिता के पास पहुँचवा देना ही राजधर्म है।"

चंचलकुमारी कुछ ही बातचीत में कुछ सम्भल [illegible] रही थी। अब उन्होंने सिर उठा राजसिंह की ओर देख कर कहा—"महाराज! अपने राजधर्म को आप जानते हैं और मैं भी अपने धर्म को जानती हूँ। मैं जानती हूँ कि

जब मैंने अपने को आपके चरण में समर्पण किया है तब मैं धर्मतः आपकी रानी हूँ। आप मुझे ग्रहण करें; धर्मतः मैं किसी अन्य को भी वरण कर नहीं सकती। जब धर्मतः आप मेरे पति हैं, तब आपकी आज्ञा ही मुझे शिरोधार्य है, अगर आप रूपनगर लौट जाने को कहेंगे, तो अवश्य ही मैं जाऊँगी। वहाँ जाने पर पिता मुझे फिर बादशाह के पास भेजने को बाध्य होंगे, क्योंकि मेरी रक्षा करने की उनमें सामर्थ्य नहीं। अगर आपकी यही इच्छा थी तो रणक्षेत्र में जब मैंने कहा था कि महाराज मैं दिल्ली जाऊँगी तब आपने क्यों नहीं जाने दिया?"

राजसिंह—वह मैंने अपनी प्राण-रक्षा के लिए किया था।

चंचल—तब अब जिसने आपकी शरण ली है, उसे दिल्ली जाने देंगे?

राजसिंह—यह भी नहीं हो सकता। तब तुम यहाँ ही रहो।

चंचल—क्या अतिथि के रूप में रहूँ या दासी होकर? रूपनगर की राज-कन्या यहाँ सिवा रानी के और किसी रूप में रह नहीं सकती।

राजसिंह—तुम्हारी जैसी लोक मनमोहिनी सुन्दरी जिस राजा की रानी होगी, उसे सभी भाग्यवान कहेंगे। तुम्हारे इतनी अद्वितीय रूपवती होने के कारण ही मैं तुम्हें राज-रानी बनाने में सकुचित होता हूँ। सुना है शास्त्र में लिखा है कि रूपवती भार्या शत्रु के समान है—

"ऋणकर्ता पिता शत्रु माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः॥"

चंचलकुमारी ने कुछ हँस कर कहा—"मुझ बालिका की वाचालता के लिए क्षमा कीजियेगा—क्या उदयपुर की सभी राज-रानियाँ कुरूपा हैं?"

राजसिंह ने कहा—"तुम्हारे जैसी सुरूपा कोई नहीं।"

चंचलकुमारी ने कहा—"मेरा विनीत निवेदन है कि यह बात रानियों के सामने न कहियेगा। यह महाराणा राजसिंह के लिए भी भय का स्थान हो सकता है!"

राजसिंह खूब जोर से हँस पड़े। चंचलकुमारी अब तक खड़ी थीं—अब बैठ गईं, उन्होंने मन ही मन कहा—"अब यह मेरे आगे महाराणा नहीं, मेरे पति हैं।"

आसन ग्रहण कर राजकुमारी ने कहा—महाराज, बिना आज्ञा मैंने महाराज के सामने आसन ग्रहण किया, यह अपराध आपको क्षमा करना चाहिये, क्योंकि मैं आपके सामने ज्ञान प्राप्त करने के लिए बैठी हूँ, शिष्य को आसन का अधिकार है। महाराज, मैं अभी तक समझ न सकी कि रूपवती भार्या शत्रु कैसे होती है।"

राजसिंह—यह तो सहज ही समझाया जा सकता है। भार्या के रूपवती होने से उसके लिए झगड़ा-लड़ाई खड़ा होता है। यही देखो, तुम अब तक मेरी भार्या नहीं हुई हो; तब भी तुम्हारे लिए औरङ्गजेब से मेरा झगड़ा शुरू हो गया है। हमारे वंश की महारानी पद्मिनी की बात सुनी है?

चंचल—ऋषि के इस वाक्य पर मुझे अधिक श्रद्धा नहीं हुई। क्या सुन्दरी रानी न होने से राजा लोग कभी झगड़े से बच सकते हैं? फिर मुझ अधम के लिए महाराज क्यों ऐसी बात उठाते हैं? मैं सुरूपा होऊँ या कुरूपा, मेरे लिए जो झगड़ा होना चाहिये, वह तो हो चुका है।

राजसिंह—और भी बातें हैं। रूपवती भार्या पर पुरुष बहुत आसक्त होता है। यह राजा के लिए बहुत ही निन्दनीय है, क्योंकि उससे राज-काज में बाधा पड़ती है।

चंचल—राजा लोग कई सौ रानियों से घिरे रहने पर भी राज-काज से मन नहीं हटाते, तो बड़े ही अश्रद्धा की बात है कि मेरे जैसी बालिका के प्रणय में महाराणा राजसिंह को राज-काज से विराग हो।

राजसिंह—यह बात उतनी अश्रद्धेय नहीं। शास्त्र में है कि "वृद्धस्य तरुणी विषम्।"

चंचल—क्या महाराज वृद्ध हैं?

राजसिंह—तो युवक भी तो नहीं।

चंचल—जिसके बाहु में बल है, राजपूत कन्या के लिए वही युवा है। दुर्बल युवक को राजपूत कन्याएँ वृद्धों में गिनती हैं।

राजसिंह—मैं रूपवान नहीं।

चंचल—कीर्ति ही राजाओं का रूप है।

राजसिंह—रूपवान, बलवान युवक राजपूतों का अभाव नहीं है।

चंचल—मैंने आपको आत्मसमर्पण किया है। दूसरे की पत्नी होने से द्विचारिणी हो जाऊँगी। मैं बहुत ही निर्लज्ज जैसी बातें कर रही हूँ। किन्तु याद कीजिये, दुष्यन्त के परित्याग करने पर शकुन्तला लज्जा का त्याग करने को बाध्य हुई थी। मेरी लाज की भी प्राय: वही दशा है। आप के परित्याग करने पर मैं राज समुन्दर (राजसिंह के बनवाये तालाब) में डूब मरूँगी।

राजसिंह ने वाग्युद्ध में इस प्रकार पराभव प्राप्त कर कहा—"मेरे लायक रानी तुम्हीं हो, किन्तु तुमने विपद् में पड़कर मुझे पति वरण किया था। अब मेरे हाथ से उद्धार पाना चाहती हो या नहीं, अथवा मेरी इस उम्र में तुम मुझ पर अनुराग रख सकोगी या नहीं; मेरे मन में यही संशय था। वह सब संशय मात्र था और वह सब आज की बातचीत से दूर हो गया। तुम मेरी रानी होगी। फिर भी मैं एक बात की अपेक्षा करूँगा। क्या इसमें तुम्हारे पिता की भी राय होगी? उनकी राय न होने से मैं विवाह नहीं करना चाहता। इसका कारण है। यद्यपि तुम्हारे पिता का छोटा-सा राज्य है और उनकी सेना भी थोड़ी है; किन्तु विक्रम सोलङ्की एक वीर पुरुष हैं और उपयुक्त सेनानायक के नाम से प्रसिद्ध हैं। मुगलों से तो मेरा युद्ध होगा ही। युद्ध होने पर उनकी सहायता मेरे लिए मंगलजनक होगी। बिना उनकी अनुमति के विवाह करने से वह कभी मेरे सहायक न होंगे, बल्कि उनकी राय से विवाह न करने पर वह मुगलों के सहायक और मेरे शत्रु हो सकते हैं। मैं यह नहीं चाहता, इसलिये मेरी इच्छा है कि मैं उनको पत्र लिख उनकी सम्मति लेकर विवाह करूँ। क्या वे राजी होंगे?

चंचल—राजी न होने का तो कोई कारण दिखाई नहीं देता। मेरी भी इच्छा है कि माता-पिता का आशीर्वाद लेकर ही आपकी चरणसेवा का व्रत ग्रहण करूँ। मेरी भी इच्छा है कि उनके पास आदमी भेजूँ।

तब राजसिंह ने एक सविनय पत्र लिख विक्रम सोलंकी के पास दूत के हाथों भेजा। चंचलकुमारी ने भी माता के आशीर्वाद की कामना से एक पत्र लिखा।

तीसरा परिच्छेद

अग्नि जलाने का प्रयोजन

रूपनगर के अधिपति का उत्तर उपयुक्त समय पर पहुँचा। उत्तर बहुत ही भयानक था। उसका मर्म इस प्रकार था; अर्थात् राजसिंह को लिखा—"आप राजपूताने में सबसे प्रधान हैं। राजपूताने के मुकुट स्वरूप हैं। इस समय आप राजपूतों का नाम कलङ्कित करने को तैयार हैं आपने जबर्दस्ती मेरा अपमान कर मेरी कन्या का हरण किया है। मेरी कन्या पृथ्वीश्वरी होती; आपने उसमें झगड़ा खड़ा कर दिया है। मेरा भी कर्तव्य है कि मैं आपसे शत्रुता करूँ। बिना मेरी मर्जी के आप मेरी कन्या का पाणिग्रहण न कर सकेंगे।

आप कह सकते हैं कि पहले क्षत्रिय लोग कन्या-हरण करके ही विवाह करते थे। भीष्म, अर्जुन और स्वयं श्रीकृष्ण ने कन्या-हरण किया था। किन्तु आप में वह बलवीर्य कहाँ है? अगर आपके बाहु में बल है, तब हिन्दुस्तान में मुगल बादशाह क्यों? शृगाल होकर सिंह की चाल चलना उचित नहीं। मैं भी राजपूत हूँ, जानता हूँ कि मुसलमान को कन्यादान करने से मेरा गौरव न बढ़ेगा; किन्तु न देने से मुगल रूपनगर के पहाड़ों का एक पत्थर भी बाकी न छोड़ेंगे। यदि मैं अपनी आत्मरक्षा कर सकता या यह जानता कि कोई मेरी रक्षा करेगा, तो क्या मैं इस पर राजी हो जाता? जब समझ लूँगा कि आप म वह क्षमता है, तब हो सकता है कि आपको कन्यादान करूँ।"

यह सही है कि पहले क्षत्रिय राजकन्या हरण कर विवाह करते थे। किन्तु इस तरह चतुरता से धोखा नहीं देते थे। आपने मेरे पास आदमी भेज झूठी बात कहला मेरी ही सेना ले जाकर मेरी कन्या का हरण किया—नहीं तो आप में सामर्थ्य नहीं थी। इसी से आपने जो मेरा अनिष्ट किया है, उसे विचार कर देखिए। मुगल बादशाह समझेंगे कि जब मेरी ही सेना ने युद्ध किया है, तब मेरे ही कुचक्र से कन्या भी हरण की गई है। इसलिए निश्चय ही वह पहले रूपनगर का ध्वंस कर तब आपको दण्ड देंगे। मैं भी युद्ध करना जानता हूँ किन्तु

मुगलों की लाख-लाख फौज के आगे किसकी मजाल है, जो आगे बढ़े? इसी से प्रायः सभी राजपूत उनके कदमबोस हैं—मैं तो सामान्य हूँ।

नहीं जानता कि उनके आगे सत्य कहकर छुटकारा होगा या नहीं। किन्तु यदि आप मेरी कन्या से विवाह करेंगे और उन्हें कन्या देने की कोई राह न रहेगी, तो मेरे या मेरी कन्या के छुटकारे का कोई उपाय न रहेगा।

आप मेरी कन्या से विवाह न कीजियेगा। ऐसा करने से आपको मेरा अभिशाप लगेगा। मैं शाप देता हूँ कि ऐसा करने से मेरी कन्या विधवा, सहगमन से वञ्चिता, मृतपुत्रा और चिरदुःखिनी होगी और आपकी राजधानी शृगाल और कुत्तों की निवास भूमि बनेगी।

विक्रम सोलंकी ने इस भीषण अभिशाप के बाद नीचे और एक पंक्ति लिख दी थी—"यदि आपको कभी उपर्युक्त बात समझने का कारण दिखाई देगा, तो मैं इच्छापूर्वक आपको कन्यादान करूँगा।"

चंचलकुमारी की माता ने पत्र का कोई जवाब नहीं दिया। उनके पिता के पत्र को राजसिंह ने पढ़कर चंचलकुमारी को सुनाया। चंचलकुमारी को चारों ओर अंधेरा दिखाई देने लगा।

चंचलकुमारी को बहुत देर से चुप बैठी देख राणा ने उससे पूछा—"अब क्या करोगी? विवाह करना ठीक है या नहीं?"

चंचलकुमारी ने आँख से एक बूँद, केवल एक बूँद आँसू को पोंछ कर कहा—"पिता के अभिशाप को शिर पर ले कौन कन्या विवाह करने का साहस करेगी।"

राणा—तब यदि पिता के घर लौट जाने की इच्छा हो तो मैं भेज सकता हूँ।

चंचल—ऐसा ही करना पड़ेगा। किन्तु जैसे पिता के घर जाना वैसे ही दिल्ली जाना बराबर है, इसकी अपेक्षा जहर खा लेना अच्छा है।

राणा—मेरी एक सलाह सुनो! तुम्हीं मेरे योग्य महारानी हो, मैं एकाएक तुम्हें त्यागना नहीं चाहता. किन्तु तुम्हारे पिता के आशीर्वाद बिना तुमसे विवाह भी न करूँगा। आशीर्वाद के भरोसे को मैं बिलकुल ही छोड़ नहीं रहा हूँ।

मुगलों के साथ युद्ध निश्चित है। एकलिंग (राणाओं के कुलदेवता, शिव) मेरे सहायक हैं। मैं इस युद्ध में या तो मरूँगा या मुगलों को पराजित करूँगा।

चंचल—मुझे पूरा विश्वास है कि मुगल आपके आगे पराजित होंगे।

राणा—यह बहुत ही कठिन काम है। यदि सफल हुआ तो निश्चय तुम्हारे पिता से आशीर्वाद लूँगा।

चंचल—तब तक.....?

राणा—तब तक तुम मेरे अन्तःपुर में रहो। महारानियों की तरह तुम्हारा अलग महल होगा। महारानियों की तरह तुम्हारे लिये भी दास-दासियों की सेवा का बन्दोबस्त कर दूँगा। मैं प्रचार कर दूँगा कि शीघ्र ही तुम मेरी महारानी बनोगी और यही समझ कर सब लोग तुम्हें रानियों की भाँति ही महारानी कह कर बुलावेंगे। केवल जब तक तुम्हारे साथ मेरा यथाशास्त्र विवाह नहीं होता, तक मैं तुमसे मुलाकात न करूँगा। क्या कहती हो?

चंचलकुमारी ने विचार कर देखा कि इस समय इस से अच्छी और कोई व्यवस्था हो नहीं सकती। लाचार चंचल राजी हो गई। राजसिंह ने भी वैसा ही बन्दोबस्त किया जैसा वचन दिया था।

चौथा परिच्छेद

और भी आग लगाने का प्रयोजन

माणिकलाल से निर्मल ने सुना कि चंचलकुमारी महारानी हो गई है। किन्तु कब विवाह हुआ, विवाह हुआ या नहीं, यह माणिकलाल कुछ भी कह न सका। तब निर्मल स्वयं चंचलकुमारी को देखने गई।

बहुत दिन के बाद निर्मल को देख चंचलकुमारी बहुत खुश हुई। उस दिन उन्होंने निर्मल को जाने न दिया। रूपनगर छोड़ने के बाद जो-जो हुआ था, उसे एक दूसरे ने विस्तार के साथ कहा। निर्मल का सुख सुन चंचल-[illegible]ी प्रसन्न हुई। सुख—क्योंकि माणिकलाल ने राणा से बहुत पुरस्कार

पाया था, उसके पास बहुत रुपये हो गये हैं; इसके अतिरिक्त माणिकलाल ने राणा की कृपा से सेना में बहुत ऊँचा पद पाया है और राजसम्मान से गौरवान्वित भी हुआ है। निर्मल के ऊँचा महल, धन-दौलत, दास-दासी सब हैं और माणिकलाल निर्मल का खरीदा हुआ गुलाम हो गया है। एक प्रकार से निर्मल चंचलकुमारी का दुःख सुन बहुत ही मर्माहत हुई। उधर चंचलकुमारी के माता-पिता और राजसिंह पर निर्मल बहुत नाराज हुई। चंचलकुमारी को उसने महारानी कहकर पुकारना मंजूर नहीं किया। उसने यह प्रतिज्ञा की कि महाराणा से मुलाकात होने पर वह उन्हें दो-एक बातें सुनाये बिना न रहेगी। चंचलकुमारी ने कहा—"यह सब बातें अभी रहने दो। मेरे साथ मेरी जान-पहचान का कोई आदमी नहीं। कोई भी अपना नहीं। ऐसी हालत में यहाँ रह नहीं सकती? यदि भगवान् ने तुम्हें मिलाया है तो मैं अब तुम्हें न छोड़ूँगी। तुम्हें मेरे पास रहना होगा।

यह सुन पहले तो निर्मल को जान पड़ा कि उसकी छाती पर पहाड़ टूट पड़ा। अभी हाल में उसने पति पाया है—नया प्रेम, नया सुख, यह सब छोड़ फिर क्या चंचलकुमारी के साथ रहा जा सकता है? निर्मलकुमारी एकाएक राजी न हो सकी, किन्तु उसने झूठा बहाना भी नहीं किया और असल बात खोल कर कह भी न सकी। उसने कहा—"उस समय कहूँगी।"

चंचलकुमारी की आँखों में आँसू आ गये। उसने मन ही मन कहा, "निर्मल ने भी मुझे छोड़ दिया। हे भगवान्! तुम मुझे न त्याग देना।" इसके बाद चंचलकुमारी ने कुछ हँस कर कहा—"निर्मल, तुम मेरे लिए अकेली पैदल रूपनगर से चलकर आने के लिए मरने बैठी थीं और आज! आज तुमने पति पाया है।"

निर्मल ने सिर झुका लिया। उसने अपने को सैकड़ों बार धिक्कारा। उसने कहा—"मैं उस समय आऊँगी। जिन्हें मालिक बनाया है, उससे जरा पूछना भी चाहिये और एक लड़की मेरे गले पड़ी है, उसकी भी कोई व्यवस्था करनी होगी।"

चंचल—चाहो तो लड़की को यहीं लेती आओ।

निर्मल—उस चेंचें-पेंपें की यहाँ जरूरत नहीं। एक नाते की फूफी है—उसी को बुला कर घर में बैठा आऊँगी।

इन सब सलाहों के बाद निर्मल वहाँ से विदा हुई। घर आकर उसने माणिकलाल से सब हाल कहा। माणिकलाल को भी निर्मल को विदा करते कष्ट जान पड़ा। किन्तु वह बहुत ही प्रभु भक्त था, इसलिए अस्वीकार नहीं किया। फूफी ने आकर कन्या को सँभाला।

पाँचवाँ परिच्छेद

इसकी आवश्यकता?

निर्मल पालकी पर सवार हो दास-दासियों के साथ राणा के अन्तःपुर की ओर चली। रास्ते में बड़ा चौक है। चौक के एक मकान में लोगों की बड़ी भीड़ थी। निर्मल की पालकी पर बहुमूल्य वस्त्र का ओहार पड़ा था। किन्तु लोगों के कोलाहल से कौतूहलवश उसने ओहार उठाकर देखा। एक परिचारिका को इशारे से बुलाकर पूछा—"यह क्या है?" सुना कि एक विख्यात ज्योतिषी इस मकान में रहते हैं। हजारों आदमी नित्य उनके यहाँ गणना कराने आते हैं। जो लोग गणना कराने आते हैं उनकी ही यह भीड़ है। निर्मल ने और भी सुना कि ये व्यक्तियों के सब प्रकार के प्रश्न बता सकते हैं और जिसे जो बताया है, वह ठीक उतरा है। तब निर्मल ने दासियों से कहा—"साथ के सिपाहियों से कहो कि सब लोगों को हटा दें। मैं भीतर जाकर गणना कराऊँगी, किन्तु मेरा परिचय देने की आवश्यकता नहीं।"

सिपाहियों की बल्लम की नोक से सब लोग हट गये। निर्मल की पालकी ज्योतिषी के घर में गई। जो गणना करा रहे थे, उनके उठ जाने पर निर्मल प्रश्नकर्त्ता के आसन पर बैठी। उसने ज्योतिषी को प्रणाम कर कुछ प्रणाम दर्शनी आगे भेंट की। ज्योतिषी ने पूछा—"माँ जी, आप क्या पूछना चाहती हैं?"

निर्मल ने कहा—"मैं जो पूछना चाहती हूँ, उसे आप गणना करके बतायें।"

ज्योतिषी—"प्रश्न? अच्छा, कहो।"

निर्मल ने कहा—"मेरी एक प्रिय सखी है।"

ज्योतिषी ने कुछ लिखा, पूछा—इसके बाद?

निर्मल ने कहा—"वह अविवाहित है।"

ज्योतिषी ने फिर लिखा और कहा—"इसके बाद?"

निर्मल—"उनका विवाह कब होगा?"

ज्योतिषी ने फिर लिखा। इसके बाद हिसाब करने लगा। लग्नसारिणी देखी शङ्कुपट्ट देखा। फिर निर्मल ने कई प्रश्न किये और बहुतेरे अंक लिखे। कई किताबें खोलकर देखीं। अन्त में निर्मल की ओर देखकर उसने सिर हिलाया।

निर्मल ने पूछा—विवाह न होगा?

ज्योतिषी—प्रायः ऐसा ही उत्तर शास्त्र में लिखा है।

निर्मल—प्रायः क्यों?

ज्योतिषी—अगर ससागरा पृथ्वीपति की महिषी आकर कभी तुम्हारी सखी का सेवा करें, तब विवाह होगा नहीं तो न होगा। इसे असम्भव समझ कर ही कहता हूँ कि विवाह न होगा।

"असम्भव है!" कहकर निर्मल ने ज्योतिषी को और भी कुछ दिया तथा चली गई।

छठवाँ परिच्छेद

आग लगाने का प्रस्ताव

चञ्चलकुमारी के हरण ने भारतवर्ष में जो आग लगी, उससे मुगल साम्राज्य या राजपूताना ध्वंस हो जाता। केवल महाराणा राजसिंह के दयादाक्षिण्य के कारण इतना हो नहीं सका। इस आश्चर्यजनक घटना की परम्परा का वर्णन करना उपन्यास ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं हो सकता, फिर भी कुछ न कहने से इस ग्रन्थ का परिशिष्ट समझ में न आवेगा।

रूपनगर की राजकुमारी के हरण का समाचार दिल्ली में आ पहुँचा। दिल्ली में बड़ा शोर मचा। बादशाह ने क्रोध से अपनी सेना के नेताओं में

किसी को पदच्युत, किसी को कैद और किसी को मरवा डाला। किन्तु जो लोग प्रधान अपराधी थे—चंचलकुमारी और राजसिंह—उन्हें इतनी जल्दी दण्डित करना शक्ति से बाहर था। यद्यपि मेवाड छोटा राज्य है तथापि बहुत दुर्गम स्थान है। चारों ओर से अलघनीय पर्वतमाला की प्राचीर है, राजपूतों में सभी वीर पुरुष और राजसिंह हिन्दू-वीर-चूडामणि हैं। ऐसी हालत में राजपूत क्या कर सकते हैं, इसे प्रतापसिंह ने अकबर को ही सिखाया था। दुनिया के बादशाह को घूँसे खाकर कुछ दिन तक घूँसे की मार को छिपाना ही पड़ा।

किन्तु औरङ्गजेब किसी का क्रोध बर्दाश्त करनेवाला नहीं। हिन्दू के अनिष्ट के लिए ही उसका जन्म हुआ, हिन्दुओं का अपराध उसके लिए असहनीय था। एक तो हिन्दू मरहठों ने बराबर उसका अपमान किया। महाराष्ट्र विशेष कुछ कर नहीं सके, राजपूत भी एकाएक कुछ कर नहीं पाये; फिर भी विष डालना ही होगा। इसलिये उसने राजसिंह के अपराध पर समस्त हिन्दू जाति को सताने की इच्छा की।

हम लोग आजकल इनकमटैक्स को असह्य समझते हैं, उससे अधिक एक टैक्स मुसलमानों के अमल में था। इससे अधिक असह्य, क्योंकि यह टैक्स मुसलमानों को नहीं देना पडता था, केवल हिन्दुओं को ही देना पड़ता था। इसका नाम 'जजिया' था। परम राजनीतिज्ञ बादशाह अकबर ने इसकी खराबियाँ समझ इसे उठा दिया था। तब से यह बन्द था। अब हिन्दू-द्वेषी औरङ्गजेब ने इसे फिर स्थापित कर हिन्दुओं की यन्त्रणा को बढाना शुरू किया था।

पहले बादशाह ने जजिया को फिर से जारी करने की आज्ञा दी। जब बहुत ज्यादती हो गई, तो हिन्दुओं ने भयभीत, अत्याचारग्रस्त और पीड़ित हो, हाथ जोडकर हजार-हजार बार बादशाह से क्षमा भिक्षा माँगा, किन्तु औरङ्गजेब के पास क्षमा थी ही नहीं। शुक्रवार को जब बादशाह मसजिद में ईश्वर की याद करने गया, तब एक लाख हिन्दू एकत्र हो उसके सामने रोने लगे। दुनिया के बादशाह ने दूसरे हिरण्यकशिपु की तरह आज्ञा दी—हाथियों के पैर के नीचे इन्हें कुचलवा दो।" इतनी बड़ी भीड़ हाथी के पैर के नीचे जाने पर हटी।

औरङ्गजेब के अधीन भारतवर्ष में जजिया लग गया। ब्रह्मपुत्र से सिन्धु के किनारे तक हिन्दुओं की देवमूर्तियाँ तोड़ी गईं; बहुत पुराने गगनस्पर्शी देवमन्दिर टूटने और विलुप्त होने लगे, उनकी जगह मुसलमानों की मस्जिदें बनने लगीं। काशी में विश्वेश्वर मन्दिर टूटा, मथुरा में केशव का मन्दिर गया, बङ्गाल में बङ्गालियों की जो कुछ स्थापित कीर्ति थी, वह सदा के लिए अन्तर्हित हो गई।

औरङ्गजेब ने आज्ञा दी कि राजपूताने के राजपूत लोग भी जजिया दें। राजपूताने की प्रजा पर हिन्दू होने के कारण यह दण्डाज्ञा लागू हुई। पहले तो राजपूतों ने अस्वीकार किया; किन्तु उदयपुर के अतिरिक्त और सब राजपूताना पतवार-विहीन नौका की तरह चंचल था। जयपुर के जयसिंह—जिनका बाहुबल मुगल-साम्राज्य का प्रधान अवलम्ब था—इस समय मर चुके थे। विश्वासघाती भाई के हत्यारे औरङ्गजेब के कौशल से विष देकर उनकी मृत्यु साबित की गई थी। उनके युवक पुत्र कैद हुए, इसलिए जयपुर ने जजिया दिया।

जोधपुर के यशवन्तसिंह भी अब इस लोक में न रहे। इस समय उनकी रानी प्रतिनिधि हैं। स्त्री होकर भी उन्होंने बादशाह के कर्मचारियों को निकाल बाहर किया। औरङ्गजेब उनके विरुद्ध युद्ध करने को तैयार हुआ। स्त्री ही तो ठहरीं, युद्ध की धमकी से भयभीत हुईं। रानी ने जजिया नहीं दिया, किन्तु उसके बदले राज्य का कुछ अंश छोड़ दिया।

राजसिंह ने जजिया नहीं दिया, किसी तरह भी नहीं दिया; उन्होंने इसके लिए सर्वस्व की बाजी लगा दी। उन्होंने जजिया के बारे में औरङ्गजेब को एक पत्र लिखा। राजपूताने के इतिहास-लेखक ने इस पत्र के बारे में लिखा है—

"The Rana remonstraed by letter, in the name of the nation of which he was the head, in a style of such uncompromising dignity, such lofty yet temperate resolve, so much of soul stirring rebuke mingled with a boundless and toleration benevolence, such elevating excess of the divinity with such pure p'il r

that it may challenge competition with any epistolary production of any age, clime or condition (Tod's Rajasthan Vol. I, Page 381) इस पत्र ने बादशाह की क्रोधाग्नि में घृत की आहुति दी।

बादशाह ने राजसिंह पर हुक्म जारी किया कि जजिया देना ही पड़ेगा, इसके अलावा राज्य में गो हत्या करने देनी होगी और सब मन्दिर तोड़ देने पड़ेंगे ! राजसिंह युद्ध का उद्योग करने लगे।

औरङ्गजेब भी युद्ध की तैयारी करने लगा और ऐसे भयानक युद्ध का आयोजन किया, जैसा अभी तक नहीं किया था। चीन के साम्राज्य या फारस के राजा के प्रतिद्वन्द्वी होने पर भी वैसी तैयारी न होती, जैसी इस छोटे से राज्य के विरुद्ध की गयी। आधे एशिया के अधिपति जरेसेस (Xerxes) ने जैसे छोटे से ग्रीस राज्य को जीतने के लिये तैयारी की थी, सत्रहवीं शताब्दी के जरेसेस ने छोटे राजा राजसिंह को पराजित करने के लिए वैसी ही तैयारी की। यह दोनों घटनाएँ आपस में तुलना करने योग्य हैं, इसके लिए अन्य कोई तुलना नहीं। हम लोग ग्रीस के इतिहास को रट कर मरते हैं, किन्तु राजसिंह के इतिहास के बारे में कुछ जानते ही नहीं; यह आधुनिक शिक्षा का फल है।

—:o:—

राजसिंह

छठवाँ खण्ड

पहला परिच्छेद

अग्नि का उत्पादन

राजसिंह ने औरंगजेब को तो तीव्रघाती पत्र लिखा था, उसके बाद से यह अग्नि उत्पादन खण्ड आरम्भ करना पड़ेगा। इसके विचार में कठिनाई हुई कि इस पत्र को कौन औरंगजेब के पास ले जाय, क्योंकि यद्यपि दूत अवध्य है, तथापि पाप से कुण्ठित न होनेवाले औरंगजेब ने अनेक दूतों का वध करा दिया था, यह प्रसिद्ध है। अतएव राजसिंह ऐसे आदमी को भेजना नहीं चाहते थे, जिसके प्राण की शंका हो; वह ऐसा चतुर हो जो अपने प्राण को बचा सके। तब माणिकलालने आकर प्रार्थना की कि मुझे इस काम में नियुक्त किया जाय। राजसिंह ने उपयुक्त पात्र पा कर उसे ही इस काम में नियुक्त किया।

यह समाचार सुनकर चंचलकुमारी ने निर्मलकुमारी को बुलवाया, कहा—"तुम भी अपने पति के साथ क्यों नहीं जाती?"

निर्मल ने आश्चर्य में आकर कहा—"कहाँ जाऊँ? दिल्ली! क्यों?

चंचल—जरा बादशाह साहब के रंगमहल की हवा खा आओ।

निर्मल—मैं सुन चुकी हूँ कि वह नरक है।

चंचल—क्या? नरक। तुम्हें कभी जाना न पड़ेगा? तुम बेचारे गरीब माणिकलाल पर अत्याचार करती हो, उस नरक से तुम्हारा छुटकारा नहीं।

निर्मल—तब उसने खूबसूरत देखकर क्यों विवाह किया था?

चंचल—पेड़ के नीचे पड़ी मरते देखकर शायद उसने राजी कर लिया हो?

निर्मल—मैं तो उसे बुलाने गई नहीं। अब यह बताओ कि उस भूत के बोझ का दफ्तर में दिल्ली जाकर क्या करूँगी?

चंचल—उदयपुरी को निमन्त्रण-पत्र दे आना।

निर्मल—काहे का?

चंचल—तम्बाकू भरने का।

निर्मल—ठीक है, यह बात याद नहीं रही। पृथ्वीश्वरी की सेवा न करने से तुम्हें भी भूत का ओझा न मिलेगा।

चंचल—भाग पापिष्ठा! इस समय मैं स्वयं ही भूत के लिये बोझ हूँ। या तो बादशाह की बेगम मेरी दासी होगी या मुझे विष खाना पड़ेगा। ज्योतिषी की गणना ऐसी ही है।

निर्मल—तो क्या चिट्ठी से निमन्त्रण भेजने से ही बेगम आयेगी?

चंचल—नहीं, मेरा उद्देश्य झगड़ा लगाना है। मेरा विश्वास है कि झगड़ा लगाने में ही महाराणा की विजय होगी और बेगम बाँदी होगी। दूसरा उद्देश्य यह है कि तुम बेगमों को पहचान आओगी।

निर्मल—तब तो बता दो कि यह काम कैसे करूँगी?

चंचल—मैं बताये देती हूँ। तुम तो जानती ही हो कि जोधपुरी का पंजा मेरे पास है। उस पंजे को तुम ले जाओ। उसके बल से तुम रंगमहल में प्रवेश कर सकोगी और उसके बल से तुम जोधपुरी से मुलाकात कर सकोगी। उनसे सब हाल कहना। मैं उदयपुरी के नाम जो पत्र देती हूँ उसे उन्हें दिखाना। वह उस पत्र को किसी प्रकार उदयपुरी के पास भेज देंगी। जहाँ तुम्हारी अपनी बुद्धि काम न करे, वहाँ अपने पति से कुछ बुद्धि उधार ले लेना। निर्मल—ऊँह मेरी ही बुद्धि से तो उसका संसार चलता है।

हँसती हुई निर्मल पत्र लेकर चली गई और ठीक समय पर पति के साथ योग्य मनुष्यों के संग दिल्ली जाने का उपाय करने लगी।

दूसरा परिच्छेद

अरणिकाष्ठ—पुरूरवा

उद्योग माणिकलाल का ही अधिक है, इसका एक नमूना उसने निर्मल-कुमारी को दिखाया। निर्मल ने आश्चर्य के साथ देखा कि उसकी कटी उँगली की जगह नई उँगली लगी हुई है। उसने माणिकलाल से पूछा—"यह कैसे?"

माणिकलाल ने कहा—"बनवायी है।"

निर्मल—किस चीज से ?

माणिक—हाथी दाँत से। इसके पुर्जे बेमालूम लगे हुए हैं, उस पर बकरे का पतला चमड़ा मढ़ अपने शरीर जैसा रंग किया है। इच्छानुसार निकाल और लगा सकता हूँ।

निर्मल—इसकी क्या जरूरत है ?

माणिक—इसका मतलब दिल्ली में समझ सकोगी। दिल्ली में वेश बदलने की जरूरत हो सकती है। अँगुली-कट्टे का वेश बदलना चल नहीं सकता। किन्तु दो प्रकार होने से खूब काम देता है।

निर्मल हँसी। इसके बाद माणिकलाल ने पिंजरे में एक कबूतर रखा। यह कबूतर बहुत ही सुशिक्षित था। दूत के काम में बहुत निपुण था। जो लोग आधुनिक युरोपीय युद्ध में 'Carrier Pigeon' को जानते हैं, वे इसे समझ सकते हैं। पहले भारतवर्ष में इस जाति के शिक्षित कबूतरों का व्यवहार होता था। कबूतर के बारे में माणिकलाल ने निर्मलकुमारी को विशेष रूप से समझा दिया।

नियम था कि दिल्ली के बादशाह के पास दूत भेजने के लिए कुछ नजर की जानेवाली चीजें भी भेजी जाती थीं। इंगलैण्ड और पुर्तगाल आदि के राज्य भी ऐसी नजरें भेजते थे। राजसिंह ने भी कुछ चीजें माणिकलाल के साथ भेजीं। फिर भी प्रणय का दौत्य नहीं था, इसलिये अधिक चीजें नहीं भेजी गयीं।

अन्यान्य चीजों में संगमरमर की बनी, जवाहरातों में जड़ी कारीगरी की भी कुछ चीजें भेजीं। माणिकलाल ने उन सबको अलग सवारी पर लदवा दिया।

निर्धारित दिन राणा का आज्ञापत्र और पत्र लेकर, निर्मलकुमारी के साथ दास-दासी, हाथी, घोड़े, ऊँट, बैल, गाड़ी, इक्का, पालकी, रिसाला आदि ले बड़ी तैयारी के साथ माणिकलाल ने यात्रा की। पहुँचने में बहुत दिन लगे। दिल्ली कई कोस बाकी रही, तब माणिकलाल खेमा डाल, निर्मलकुमारी और अन्यान्य लोगों को वहीं छोड़ सिर्फ एक विश्वासी आदमी को साथ ले दिल्ली चला। साथ ही पत्थर की चीजें भी ले लीं। अपनी नकली उँगली को निकाल कर उसे निर्मलकुमारी के पास छोड़ गया, कहा—"कल आऊँगा।"

निर्मल ने पूछा—"मामला क्या है ?"

माणिकलाल ने पत्थर की बनी एक चीज दिखाकर उसमें लगाये गये एक छोटे-से निशान को दिखाया। कहा—"सब चीजों पर ऐसा ही निशान लगाया है।"

निर्मल—क्यों ?

माणिक—दिल्ली में हमारा-तुम्हारा अलगाव अवश्य होगा। इसके बाद यदि मुगलों के प्रतिबन्ध से हम एक-दूसरे का पता न पावें तो तुम पत्थर की चीज खरीदने के लिए बाजार में आदमी भेजना। जिस दुकान की चीज में तुम यह निशान देखना, उसी दुकान से मेरा पता लगाना।

ऐसी ही सलाह कर माणिकलाल विश्वासी आदमी और पत्थर की चीजें ले दिल्ली चला गया। वहाँ जाकर उसने एक मकान किराये पर लिया, जिसके नीचे एक दुकान में पत्थर की चीजें सजा कर और उसमें साथ के विश्वासी आदमी को दुकानदार बनाकर छावनी में लौट आया।

इसके बाद यह सब फौज, रिसाले और निर्मलकुमारी को साथ ले फिर दिल्ली गया और वहाँ नियमानुसार खेमा गाड़कर बादशाह के यहाँ खबर भेजी।

तीसरा परिच्छेद

अग्निचयन

तीसरे पहर औरङ्गजेब का दरबार लगाने पर माणिकलाल वहाँ हाजिर हुआ। दिल्ली के बादशाही आम-खास दरबार का वर्णन अनेक ग्रन्थों में लिखा गया है, यहाँ हम उसका विस्तृत वर्णन करना नहीं चाहते। माणिकलाल ने पहली सीढ़ी समाप्त कर एक सलाम किया। इसके बाद आगे बढ़ना पड़ा। एक कदम उठाने के बाद फिर सलाम, फिर दूसरा कदम बढ़ाने पर सलाम—इस तरह तीन सीढ़ियाँ चढ़कर वह तख्ते-ताऊस के पास पहुँचा। माणिकलाल ने सलाम कर राजसिंह के भेजे मामूली उपहार को बादशाह के सामने नजर किया। नजर की कमी देख औरङ्गजेब नाराज हुआ; किन्तु उसने मुँह से कुछ नहीं कहा।

भेजी हुई चीजों में दो तलवारें थीं; एक म्यान में रखी हुई और दूसरी नंगी। औरङ्गजेब ने नगी तलवार ग्रहण कर और सब उपहार लौटा दिये।

इसके बाद माणिकलाल ने राजसिंह का पत्र दिया। पत्र का मतलब समझने पर औरंगजेब को मारे क्रोध के अन्धेरा दिखाई देने लगा। किन्तु वह क्रुद्ध होने पर भी अपना क्रोध बाहर प्रकट नहीं होने देता था। उसने माणिक्लाल से बड़े आदर के साथ बातें की। उसे अच्छा स्थान देने के लिए बख्शी को आज्ञा दी और दूसरे दिन महाराणा के पत्र का जवाब देने का वादा कर माणिकलाल को विदा दिया।

उसी समय दरबार बर्खास्त हो गया। दरबार उठते ही औरंगजेब ने माणिक्लाल के वध की आज्ञा दी। वध की आज्ञा तो हुई, लेकिन माणिकलाल का वध करनेवालों को माणिकलाल का पता नहीं मिला। जिन्हें माणिकलाल की खातिरदारी की आज्ञा हुई थी, उनके ढूँढ़ने पर भी माणिकलाल नहीं मिला। दिल्ली में सर्वत्र खोज हुई किन्तु कहीं भी माणिकलाल का पता न लगा। अपने वध की आज्ञा प्रचारित होने से पहले ही माणिकलाल खिसक गया था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस समय माणिकलाल की खोज हो रही थी, उस समय वह अपनी पत्थर की दूकान पर बनावटी वेश में दूकानदारी कर रहा था। सिपाही लोग माणिकलाल को न पाने पर उसके डेरे में जो जो लोग मिले उन्हें पकड़ कर कोतवाल के पास ले गये। साथ में निर्मलकुमारी को भी पकड़ ले गये।

कोतवाल ने इन सब लोगों से भी कोई पता न पाया। धमकाने और मार-पीट से भी कोई पता न लगा। वह सब पता जानते ही नहीं थे तो बतायें क्या?

अन्त में कोतवाल ने निर्मलकुमारी से पूछना आरम्भ किया, पर्दानशीन होने की वजह से अब तक उसे अलग रखा गया था। कोतवाल ने जब निर्मलकुमारी से पूछा, तो उसने जवाब दिया कि राणा के दूत को वह पहचानती ही नहीं।

कोतवाल—उसका नाम माणिकलाल सिंह है।

निर्मल—माणिकलाल सिंह को मैं नहीं पहचानती।

कोतवाल—तुम राणा के एलची के साथ उदयपुर से नहीं आई?

निर्मल—उदयपुर तो मैंने कभी देखा भी नहीं।

कोतवाल—तब तुम कौन हो ?

निर्मल—मैं हुजूर जोधपुरी बेगम की हिन्दू बाँदी हूँ ?

कोतवाल—हुजूर जोधपुरी बेगम साहबा की बाँदियाँ महल से बाहर नहीं आतीं।

निर्मल—मैं भी कभी बाहर नहीं आती। हिन्दू एलची का आना सुनकर बेगम साहबा ने मुझे उसके खेमे में भेजा था।

कोतवाल—यह किसलिये ?

निर्मल—किसनजी के चरणामृत के लिए, जिसे सब राजपूत रखते हैं।

कोतवाल—तुम तो अकेली दिखाई देती हो, तुम महल के बाहर कैसे आईं ?

निर्मल—इसके बल से।

यह कह निर्मलकुमारी ने जोधपुरी बेगम का पजा कपड़े के भीतर से निकाल कर दिखाया। देखकर कोतवाल ने उसे तीन बार सलाम किया। निर्मल से कहा—"तुम जाओ, तुम्हें कोई कुछ कह नहीं सकता।"

तब निर्मल ने कहा—"कोतवाल साहब, और कुछ मेहरबानी कीजिए। मैं कभी महल से बाहर नहीं निकली। आज धर-पकड़ देख कर मैं बहुत डर रही हूँ। अगर आप दया कर कोई आदमी या सिपाही साथ कर दें, जो मुझे महल तक पहुँचा आये, तो बहुत अच्छा हो।"

कोतवाल ने उसी समय एक अश्वारोही राजपुरुष को समझाकर निर्मल साथ बादशाही महल की ओर भेज दिया। बादशाह की प्रधान बेगम का पजा देख खोजाओं ने भी कोई उज्र नहीं किया। निर्मलकुमारी जरा चातुरी के साथ पूछ-ताछ करती हुई जोधपुरी बेगम के पास पहुँची। उन्हें प्रणाम कर उसने वह पजा दिखाया। देखते ही होशियार हो बेगम उसे एकान्त में ले जा कर बात-चीत करने लगीं। पूछा—"तुमने यह पजा कहाँ पाया ?"

निर्मलकुमारी ने कहा—"मैं विश्वास के साथ सब हाल कहती हूँ।"

निर्मलकुमारी ने पहले अपना परिचय दिया। इसके बाद देवी के स्थान में पहुँचने, उसकी कही बातों और पजा देने का हाल, इसके बाद चंचल और

निर्मल पर जो-जो बीती थी, वह सब कह सुनाया। उसने माणिकलाल का भी परिचय दिया। यह भी कहा कि वह माणिकलाल के साथ आई है और चञ्चलकुमारी का पत्र ले आई है। इसके बाद दिल्ली पहुँचने पर जिस विपद में पड़ी, वह भी कहा। फिर जिस तरह उसने छुटकारा पाया और जिस कौशल से महल में प्रवेश किया, वह भी सुनाया। इसके बाद चञ्चलकुमारी ने उदयपुरी के लिये जो पत्र दिया था, उसे दिखाया और अन्त में कहा—"इस पत्र को मैं कैसे उदयपुरी के पास पहुँचा सकूँगी, इसी सलाह के लिये आप के पास आई हूँ।"

महारानी ने कहा—"इसकी तरकीब है जेबुन्निसा के हुक्म की आवश्यक्ता। जब यह पापिन शराब पीकर बदहवास होती है, तब इसका उपाय होगा। इस समय तुम मेरी हिन्दू बाँदियों के साथ रहो। हिन्दुओं का अन्न-पानी मिलेगा।

निर्मलकुमारी राजी हो गई। बेगम ने भी ऐसी ही आज्ञा दी।

चौथा परिच्छेद

समिधा-संग्रह—उदयपुरी

कुछ अधिक रात बीतने पर जोधपुरी बेगम ने निर्मल को उपयुक्त उपदेश देकर एक तातारी पहरेदारिन के साथ जेबुन्निसा के पास भेज दिया। निर्मल जेबुन्निसा के कमरे में प्रवेश कर इत्र-गुलाब और फलों के ढेर तथा तम्बाकू की सुगन्ध से विमुग्ध हो गई। तरह-तरह के रत्नों से जड़ी महल की दीवार, शय्या और घर की सजावट देख बहुत ही आश्चर्य में आई। सबसे अधिक जेबुन्निसा के विचित्र, रत्न-पुष्प-मिश्रित अलंकार के प्रभाव से, चन्द्र-सूर्य के समान उज्ज्वल सौन्दर्य की प्रभा से वह चौंक पड़ी। इन सब में सजी-सजाई शाहिज़ादी जेबुन्निसा देवलोक-वासिनी अप्सरा के समान जान पड़ी।

किन्तु उस समय अप्सरा की आँखें झपक रही थीं मुँह लाल हो रहा था, चित्त बेचैन था; उस समय अँगूरी सुधा का पूरा अधिकार था।

निर्मलकुमारी उसके सामने खड़ी हुई; उसने लड़खड़ाती जुबान से पूछा—"तुम कौन हो?"

निर्मलकुमारी ने कहा—"मैं उदयपुर की महारानी की दूती हूँ।"

जेबुन्निसाँ—मुगल बादशाहों का तख्ते-ताऊस ले जाने को आई हो?

निर्मल—नहीं, चिट्ठी लेकर आई हूँ।

जेबुन्निसाँ—चिट्ठी क्या होगी? जलाकर रोशनाई बनाओगी?

निर्मल—नहीं, उदयपुरी बेगम साहबा को दूँगी।

जेबुन्निसाँ—वह जीती है या मर गई?

निर्मल—शायद जीती है।

जेबुन्निसाँ—नहीं वह मर गई। इस दासी को कोई उसके पास ले जाओ।

जेबुन्निसाँ की उन्मत्त बकवाद का मतलब यह था कि इसे यमराज के घर भेज दो। किन्तु तातारी पहरेदारिन इसे समझ न सकी। सीधा मतलब समझ कर निर्मलकुमारी को उदयपुरी बेगम के पास ले गई!

वहाँ जाकर निर्मल ने देखा कि उदयपुरी की आँखें चमक रही हैं, मुख हँस रही है और मिजाज बहुत प्रसन्न है। निर्मल ने खूब झुककर सलाम किया। उदयपुरी ने पूछा—"आप कौन हैं?"

निर्मल ने जवाब दिया—"मैं जोधपुर की महारानी की दूती हूँ।"

उदयपुरी ने कहा—"नहीं-नहीं, तुम फारिस की बादशाह हो। मुगल बादशाह के हाथ से मुझे छीन ले जाने को आई हो।

निर्मलकुमारी ने हँसी रोक कर चञ्चलकुमारी का पत्र उदयपुरी के हाथ में दिया। उदयपुरी उसे पढ़ने का बहाना कर कहने लगी, क्या लिखती है—"ऐ नाजनीं, मेरी प्यारी! तुम्हारी सूरत और दौलत सुन मैं बिलकुल ही बेताब और दीवाना हुआ हूँ। तुम जल्द आकर मेरा कलेजा ठण्डा करो। अच्छा करूँगी। हुजूर के साथ जरूर चलूँगी; आप जरा ठहरें, मैं थोड़ी सी शराब पी लूँ। आप भी थोड़ी शराब मुलाहिजा फर्मावेंगी। अच्छी शराब है, फिरंगी एलची ने इसे नजर किया है। ऐसी शराब आपके मुल्क में पैदा नहीं होती।"

उदयपुरी ने प्याला मुँह से लगाया। इसी मौके पर निर्मलकुमारी बाहर

निकल जोधपुरी बेगम के पास जा पहुँची। उससे जो-जो बातें हुईं, वह सब जोधपुरी से कह दी। सब सुनकर जोधपुरी ने हँसकर कहा—"कल वह चिट्ठी को ठीक तरह से पढ़ेगी। अब तुम भागो। नहीं तो कल बड़ा झमेला खड़ा होगा, मैं तुम्हारे साथ एक विश्वासी खोजा किये देती हूँ। वह तुम्हें महल से बाहर कर तुम्हारे पति के खेमे तक पहुँचा देगा। वहाँ अपने पराये जिसको पाओ, उसके साथ दिल्ली से बाहर चली जाओ। अगर खेमे में कोई न मिले, तो इसी के साथ दिल्ली से बाहर निकल भाग जाओ, तुम्हारे पति दिल्ली छोड़ कर कहीं तुम्हारे ही आसरे में होंगे। अगर उनसे मुलाकात न हो, तो यह खोजा ही तुम्हें उदयपुर तक पहुँचा देगा। अगर तुम्हारे पास खर्चा न हो, तो मैं देती हूँ। किन्तु सावधान मेरी खबर न हो।"

निर्मल ने कहा—"हजूर इस बारे में निश्चिन्त रहें, मैं राजपूत की लड़की हूँ।"

तब जोधपुरी ने बनवासी नाम के अपने विश्वासी खोजे को बुलाकर, जो करना चाहिये, वह समझा कर पूछा—"तुम अभी जा सकोगे?"

बनवासी ने कहा—"जा सकूँगा, किन्तु आपका एक दस्तखती परवाना न मिलने से हिम्मत नहीं होती।"

जोधपुरी ने कहा—"जैसा परवाना चाहिये, लिखा ले आओ; मैं बेगम साहबा का दस्तखत करा दूँगी।"

खोजा परवाना लिखा ले आया। उसे उसी तातारिन पहरेदारिन को दे कर बेगम ने कहा—"इस पर बेगम साहबा का दस्तखत करा ले आओ।"

पहरेदारिन ने पूछा—"अगर पूछें कि कैसा परवाना है?"

जोधपुरी ने कहा—"कहना कि मेरे कत्ल का परवाना है। लेकिन कलम-दावात लेती जाना। पंजे की छाप लगाना न भूलना।"

पहरेदारिन ने कलम-दावात के साथ परवाना ले जाकर जेबुन्निसाँ के सामने रखा। जेबुन्निसाँ ने पहले कहे मुताबिक ही पूछा—"कैसा परवाना है?"

पहरेदारिन ने कहा—मेरे कत्ल का परवाना है।"

जेबुन्निसाँ—"क्या कुसूर था?"

पहरेदारिन—बेगम उदयपुरी का पेशवाज।

जेबुन्निसाँ—अच्छा कत्ल होने के बाद पहनना।

यह कह जेबुन्निसाँ ने परवाने पर दस्तखत कर दिये। पहरेदारिन ने मुहर छपवा कर जोधपुरी को ला कर दिया। वनवासी उस पर्वाने के साथ निर्मल को साथ ले महल से बाहर निकला। निर्मलकुमारी बहुत ही प्रसन्नता के साथ खोजा के साथ चली।

किन्तु एकाएक यह प्रसन्नता गायब हो गई। रंगमहल के फाटक के पास जाकर खोजा जरा स्तम्भित हो खड़ा रह गया। उसने कहा—"आफत, आफत! भागो, भागो!!" यह कहता हुआ खोजा तेजी के साथ भाग गया।

पाँचवाँ परिच्छेद

समिधा-संग्रह—स्वयं यम!

निर्मल समझ न सकी कि क्यों भागना चाहिये? उसने इधर-उधर देखा—लेकिन उसे भागने का कोई कारण दिखाई न दिया। केवल उसने देखा कि फाटक के पास अधेड़ उम्र का सफेद पोश एक आदमी खड़ा है। उसके मन में आया, कि क्या यह कोई भूत-प्रेत है जिसे डर कर खोजा भागा? निर्मल स्वयं भूत से डरती नहीं थी, इसलिए वह बिना भागे इधर-उधर करने लगी। इसी समय वह सफेदपोश आदमी आकर निर्मल के सामने खड़ा हो गया। निर्मल को देखकर उसने पूछा—"तुम कौन हो?"

निर्मल—मैं चाहे कोई भी क्यों न होऊँ?

सफेदपोश पुरुष ने पूछा—तुम कौन हो? कहाँ जा रही थी?

निर्मल—बाहर।

पुरुष—क्यों?

निर्मल—मुझे जरूरत है।

पुरुष बिना जरूरत के कोई कुछ नहीं करता, यह मैं जानता हूँ। क्या जरूरत है?

निर्मल—मैं न बताऊँगी।

पुरुष—तुम्हारे साथ कौन जा रहा था?

निर्मल—मैं न बताऊँगी।

पुरुष—तुम हिन्दू जान पड़ती हो, कौन जाति हो?

निर्मल—राजपूत।

पुरुष—क्या तुम जोधपुरी बेगम के पास रहती हो?

निर्मल ने दृढ़प्रतिज्ञा की थी कि जोधपुरी बेगम का नाम किसी के सामने न लेगी, क्योंकि क्या जाने उनका कोई अनिष्ट हो। इसलिए उसने कहा—"मैं यहाँ नहीं रहती, आज ही आई हूँ।"

उस पुरुष ने पूछा—"कहाँ से आई हो?"

निर्मल ने मन में सोचा कि झूठ क्यों बोलूँ, यह आदमी मेरा क्या करेगा? किसी के भय से राजपूत की कन्या झूठ क्यों बोले। इसलिए उसने कहा—"मैं उदयपुर से आई हूँ।

तब पुरुष ने पूछा—"किसलिए आई?"

निर्मल ने सोचा कि इसे इतना परिचय क्यों दे? उसने कहा—"आपको इतना परिचय देने से मतलब? इतनी पूछ-ताछ न कर यदि आप मुझे फाटक से बाहर कर दें, तो विशेष उपकार होगा।"

पुरुष ने कहा—"तुम से पूछ-ताछ कर अगर मैं तुम्हारे जवाब से सन्तुष्ट होऊँ, तो तुम्हें फाटक से बाहर कर दे सकता हूँ।"

निर्मल—"यह न जाने बिना कि आप कौन हैं, मैं आपसे कोई बात न कहूँगी।"

पुरुष ने उत्तर दिया—"मैं बादशाह आलमगीर हूँ।"

तब वह तस्वीर, जिसे चंचलकुमारी ने पैर से कुचल कर तोड़ा था, निर्मलकुमारी को याद आई। निर्मल ने जरा दाँतों तले जीभ दबा कर मन ही मन कहा—"हाँ, हैं तो वही।"

तब निर्मलकुमारी ने जमीन छूकर कायदे के साथ उन्हें सलाम किया। हाथ जोड़कर कहा—"हुक्म फर्माएँ।"

बादशाह—यहाँ तुम किसके पास आई हो?

निर्मल—हुजूर बेगम उदयपुरी साहिबा के पास।

बादशाह—क्या कहा? उदयपुर से उदयपुरी के पास? क्यों?

निर्मल—एक चिट्ठी थी।

बादशाह—किसकी चिट्ठी?

निर्मल—महाराणा की महारानी की।

बादशाह—वह पत्र कहाँ है?

निर्मल—उसे बेगम साहिबा को दे आई।

बादशाह बहुत ही विस्मित हुए। कहा—"यहाँ मेरे साथ आओ।"

निर्मल को साथ ले बादशाह उदयपुरी-भवन में गये। दर्वाजे पर निर्मल को खड़ी करा उन्होंने तातारी पहरेदारिन से कहा—"इसे जाने न देना।" स्वयं उदयपुरी के सोने के कमरे में प्रवेश कर देखा कि उदयपुरी गहरी नींद में हैं, उसके बिस्तर पर चिट्ठी पड़ी है। औरङ्गजेब ने उसे उठाकर पढ़ा। यह पत्र उस समय के कायदे के मुताबिक फारसी में लिखा था।

पत्र को पढ़कर ग्रीष्म की सन्ध्या की कादम्बिनी के समान भीषण कालिमा लिये औरङ्गजेब बाहर आये। उन्होंने निर्मल से कहा—"तू इस महल में कैसे आई?"

निर्मल ने हाथ जोड़कर कहा—"बाँदी का अपराध क्षमा करें, मैं इस बात का जवाब न दूँगी।"

औरङ्गजेब आश्चर्य में आये। उन्होंने कहा—"इतनी हिमाकत? मैं दुनिया का बादशाह हूँ—मैं पूछता हूँ और जवाब न दोगी?"

निर्मल ने हाथ जोड़कर कहा—"दुनिया हुजूर की है, लेकिन [illegible] है। मैं जो न कहना चाहूँ, उसे दुनिया के बादशाह कहला नहीं सकते।"

औरङ्गजेब—अगर ऐसा न कर सकूँ तो तू जिस [illegible] अभी तातारी पहरेदारिन से कटवाकर कुत्तों को खिलवा सकता [illegible]।

निर्मल—दिल्लीश्वर की मर्जी। किन्तु ऐसा होने से जो समाचार आप [illegible], उसे प्रकट होने की राह हमेशा के लिए बन्द हो जायगी।

औरंगजेब—इसी से तुम्हारी जीभ को छोड़ देता हूँ। तुम्हारे लिए यही हुक्म देता हूँ कि आग जलाकर और तुम्हें कपडे में लपेट कर जरा-जरा-सा तातारियों से जलवा दूँ। तुम मेरी बातों से जो कबूल न करोगी, उसे आग की जलन से कबूल दोगी।

निर्मलकुमारी हँसी। उसने कहा—हिन्दू औरतें आग में जल कर मरने से नहीं डरतीं, बादशाह सलामत! क्या आपने कभी नहीं सुना कि हिन्दू औरतें हँसती हुई स्वामी के साथ जलती चिता में जल मरती हैं? आप जो मरने का भय दिखाते हैं, मेरी माँ, नानी आदि वंशपरम्परा से उसी आग में मरी हैं; मैं भी कामना करती हूँ कि ईश्वर की कृपा से स्वामी के बगल में स्थान पाकर आग में जीती जल मरूँ।"

बादशाह ने मन ही मन कहा—"वाह-वाह! वाह-वाह!!" फिर खुलकर कहा—"इस बात का फैसला पीछे होगा। अभी तू इस महल की एक कोठरी के अन्दर बन्द हो जा, भूख-प्यास से तडपने पर भी जब कुछ न पायेगी और जब समझेगी कि अब प्राण जाते हैं, तब किवाड़ खटखटाने पर पहरेदार दरवाजा खोलकर तुझे मेरे पास ले आयगा, तब तू मेरी बातों का जवाब देने पर दाना-पानी पायेगी।"

निर्मल—शाहशाह! क्या आपने कभी सुना नहीं कि हिन्दू स्त्रियाँ व्रत रखती हैं।" व्रत-नियम के लिए एक दिन, दो दिन, तीन दिन बिना जल के उपवास करती हैं।—अशरण-शरण के लिए अनिश्चित काल तक उपवास करती हैं। वह कभी-कभी उपवास कर इच्छापूर्वक प्राण-त्याग भी करती हैं। जहाँ-पनाह! यह दासी भी वैसा कर सकती है। इच्छा हो मृत्यु तक परीक्षा कर देखें।

औरंगजेब ने देखा कि इस लड़की को भय दिखाने से कुछ न होगा; मार डालने से भी कुछ न होगा। तकलीफ देने से क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता; किन्तु इससे पहले एक बार प्रलोभन की शक्ति की परीक्षा करनी चाहिये। इसलिए उन्होंने कहा—"अच्छा, मान लिया कि तुम्हें तकलीफ न दी

जायगी। तुम्हें धन-दौलत देकर विदा करूँगा। तुम यह सब बातें सही-सही कह दो।"

निर्मल—राजपूत कन्याएँ जैसे मृत्यु से घृणा करती हैं, वैसे ही धन-दौलत से भी। मैं मामूली औरत हूँ आप मुझे विदा कर दें।

औरंगजेब—दिल्ली के बादशाह के लिए भी क्या कुछ अदेय है? क्या उससे माँगने के लिए तुम्हारी कुछ इच्छा नहीं।

निर्मल—यही इच्छा है कि निर्विघ्न विदा कर दें।

औरंगजेब—इस समय यह कामना पूरी नहीं होगी। क्या इसके अलावा संसार में तुम्हारी और कोई प्रार्थना नहीं?

निर्मल—प्रार्थना है क्यों नहीं, किन्तु दिल्ली के बादशाह के खजाने में वह रत्न नहीं है।

औरंगजेब—ऐसी कौन-सी चीज है?

निर्मल—हम हिंदू, संसार में केवल धर्म से ही डरते हैं और धर्म की ही कामना करते हैं। दिल्ली के बादशाह अच्छे और ऐश्वर्यशाली हैं। पर दिल्ली के बादशाह में यह सामर्थ्य कहाँ, जो मेरी इच्छित वस्तु दे सकें।

दिल्लीश्वर, निर्मलकुमारी के साहस और चतुरता को देख क्रोध परित्याग कर विस्मय में पड़ गये, किन्तु इस कटु वचन से फिर क्रोधित हो बोले—"सही है, सही है। मैं एक बात तो भूल ही गया था।" इसके बाद एक तातारी को हुक्म देते हुए कहा—"जा, बावर्चीखाने से थोड़ा गोमांस लाकर दो तीन औरतों द्वारा पकड़ कर इसके मुँह में भर दो।"

निर्मल तब भी न हिली, उसने कहा—"मैं जानती हूँ कि आप लोगों में यह एक गुण है। इसी गुण के जोर से इस सोने के हिन्दुस्तान को छीन लिया है। मैं जानती हूँ कि गौओं के दल के सामने करके ही मुसलमानों ने हिन्दुओं को पराजित किया। नहीं तो राजपूतों के बाहुबल के आगे मुसलमानों का बाहुबल समुद्र के सामने गड्ढे के समान है। किन्तु एक बात की याद दिलाती हूँ, आपने क्या यह नहीं सुना कि राजपूत औरतें बिना जहर लिए एक कदम भी बाहर नहीं [illegible]! मेरे पास ऐसा तेज जहर है कि आपके नौकर अगर [illegible]

इस कमरे में पहुँच भी जायँ और तब मैं ज़हर मुँह में रखूँ, तो भी जीते जी मेरे मुँह में कोई गोमास डाल नहीं सकता। जहाँपनाह! आप अपने बड़े भाई दाराशिकोह को मार कर उनकी दो स्त्रियों पर दखल जमाने गये थे, किन्तु क्या कर सके? हाँ, यह मालूम है कि अधम खृष्टानी आपके हाथ लगी। किन्तु राजपूतनी आपके मुँह पर सात पैजार मार स्वर्ग नहीं चली गई? मैं भी अभी आपके मुँह में सात पैजार मार स्वर्ग चली जाऊँगी।"

बादशाह—चुप!

जो पृथ्वीपति के नाम से विख्यात है, पृथ्वी भर में जिनके गौरव का बोलबाला है, जो सारे भारतवर्ष के नाथ हैं, वे आज इस अनाथा, असहाया अबला के आगे अपमानित और परास्त हुए। औरंगजेब ने पराजय स्वीकार की। उन्होंने मन ही मन कहा—"यह अमूल्य रत्न है। इसे बर्बाद न करना चाहिये। मैं इसे अपने वश में ले आऊँगा। प्रकट में उन्होंने मधुर स्वर में कहा—"तुम्हारा नाम क्या है, प्यारी?"

निर्मलकुमारी ने हँसकर कहा—"यह क्या जहाँपनाह! क्या अभी और राजपूत रानियों का शौक है? अब इस शौक को भी परित्याग करना होगा। मैं विवाहिता हूँ; हिन्दू पति जीवित हैं।"

औरंगजेब—यह बातें अब रहने दो। अभी कुछ दिन मेरे इस रंगमहल में रहो। शायद इस हुक्म को तुम मानोगी?

निर्मलकुमारी—मुझे क्यों रोक रहे हो?

औरंगजेब—तुम अभी देश जाकर मेरी बहुत बदनामी करोगी। मैं तुमसे ऐसा बर्ताव करना चाहता हूँ, जिससे तुम मेरी तारीफ करो। इसके बाद तुम्हें छोड़ दूँगा।

निर्मलकुमारी—अगर आप न छोड़े तो मेरी मजाल नहीं कि यहाँ से चली जाऊँ; किन्तु आप कई बातों की प्रतिज्ञा करें, तो मैं कुछ दिन यहाँ रह सकती हूँ।

औरंगजेब—क्या ··· प्रतिज्ञा!

निर्मलकुमारी—हिन्दू के अन्न-जल के अलावा और मैं कुछ ग्रहण न करूँगी।

औरंगजेब—यह मुझे मंजूर है।

निर्मलकुमारी—कोई मुसलमान मुझे छू न सकेगा।

औरंगजेब—यह भी मंजूर है।

निर्मलकुमारी—मैं किसी राजपूत बेगम के पास रहूँगी।

औरंगजेब—ऐसा ही होगा; मैं तुम्हें जोधपुरी बेगम के पास रखूँगा।

निर्मलकुमारी के लिए बादशाह ने ऐसा ही बन्दोबस्त कर दिया।

छठवाँ परिच्छेद

फिर समिधा-संग्रह के लिए

दूसरे दिन औरंगजेब ने जेबुन्निसाँ और निर्मलकुमारी को साथ ले रंग-महल में इस बात की जाँच की कि किसने उसे रंगमहल में आने दिया। उन्होंने महल में रहनेवाली समस्त तातारिनों को बुलाकर पूछा। उन्होंने ही निर्मल को आने दिया था। उन्होंने उसे पहचाना, लेकिन बहुत खराब काम हो जाने के खयाल से किसी ने अपराध स्वीकार नहीं किया। औरंगजेब और जेबुन्निसाँ को जब कोई पता न लगा, तब उन्होंने अन्यान्य दास-दासियों को आज्ञा दी कि इसे आने देने में कोई नुकसान नहीं; किन्तु इसे कोई मेरे हुक्म के बिना जाने न दें। फिर भी कोई तकलीफ न दे और अपमान न करे। बेगम-जैसी ही इज्जत की जाय। यह जोधपुरी बेगम की हिन्दू बाँदियों के हाथ का भोजन करेगी और पानी पायेगी—कोई मुसलमान इसे छू न सकेगा।

निर्मलकुमारी को सब ने सलाम किया, जेबुन्निसाँ ने आदर के साथ उसे अपने कमरे में बैठाया और उससे तरह-तरह की बात की। लेकिन निर्मल के भीतर की कोई बात वह जान न सकी।

उसी दिन तीसरे पहर एक तातारी पहरेदारिन ने जोधपुरी बेगम को खबर दी, "एक सौदागर पत्थर की चीज़ें महल में बेचने आया है। [illegible] उसने महल में भेज दी हैं। अच्छी नहीं हैं, किसी बेगम ने कोई पसन्द नहीं किया। क्या आप कुछ लेंगी!"

माणिकलाल चुन-चुनकर खराब चीज़ें ले आया था, [illegible] बेगमें उसे खरीद न लें। जिस समय पहरेदारिन ने यह बात कही, [illegible]

निर्मलकुमारी जोधपुरी बेगम के पास थी। उसने बेगम को कुछ आँख का इशारा देकर कहा—"मैं खरीदूँगी।"

गई रात को निर्मलकुमारी से बादशाह की जैसी मुलाकात और बात-चीत हुई थी, निर्मल ने वह सब जोधपुरी बेगम से कह दिया था। यह सुनकर जोधपुरी बेगम ने निर्मल की बहुत प्रशंसा की और उसे आशीर्वाद दिया। वह उसका बहुत आदर करती थी। अब निर्मल का मतलब समझ उसने पत्थर की चीजें ले आने की आज्ञा दी।

पहरेदारिन के बाहर जाने पर निर्मल ने संक्षेप में जोधपुरी बेगम से माणिकलाल के निशान के कौशल को समझा दिया। तब बेगम ने कहा—"तब तक तुम पति के लिए एक पत्र लिख डालो। मैं पत्थर की चीजें देखती रहूँगी।" ठीक समय पर पत्थर की सब चीजें आकर हाजिर हुईं।

निर्मल ने देखा कि सभी चीजों पर माणिकलाल के निशान लगे हैं। यह देखकर निर्मल चिट्ठी लिखने बैठी। जब तक निर्मल ने पत्र लिखा, तब तक जोधपुरी बेगम चीजें पसन्द करती रहीं। इन सब चीजों में पत्थर के बने रत्नों से जड़ा नक्काशीदार एक डिब्बा था। उसमें चाबी-ताला लगाने के लिए सोने की सिकड़ी लगी हुई थी। पत्र लिखे जाने पर निर्मलकुमारी ने जोधपुरी बेगम आदि सबकी निगाह बचाकर उस पत्र को उस डिब्बे में रखकर चाबी बन्द कर दी।

बेगम ने सब चीजें पसन्द करके रख लीं, केवल उसी डिब्बे को नापसन्द कर लौटा दिया। वापस करने के समय वह जान-बूझकर चाबी वापस करना भूल गई।

बनावटी सौदागर माणिकलाल केवल डिब्बे को वापस पाकर और चाबी के न आने पर आशान्वित हुआ। वह रुपये पैसे और डिब्बा लेकर अपनी दूकान वापस चला गया। वहाँ उसने एकान्त में निर्मलकुमारी का पत्र पाया।

पाठकों को उस पत्र में विस्तार के साथ लिखी बातों को जानने की जरूरत नहीं। जो मोटी बात है, उसे पाठक समझ ही गये होंगे। चिट्ठी पाकर निर्मल के सम्बन्ध में निश्चिन्त होकर माणिकलाल अपने देश लौट जाने की तैयारी

निर्मलकुमारी—कोई मुसलमान मुझे छू न सकेगा।

औरंगजेब—यह भी मंजूर है।

निर्मलकुमारी—मैं किसी राजपूत बेगम के पास रहूँगी।

औरंगजेब—ऐसा ही होगा; मैं तुम्हें जोधपुरी बेगम के पास रखूँगा।

निर्मलकुमारी के लिए बादशाह ने ऐसा ही बन्दोबस्त कर दिया।

छठवाँ परिच्छेद

फिर समिधा-संग्रह के लिए

दूसरे दिन औरंगजेब ने जेबुन्निसाँ और निर्मलकुमारी को साथ ले रंगमहल में इस बात की जाँच की कि किसने उसे रंगमहल में आने दिया। उन्होंने महल में रहनेवाली समस्त तातारिनों को बुलाकर पूछा। उन्होंने ही निर्मल को आने दिया था। उन्होंने उसे पहचाना, लेकिन बहुत खराब काम हो जाने के खयाल से किसी ने अपराध स्वीकार नहीं किया। औरंगजेब और जेबुन्निसाँ को जब कोई पता न लगा, तब उन्होंने अन्यान्य दास-दासियों को आज्ञा दी कि इसे आने देने ऐसा कोई नुकसान नहीं; किन्तु इसे कोई मेरे हुक्म के बिना जाने न दें। फिर भी कोई तकलीफ न दे और अपमान न करे। बेगम-जैसी ही इज्जत की जाय। यह जोधपुरी बेगम की हिन्दू बाँदियों के हाथ का भोजन करेगी और पानी पायेगी—कोई मुसलमान इसे छू न सकेगा।

निर्मलकुमारी को सब ने सलाम किया, जेबुन्निसाँ ने आदर के साथ उसे अपने कमरे में बैठाया और उससे तरह-तरह की बातें कीं। लेकिन निर्मल के भीतर की कोई बात वह जान न सकी।

उसी दिन तीसरे पहर एक तातारी पहरेदारिन ने जोधपुरी बेगम को खबर दी, "एक सौदागर पत्थर की चीजें महल में बेचने आया है। कितनी ही चीजें उसने महल में भेज दी हैं। अच्छी नहीं हैं, किसी बेगम ने उन्हें पसन्द नहीं किया। क्या आप कुछ लेंगी?"

माणिकलाल चुन-चुनकर खराब चीजें ले आया था, वह इसलिए कि बेगमें उसे खरीद न लें जिस समय पहरेदारिन ने यह बात कही, उस समय

निर्मलकुमारी जोधपुरी बेगम के पास थी। उसने बेगम को कुछ आँख का इशारा देकर कहा—"मैं खरीदूँगी।"

गई रात को निर्मलकुमारी से बादशाह की जैसी मुलाकात और बात-चीत हुई थी, निर्मल ने वह सब जोधपुरी बेगम से कह दिया था। यह सुनकर जोधपुरी बेगम ने निर्मल की बहुत प्रशंसा की और उसे आशीर्वाद दिया। वह उसका बहुत आदर करती थी। अब निर्मल का मतलब समझ उसने पत्थर की चीजें ले आने की आज्ञा दी।

पहरेदारिन के बाहर जाने पर निर्मल ने संक्षेप में जोधपुरी बेगम से माणिकलाल के निशान के कौशल को समझा दिया। तब बेगम ने कहा—"तब तक तुम पति के लिए एक पत्र लिख डालो। मैं पत्थर की चीजें देखती रहूँगी।" ठीक समय पर पत्थर की सब चीजें आकर हाजिर हुईं।

निर्मल ने देखा कि सभी चीजों पर माणिकलाल के निशान लगे हैं। यह देखकर निर्मल चिट्ठी लिखने बैठी। जब तक निर्मल ने पत्र लिखा, तब तक जोधपुरी बेगम चीजें पसन्द करती रहीं। इन सब चीजों में पत्थर के बने रत्नों से जड़ा नक्काशीदार एक डिब्बा था। उसमें चाबी-ताला लगाने के लिए सोने की सिकड़ी लगी हुई थी। पत्र लिखे जाने पर निर्मलकुमारी ने जोधपुरी बेगम आदि सबकी निगाह बचाकर उस पत्र को उस डिब्बे में रखकर चाबी बन्द कर दी।

बेगम ने सब चीजें पसन्द करके रख लीं, केवल उसी डिब्बे को नापसन्द कर लौटा दिया। वापस करने के समय वह जान-बूझकर चाबी वापस करना भूल गई।

बनावटी सौदागर माणिकलाल केवल डिब्बे को वापस पाकर और चाबी के न आने पर आशान्वित हुआ। वह रुपये-पैसे और डिब्बा लेकर अपनी दूकान वापस चला गया। वहाँ उसने एकान्त में निर्मलकुमारी का पत्र पाया।

पाठकों को उस पत्र में विस्तार के साथ लिखी बातों को जानने की जरूरत नहीं। जो मोटी बात है, उसे पाठक समझ ही गये होंगे। चिट्ठी पाकर निर्मल के सम्बन्ध में निश्चिन्त होकर माणिकलाल अपने देश लौट जाने की तैयारी

करने लगा। लेकिन उसी दिन दुकान उठाने से शायद कोई सन्देह करे, इसलिए कई दिन की देर करना उसने ठीक समझा।

सातवाँ परिच्छेद

समिधा-संग्रह—जेबुन्निसाँ

अब जरा निर्मलकुमारी को छोड़ मुगल वीर मुबारक की खबर लेनी चाहिये। पहले ही कहा जा चुका है कि जो लोग रूपनगर से मुँह फेर कर लौट आये थे, औरङ्गजेब ने उनमें किसी को पदच्युत और किसी को कैद कर लिया था; किन्तु मुबारक उस दल में गिने नहीं गये थे। औरङ्गजेब ने सब लोगों से उनकी बहादुरी की बातें सुन उन्हें बहाल कर रखा था।

जेबुन्निसाँ ने भी उनकी तारीफ सुनी। वह समझी कि मुबारक खुद उनके पास हाजिर हो उसे अपना सब परिचय देंगे, किन्तु मुबारक आये नहीं।

मुबारक दरिया को अपने घर ले आये थे। उसके लिए खोजे और बाँदियाँ नियुक्त कर दी गई थीं। वह किमखाब की पोशाक से सजित की गई थी; यथासाध्य अलंकारों से भी भूषित की गई थी। मुबारक पवित्र विवाहिता पत्नी के साथ अपनी गृहस्थी चला रहे थे।

मुबारक को अपनी इच्छा से न आते देख जेबुन्निसाँ ने विश्वासी खोजा असीरुद्दीन से उसे बुलवाया। तब भी मुबारक न आये। जेबुन्निसाँ को बहुत क्रोध आया। इतनी बड़ी हिमाकत! शाहजादी मेहरबानी फरमा कर याद करती हैं, फिर भी हाजिर नहीं हुआ—इतनी गुस्ताखी!!

कई दिनों तक जेबुन्निसाँ क्रोध में ही भरी रही। मन ही मन सोचा कि मेरे लिए तो सभी समान हैं। किन्तु जेबुन्निसाँ तब भी समझ नहीं सकी कि शाहजादी से भी भूल होती है—खुदा ने शाहजादी और खेतिहारिन को एक ही साँचे में ढाला है धन,—दौलत, तख्ते-ताऊस आदि सभी कर्म-भोग हैं इनमें और कोई प्रभेद नहीं।

सब एक समान नहीं; जेबुन्निसाँ के लिए भी सब समान नहीं। कुछ दिन क्रोध में रहने के बाद जेबुन्निसाँ मुबारक के लिए व्याकुल हुई। मान खोकर—

शाहजादी की इज्जत, नादिरा की इज्जत, दोनों ही गँवाकर उन्होंने फिर मुबारक को बुलवा भेजा। मुबारक ने कहलवा दिया—"मेरी बहुत-बहुत तस्लीमात। शाहजादी से देखें; कीमत मेरे लिये कोई नहीं—सिर्फ एक खुदा है, दीन है। अब मुझसे गुनाह न होगा। अब मैं महल के अन्दर न आऊँगा—मैं दरिया को घर ले आया हूँ।

जवाब सुनकर जेबुन्निसा मारे क्रोध के फूलकर अटगुनी हो गई और मुबारक तथा दरिया को मार डालने पर तैयार हुई। यही बादशाही दस्तूर है।

महल में निर्मलकुमारी के रहने से जेबुन्निसा को इस मतलब को साधने का अच्छा मौका मिला। निर्मलकुमारी औरंगजेब से धीरे-धीरे आदर पाने लगी। इसमें कन्दर्प महाराज की कोई कारसाजी नहीं थी; यह काम शैतान का था। औरङ्गजेब नित्य मौका मिलने पर आराम और ऐश के समय "रूपनगरी नाजनीन" को बुलाकर बातचीत करते थे। बातचीत का प्रधान उद्देश्य होता था—राजसिंह की राज्य सम्बन्धी अवस्था का समाचार लेना, फिर भी चतुर-चूड़ामणि औरङ्गजेब इस प्रकार बातचीत करते थे कि कोई समझ न पाता था कि वह युद्ध के समय काम आने लायक समाचार का संग्रह कर रहे हैं। किन्तु निर्मल भी चतुरता में पीछे नहीं थी, वह सब बातों का मतलब समझती थी और प्रयोजनीय बातों का झूठा जवाब देती थी।

इसलिये औरङ्गजेब उसकी बातचीत से पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं होते थे। उन्होंने मन ही मन यह विचार किया था कि मैं मेवाड़ को सैन्य-सागर में डुबा दूँगा। इसके बाद बादशाह के इशारे से जेबुन्निसा ने निर्मलकुमारी को रत्नालङ्कारों से विभूषित किया। उसको पहिनावे में बेगमों जैसी पोशाक मिली। निर्मल जो कहती, वही होता, जो माँगती, वही पाती। केवल बाहर नहीं जा सकती थी।

इन सब बातों पर जोधपुरी के साथ निर्मल का मजाक चलता था। एक दिन हँस कर निर्मल ने जोधपुरी से कहा—

सोने का पिंजरा सोने की चिड़िया, सोने की जंजीर पैरों में।
सोने का चना सोने का दाना फिर मिट्टी क्यों है पैरों म॥

जोधपुरी ने कहा—"तब तुम लेती क्यों हो?"

निर्मल ने कहा—"उदयपुर में जाकर दिखाऊँगी कि मुगल बादशाह को ठग कर ले आई हूँ।"

जेबुन्निसा औरङ्गजेब का दाहिना हाथ थी। औरङ्गजेब की आज्ञा से जेबुन्निसा निर्मल को सँभालने लगी। निर्मल के साथ हँसी-दिल्लगी होती, लेकिन वह भी बादशाही ढग से सजी हुई। निर्मल क्रोध न कर सकती, केवल जवाब देती थी, वह भी औरत के ढंग से मँजा हुआ, पर रूपनगर के पहाड़ों की कर्कशता से शून्य नहीं।

जेबुन्निसाँ के सामने जो बात कहने में निर्मल को कोई आपत्ति न होती, उसे वह अकसर कहती थी। अन्यान्य बातों के सिलसिले में यह बात भी उठी कि रूपनगर का युद्ध कैसे हुआ था। निर्मल ने युद्ध का पहला भाग देखा नहीं था, किन्तु चंचलकुमारी से उसने सब हाल सुना था। जैसा सुना था, जेबुन्निसाँ को वैसा ही सुना दिया। उसने यह भी कहा कि मुबारक ने मुगल सैन्य को आवाज दे कर चंचलकुमारी के सामने पराभव स्वीकार कर रण में विजय परित्याग करने को कहा था। यह भी कहा कि चंचलकुमारी राजपूतों की रक्षा की इच्छा से दिल्ली आना चाहती थी। उसने उनके विष खाने के भरोसे की बात भी कही और बताया कि मुबारक चंचलकुमारी को नहीं ले गये।

यह सुनकर जेबुन्निसाँ ने मन ही मन कहा—"मुबारक साहब, इसी अस्त्र से तुम्हारे धड से सिर जुदा कराऊँगी।" मौका पाकर जेबुन्निसाँ औरङ्गजेब को उस युद्ध का इतिहास सुनाया।

सुनकर औरङ्गजेब ने कहा—"अगर वह नीच ऐसा विश्वास-घातक है, तो आज वह जहन्नुम भेज दिया जायगा।" यह बात नहीं कि औरङ्गजेब उस काड को नहीं समझे। जेबुन्निसाँ के कुचरित्र का हाल वह अकसर सुना करते थे। कितने ही लोग हैं—"जो कुत्ते को तो मारते हैं, लेकिन हड्डी नहीं फेंकते।" मुगल बादशाह भी ऐसे ही सम्प्रदाय के आदमी थे। वे लोग कन्या, बहन के दुश्चरित्र को जानकर भी कन्या और बहन को कुछ न कहते, किन्तु जो आदमी कन्या और बहन का अनुगृहीत होता, उसका पता पाते ही किसी छल या कौशल से उसे मार डालते थे। औरङ्गजेब बहुत दिनों से मुबारक को जेबुन्निसाँ

का प्रेमी समझ सन्देह करते आते थे, किन्तु ठीक समझ न सके थे। इस समय कन्या की बातों से अच्छी तरह समझ गये कि शायद झगड़ा हुआ है। इसी से शाहजादी को जिस चींटी ने काटा है, उसे वह मसल कर मार डालना चाहती है। औरङ्गजेब इसके लिए अच्छी तरह राजी थे। किन्तु एक बार निर्मल के मुँह से इन सब बातों को सुनना चाहिये, इसलिए उन्होंने निर्मल को बुलाया। भीतरी बातें निर्मल कुछ नहीं जानती-समझती थी, इसलिए उसने सब ठीक बातें कह दीं।

ठीक समय पर बख्शी को बुलाकर बादशाह ने मुबारक के बारे में आज्ञा जारी की। बख्शी की आज्ञा पर आठ सिपाही मुबारक को पकड़ कर ले आये। मुबारक हँसते हुए बख्शी के पास आया। देखा कि बख्शी के आगे लोहे के दो पिंजरे रक्खे हैं जिसमें एक-एक विषधर साँप फुँकार रहे हैं।

आजकल जो लोग राजदण्ड से मारे जाते हैं, उन्हें फांसी चढना पड़ता है। मुगलों के राज्य में वध के अनेक उपाय थे—किसी का सिर काटा जाता; कोई सूली चढाया जाता; कोई हाथी के पैरों तले फेंका जाता; कोई विषधर साँप डसवा कर मारा जाता; जिसे छिपकर मारना होता, उसके लिए विष का प्रयोग होता था।

बख्शी के दो किनारे, दो विषधर साँपों के पिंजरे देख, हँसकर मुबारक ने कहा—"क्या मुझे जाना होगा?"

बख्शी ने दुःखित होकर कहा—"बादशाह का हुक्म।"

मुबारक ने पूछा—"यह हुक्म क्यों हुआ, कुछ मालूम है?"

बख्शी—नहीं, क्या आप कुछ नहीं जानते?

मुबारक—एक प्रकार का अन्दाज हो अन्दाज है, तब अब देर क्यों?

बख्शी—कुछ नहीं।

तब मुबारक ने जूता उतार कर एक पिंजरे पर पैर रख दिया। साँप ने फुँकार कर पिंजरे के छेदों से डस लिया।

उसने की ज्वाला से मुबारक का मुख विवर्ण हुआ। फिर बख्शी से उसने कहा—"साहब, अगर कोई पूछे कि मुबारक क्यों मरा, तो मेहरबानी कर कहियेगा कि शाहजादीये आलम जेबुन्निसा साहबा की इच्छा से।"

बख्शी ने मारे भय के घबड़ा कर कहा—"चुपचुप ! ऐसा भी.."

यदि एक साँप में विष न हो, तो दूसरे साँप से बध किये जाने वाले आदमी को कटाने का नियम था। मुबारक इसे जानते थे उन्होंने दूसरे पिंजरे पर भी पैर रख दिया। दूसरे महासर्प ने भी डसकर तेज जहर उगल दिया।

तब मुबारक विशेष जलन से जर्जर हो नीले पड़ गये और जमीन पर घुटने टेक कहने लगे—"अल्ला हो अकबर ! अगर कभी तुम्हारी दया पाने के लायक काम किया हो, तो इस समय दया करो !"

इस प्रकार जगदीश्वर का ध्यान करते-करते तीव्र सर्प-विष से जर्जर हो मुगल वीर मुबारक ने प्राण-त्याग किया।

आठवाँ परिच्छेद

सब समान

रङ्गमहल में सभी समाचार आते हैं; सभी समाचार जेबुन्निसाँ को मिलते हैं। वह नायब बादशाह है। मुबारक के बध का समाचार भी आ पहुँचा।

जेबुन्निसाँ को आशा थी कि वह इस समाचार से बहुत खुश होगी, किन्तु एकाएक उसके ठीक विपरीत हुआ। समाचार पहुँचते ही उसकी आँखों में आँसू भर आये। गालों पर से आँसुओं की धारा बहने लगी। उसने देखा कि चिल्लाकर रोने की इच्छा हो रही है। जेबुन्निसाँ दर्वाजा बन्द कर हाथी-दाँत के रत्न-जटित पलङ्ग पर लेट कर रोने लगी।

क्यों शाहजादी ! हाथी-दाँत के बने, रत्नों से सुशोभित पलङ्ग पर लेटने पर भी तो आँखों के आँसू रुक नहीं रहे हैं। तुम अगर बाहर निकल कर दिल्ली शहर की टूटी-फूटी कुटियों में प्रवेश करती तो दिखाई देता कि कितने ही लोग फटी कथरी पर सोकर कितना हँस रहे हैं, तुम्हारी तरह कोई रो नहीं रहा है।

जेबुन्निसाँ को पहले कुछ समझ हुई कि उसने अपने सुख की हानि आप ही की है। धीरे-धीरे समझ में आया कि सब समान नहीं हैं—बादशाहजादियाँ भी प्रेम करती हैं—जान या अनजान में; नारी-शरीर धारण करने से ही इस पाप को हृदय में आश्रय देना पड़ता है। जेबुन्निसाँ ने आप ही अपने से पूछा—

"मैं उनसे इतना प्रेम करती थी, इस बात को अब तक क्यों न जान सकी ?" किसी ने उससे नहीं कहा कि तुम ऐश्वर्य के मद से अन्धी हो रही थीं; रूप के गर्व से तुम अन्धी हो रही थीं, इन्द्रियों की दासी होकर तुम प्रेम को पहचान न सकीं। तुम्हें उपयुक्त दण्ड मिला है—कोई तुम पर दया न करे।

जेबुन्निसाँ के मन में यह सब बातें आप ही आप उदय होने लगीं। साथ ही साथ यह भी मन में आया कि शायद यही धर्माधर्म है। यदि है, तो बड़े अधर्म का काम हो गया। अन्त में भय हुआ कि धर्माधर्म का पुरस्कार यदि दण्ड हो ? अगर उसके पाप का कोई दण्डदाता हो, तो क्या बादशाहजादी समझ कर वह जेबुन्निसाँ को क्षमा करेंगे ? सम्भव नहीं।

जेबुन्निसाँ के मन में भय हुआ।

दुःख, शोक और भय से जेबुन्निसाँ ने दर्वाजा खोलकर अपने विश्वासी खोजा असीरुद्दीन को बुलाया। उसके आने पर उसने पूछा—"साँप के जहर से मरनेवाले आदमी की दवा है ?"

असीरुद्दीन ने कहा—"मरने के बाद फिर दवा कहाँ ?"

जेबुन्निसाँ—तुमने कभी सुना नहीं ?

असीरुद्दीन—हातिममल ने ऐसे ही एक आदमी का इलाज किया था, कानों से सुना है, आँखों से देखा नहीं।

जेबुन्निसाँ ने एक गहरी साँस ली और कहा—हातिममल को पहचानते हो ?

असीरुद्दीन—पहचानता हूँ।

जेबुन्निसाँ—वह कहाँ रहता है ?

असीरुद्दीन—दिल्ली में ही रहता है।

जेबुन्निसाँ—मकान जानते हो ?

असीरुद्दीन—जानता हूँ।

जेबुन्निसाँ—इस समय वहाँ जा सकोगे ?

असीरुद्दीन—हुक्म होने से जाऊँगा।

जेबुन्निसाँ—आज मुबारक अली (जरा गला काँपा) सर्प के काटने से मर गये, जानते हो ?

असीरुद्दीन—जानता हूँ।

जेबुन्निसा—यह जानते हो कि उन्हें कहाँ कब्र दी गयी है?

असीरुद्दीन—उसे जानता हूँ। नई कब्र का पता लगा सकता हूँ।

जेबुन्निसा—मैं तुम्हें दो सौ अशर्फियाँ देती हूँ। एक सौ हातिममल को देना, एक सौ खुद लेना। मुबारक अली की कब्र खोदकर मुर्दा निकालकर इलाज करके उन्हें बचाओ; अगर जिये तो मेरे पास ले आओ, अभी जाओ।

अशर्फी लेकर खोजा असीरुद्दीन उसी समय चलता बना।

नवाँ परिच्छेद

समिधा-संग्रह—दरिया!

आज एक बार फिर रङ्गमहल में पत्थर के सामान बेच माणिकलाल निर्मलकुमारी की खबर ले आया। इस बार भी वही पत्थर का डिब्बा चाबी बन्द करके आया था। डिब्बा खोलने पर निर्मल को एक दूत कबूतर मिला। निर्मल ने उसे रख लिया। चिट्ठी में पहले की तरह समाचार भेज दिया। लिखा—"सब का मङ्गल है? अब तुम जाओ। मैंने पहले ही कहा है कि मैं बादशाह के साथ आऊँगी।"

माणिकलाल ने सब दूकानदारी उठाकर उदयपुर की यात्रा की। रात बीत रही है; सवेरा होने में कुछ ही विलम्ब है। दिल्ली में अनेक दर्वाजे हैं। कहीं कोई सन्देह न करे, इसलिये माणिकलाल अजमेरी दर्वाजे से न जाकर दूसरे दर्वाजे से चला। राह में एक छोटा-सा कब्रस्तान है। एक कब्र के पास दो आदमी खड़े हैं। माणिकलाल और उसके साथ के अन्य आदमियों को देख वे दोनों दौड़कर भागे। तब माणिकलाल ने घोड़े से उतर कर नजदीक जाकर देखा कि उन लोगों ने कब्र की मिट्टी हटाकर लाश बाहर निकाल ली है। माणिकलाल ने उस लाश को खूब ध्यान देकर, उदय होती हुई उषा की रोशनी में अच्छी तरह देखा।

इसके बाद, न जाने क्या समझकर वह उस लाश को अपने घोड़े पर लाद कर, एक कपडे से ढंक कर स्वयं पैदल चला।

माणिकलाल दिल्ली के दर्वाजे के बाहर निकल गया। कुछ समय बाद सूर्योदय हुआ तब माणिकलाल ने उस लाश को घोड़े से उतार कर जंगल की छाया में ले जाकर रखा और अपने पिटारे से दवा की एक टिकिया निकाल उसे कोई अनुपान देकर घोटा। इसके बाद छुरी से लाश को जगह-जगह चीर कर छेदों में उस दवा को भर दिया और जीभ तथा आँखों में कुछ-कुछ लगा दिया। दो घण्टे बाद उसने फिर ऐसा ही किया। इस तरह तीन बार औषध प्रयोग करने पर मरे आदमी को साँस आई। चार बार उसने आँख खोलकर देखा और धीरे-धीरे होश में आया। पांचवी बार वह उठकर बैठ गया और बातें करने लगा।

माणिकलाल ने कुछ दूध मँगवा लिया था। उसे उसने मुबारक को पिलाया। दूध पीने से धीरे-धीरे सबल होने पर उसे सब बातें याद आई। उसने माणिकलाल से पूछा—"मुझे किसने बचाया? आप कौन हैं?"

माणिकलाल ने सिर्फ कहा—"हाँ।"

मुबारक ने कहा—"क्यों बचाया? आपको मैं पहचान गया हूँ। आपके साथ मैंने रूपनगर के पहाड़ पर युद्ध किया था। आपने मुझे पराजित किया था।"

माणिक—मैंने भी आपको पहचाना है। आप ही ने महाराणा को पराजित किया था। आपकी यह हालत कैसे हुई?

मुबारक—अभी कहने लायक बात नहीं, समय पर सब कहूँगा। आप कहाँ जा रहे हैं उदयपुर?

माणिक—हाँ!

मुबारक—मुझे साथ ले चलेंगे? दिल्ली में मेरे लिये ठिकाना नहीं, शायद आप इसे समझते होंगे। मैं राज-दण्डित हूँ।

माणिक—मैं साथ ले जा सकता हूँ, किन्तु आप अभी बहुत कमजोर हैं।

मुबारक—सन्ध्या होते ताकत आ जायगी; तब तक आप ठहर सकेंगे?

माणिक—ठहरूँगा।

मुबारक को और कुछ दूध पिलाया गया। गांव से माणिकलाल एक टट्टू खरीद लाया। उसी पर मुबारक को कर उदयपुर की ओर चला।

राह में जाते जाते घोड़े को बगल में लाकर मुबारक ने जेबुन्निसा की सब बातें माणिकलाल से कहीं। माणिकलाल समझ गया कि जेबुन्निसा के कोपानल में मुबारक भस्म हुआ।

इधर अलीरुद्दीन ने लौटकर जेबुन्निसा को बतलाया कि वह किसी तरह बच न सका। जेबुन्निसाँ ने इत्र से बसा रूमाल आँख पर रखा और लोट-पोट कर खेतिहरों की औरतों की तरह माथा पीटने लगी।

जो दुःख किसी के आगे प्रकट नहीं किया जाता, उसको सहन करने में बड़ा कष्ट होता है। शाहजादी को भी असह्य दुःख हुआ। उसने सोचा—अगर मैं किसी खेतिहर के घर पैदा हुई होती!

इसी समय कमरे के दर्वाजे पर बड़ा शोर मचा। कोई कोठरी में आने के लिए जिद्द कर रही थी—पहरेदारिन उसे आने नहीं देती थी। जेबुन्निसा को दरिया की-सी आवाज सुनाई दी। पहरेदारिन उसे रोक न सकी। दरिया ने पहरेदारिन को ढकेल कर कोठरी में प्रवेश किया। उसके हाथ में तलवार थी जेबुन्निसाँ को काटने के लिए उसने तलवार उठायी। किन्तु एकाएक तलवार फेंक कर जेबुन्निसाँ के सामने नाचने लगी। कहा—बहुत अच्छा! आँखों में आँसू भर कर वह ऊँचे स्वर में हँसने लगी। जेबुन्निसाँ ने पहरेदारिन को बुलाकर उसे पकड़ लेने की आज्ञा दी। लेकिन पहरेदारिन उसे पकड़ न सकी। वह तेजी के साथ भागी। पहरेदारिन ने उसके पीछे दौड़ कर उसका कपड़ा पकड़ा। दरिया वस्त्र उतार कर नंगी भागी वह उस समय उन्माद में थी—मुबारक के मरने का समाचार उसने सुन लिया था।

———

राजसिंह

सातवाँ खण्ड

पहला परिच्छेद

आग जली

राजसिंह का राज्य ध्वंस करने के लिये औरङ्गजेब की यात्रा में जो विलम्ब हुआ, उसका कारण यह था कि उसने अधिक सेना के लिए उद्योग किया था। दुर्योधन और युधिष्ठिर की तरह उसने ब्रह्मपुत्र के पार से वाल्हीक तक और काश्मीर से केरल और पारस्य तक, जहाँ जितनी सेना थी, वह सभी महायुद्ध के लिए बुलाई। दक्षिण की महासेना, गोलकुण्डा, बीजापुर, महाराष्ट्र के समर में लगातार वज्रपात से दूसरे वृत्रासुर की तरह जिसकी पीठ वज्र दुर्भेद्य हो रही थी: उसे लेकर बादशाह के बड़े पुत्र शाह-आलम दक्षिण से उदयपुर को गारत करने के लिए आये! दूसरे पुत्र शाह-आजम बङ्गाल के राजप्रतिनिधि सूबेदार पूर्व भारतवर्ष की बहुत बड़ी सेना लेकर मेवाड़ की पर्वतमाला के द्वार पर आ उपस्थित हुए। पश्चिम मुलतान से, पञ्जाब, काबुल, काश्मीर के अजेय योद्धाओं को लेकर तीसरे पुत्र शाह-अकबर ने आकर, सैन्य सागर के अतल नीर में अपनी सैन्य को मिला दिया। उत्तर में स्वयं शाहंशाह ने दिल्ली से अपराजित बादशाही सेना लेकर उदयपुर का नाम पृथ्वी से मिटा देने के लिए मेवाड में दर्शन दिया। अनन्त मुगल-सैन्य-सागर के बीच उदयपुर शोभा पाने लगा।

अनल-सर्पों की श्रेणी घिरे हुए गरुड़ के जहाँ तक शत्रु से भीत होने की सम्भावना है, राजसिंह भी उस सागर-जैसी मुगल-सेना को देख उतने ही भीत हुए। नहीं कहा जा सकता कि भारतवर्ष में इस प्रकार का सैन्य-समावेश कुरुक्षेत्र के युद्ध के बाद हुआ था या नहीं। जितनी सेना कि चीन या रूस को जीतने के लिए भी आवश्यक न थी, उतनी बड़ी सेना बादशाह औरङ्गजेब ने छोटे से उदयपुर को जीतने के लिए राजपूताने में लाकर जमा कर दी थी; सिर्फ एक बार संसार में ऐसी घटना हुई थी। जिस समय फारस संसार में बड़ा राज्य था, उस समय उसके अधिपति जेरक्सिस (Xerxes) पचास लाख सिपाही लेकर ग्रीस नामक छोटे से भू-खण्ड को जीतने गये थे। थर्मोपली में Leonidies, सलामी में Themistocles और प्लाटिया में Pewsanias ने उसके गर्व

को खर्व कर उन्हें दूर भगा दिया था—स्यार-कुत्ते की तरह शेर भाग गये। ऐसी घटना इस पृथ्वी में इस बार दूसरी हुई थी कई लाख सेना लेकर—शेर से भी प्रतापशाली राजा—राजपूताने के एक छोटे-से भू-खण्ड को जीतने के लिए गये थे। राजसिंह ने उनका क्या किया!

युद्ध-विद्या, यूरोपीय विद्या है। एशिया-खण्ड के भारतवर्ष में इसका विकास किसी समय नहीं था। पुराणों और इतिहास में वर्णित आर्य वीरों की ख्याति सुनाई देती है, किन्तु उनका कौशल केवल तीरदाजी और लठैती में था। इतिहास लेखक ब्राह्मण लोग नहीं जानते थे कि युद्ध-विद्या क्या है। चाहे इस कारण, या प्राचीन भारत में युद्ध-विद्या न होने के कारण, रामचन्द्र, अर्जुनादि के सेनापतित्व का कोई परिचय नहीं मिलता। अशोक, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य शिलादित्य आदि किसी के भी सेनापतित्व का परिचय नहीं मिलता जिन्होंने भारतवर्ष को जीता था। मुहम्मद बिन कासिम, गजनवी, शहाबुद्दीन, अलाउद्दीन, बाबर, तैमूर, नादिरशाह—किसी के भी सेनापतित्व का कोई परिचय नहीं मिलता। शायद मुसलमान लेखकगण भी इसे न समझते थे। अकबर के समय से ही ऐसे ही सेनापतित्व का कुछ-कुछ परिचय मिलता है। अकबर, शिवाजी, अहमदशाह अब्दाली, हैदरअली, हरीसिंह आदि में सेनापतित्व और रण-पाण्डित्य के लक्षण दिखाई दिये हैं। भारतवर्ष के इतिहास में जितने रणपण्डितों की बातें हैं, उनमें राजसिंह किसी से कम नहीं थे। यूरोप में भी ऐसे रणपण्डित बहुत कम पैदा हुए। थोड़ी-सी सेना की सहायता से ऐसा महान कार्य वीर वीलियम के बाद संसार में और किसी ने नहीं किया।

यहाँ ऐसे अपूर्व सेनापतित्व का परिचय देने को स्थान नहीं संक्षेप में कहा जायगा। भागों में विभक्त औरङ्गजेब की बहुत बड़ी सेना के आने पर रणपण्डित को जो करना चाहिये, उसे राजसिंह ने पहले ही किया। पर्वतमाला के बाहर राज्य का जो समतल भाग है, उसे छोड़ पर्वत के ऊपर चढ़कर वहाँ उन्होंने अपनी सेना स्थापित की। उन्होंने अपनी सेना को तीन भागों में विभक्त कर एक हिस्से को अपने बड़े पुत्र जयसिंह के अधीन पर्वत के शिखर पर स्थापित किया। दूसरे हिस्से को द्वितीय पुत्र भीमसिंह के अधीन पश्चिम में स्थापित

किया। मतलब यह था कि उधर की राह खुली रहे और अन्यान्य राजपूतगण उस राह से प्रवेश कर सहायता कर सकें। स्वयं तीसरा हिस्सा लेकर पूर्व की ओर नयन नामक पहाड़ी पर जम कर बैठ गये।

आज़मशाह सैन्य लेकर जिधर पहुँचे, उधर पर्वतमाला से उनकी राह रोकी गई। चढ़ने की हिम्मत नहीं, क्योंकि ऊपर से गोलों और शिलाओं की वृष्टि होती थी। मकान का दर्वाजा बन्द रहने पर जैसे कुत्ता दर्वाजे पर ठेला-ठेली करता है, वैसे ही दशा उनकी भी थी।

अजमेर में औरङ्गजेब के साथ अकबर का मेल हुआ। पिता और पुत्र अपनी सेनाएँ मिलाकर पर्वत माला के पास जहाँ तीन रास्ते थे, आये, यह तीनों रास्ते सङ्कुचित थे। एक का नाम दोबारी, दूसरे का कादैलबरा था और तीसरा पहले कहा गया नयन था। दोबारी में पहुँचने पर औरङ्गजेब ने अकबर को उसी राह से पचास हजार सैन्य लेकर आगे-आगे चलने की आज्ञा दी। उसने स्वयं उदयपुर-सागर के नाम से विख्यात सरोवर के किनारे छावनी डाल कुछ आराम करने की इच्छा की।

शाहजादा अकबर पहाड़ी राह से उदयपुर में प्रवेश करने को बढ़ा; किसी आदमी ने उसे रोका नहीं। उसने राजप्रसाद-माला, उपवन श्रेणी, सरोवर और उसके बीच के उपद्वीपों को देखा, किन्तु उसे कहीं भी आदमी दिखाई नहीं दिये। सब तरफ सन्नाटा था। तब अकबर ने छावनी डाल दी; अपने मन में समझा कि उसकी फौज के डर से देश के सब लोग भाग गये। मुगल-छावनी में आमोद-प्रमोद होने लगा। कोई भोजन में, कोई खेल में और कोई नमाज में लग गया। इसी समय जैसे सोये मुसाफिर पर बाघ आक्रमण करता है, वैसे ही कुमार जयसिंह शाहजादा अकबर पर टूट पड़े। इस बाघ ने सभी मुगलों को दाँतों में भर लिया—कोई न बचा। पचास हजार मुगलों में थोड़े-से लौटे। शाहजादा गुजरात की ओर भागा।

मुअज्ज़मशाह, जिसका दूसरा नाम शाह-आलम था, दक्षिण से सेना लेकर अहमदाबाद का चक्कर काटते पर्वत माला के पश्चिम प्रान्त में आ उपस्थित हुआ। इस राह में गणराव नामक पहाड़ी राह है। उसने उसी राह से उत्तर

काँकरोली के समीपवर्ती सरोवर और राजप्रसाद-माला के पास पहुँच कर देखा कि अब आगे रास्ता नहीं है—रास्ता बनाकर भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। ऐसा करने से राजपूत लोग पीछे से रास्ता बन्द कर देंगे; तब रसद ले आने की भी कोई राह न मिलेगी सब बिना खाये मर जायेंगे। जो यथार्थ सेनापति हैं, वे जानते हैं कि हाथ से मारने से युद्ध में जीत नहीं होती—पेट की मार मारना चाहिये। जो लोग यथार्थ सेनापति हैं, वे जानते हैं कि कैसे हमला करना चाहिये। सिख लोग आज भी रो कर कहते हैं कि यवन सेनापतियों ने रसद बन्द कर दी, जिससे सिखों की हार हुई। सर वार्टले फ्रिअर ने एक दिन कहा था कि यह समझ कर घृणा न करना कि बङ्गाली युद्ध करना नहीं जानते—शाह-आलम युद्ध करना जानते थे, इसलिए आगे बढ़े।

राजसिंह के सेना-संस्थापन के गुण से बङ्गाल और दाक्षिणात्य की सेनायें बरसात में बन्दरों के दल की तरह केवल खड़ी होकर बैठी रह गईं। सुलतान की सेना छिन्न-भिन्न होकर आँधी के आगे धूल की तरह न जाने कहाँ उड़ गई। बाकी रहे खुद बादशाह, आलमगीर।

दूसरा परिच्छेद

नवन-वन्हि भी शायद जली थी

शाहजादा अकबर को आगे भेजकर बादशाह ने स्वयं उदयसागर के किनारे छावनी डाल दी थी। पाश्चात्य परिव्राजक ने मुगलों की दिल्ली देखकर कहा था, दिल्ली एक बहुत बड़ी छावनी-मात्र है। दूसरे प्रकार से यह कहा जा सकता है कि मुगल बादशाहों की एक छावनी दिल्ली नगरी है। जैसा नगर का चौक है वैसा ही बड़ा और चौक बनाकर तम्बू गाड़े जाते थे। ऐसे असंख्य तम्बुओं की श्रेणी में कपड़ों की बनी एक महानगरी की सृष्टि होती थी। सबके बीच में बादशाह के तम्बू का चौक था। जैसे दिल्ली में बड़े बड़े महलों की श्रेणियों में बादशाह निवास करते थे वैसे ही बड़े-बड़े तम्बुओं की श्रेणी में यहाँ भी निवास करते थे। वैसे ही दरबार, आम-खास गुसलखाना और रंगमहल था। सब मगर बादशाह के तम्बू केवल वस्त्रों के ही बने नहीं थे, इसमें लोहे और पीतल की

भी सजावट थी और दो मञ्जिले-तिमञ्जिले कमरे भी रहते थे। सामने दिल्ली के दुर्ग के फाटक-जैसा फाटक था। बादशाही तम्बुओं की कपड़े की दीवार या पट, आध कोस की लम्बाई के कारचोबी के काम किये वस्त्रों से बने थे। जैसे किले की दीवार रक्षित होती थी, कमरों के बाहर गहरे लाल रंग के कपड़े की शोभा, भीतर सब दीवारों में तस्वीरें टँगी होती थीं। आजकल हम लोग जिसे चित्र कहते हैं, वही—अर्थात् शीशे के पीछे बड़ी तस्वीर। दर्बार के तम्बू के सिरे पर सोने से मढ़ा चँदवा था, नीचे विभिन्न रंग के गलीचे रत्न जटित सिंहासन। चारों ओर अस्त्रधारिणी तातार-सुन्दरियों का पहरा होता था।

राज-प्रसादावली के बाद अमीर-उमराओं के पट-मण्डपों की शोभा थी। यह शोभा कई कोस तक थी। किसी पट-मंडप का महल लाल, किसी का पीला, किसी का सफेद, किसी का हरा, किसी का नीला था। उनके सोने के कलश चन्द्र और सूर्य्य की किरणों में चमकते थे। इन सबके चारों ओर दिल्ली चौक की तरह विभिन्न बाजार थे—बाजार पर बाजार। एकाएक बादशाह के आगमन ने उदयसागर के किनारे इस रमणीय महानगरी की सृष्टि देख लोग विस्मय में आये।

जब बादशाह छावनी में आते, अन्तःपुरवासिनी सभी बेगमें आती थीं। 'जोधपुरी', 'उदयपुरी', जेबुन्निसाँ-आदि के साथ निर्मलकुमारी भी आई थीं। दिल्ली के राजमहल में जैसे इनके अलग-अलग मन्दिर थे छावनी के रंगमहल में भी वैसे ही इनके पृथक्-पृथक् मन्दिर थे।

इस सुन्दर छावनी में औरंगजेब रात के समय जोधपुरी के महल में आ बात-चीत कर रहे थे। निर्मलकुमारी भी वहाँ बैठी थी।

"इमली बेगम" नाम से बादशाह ने निर्मल को बुलाया। इससे पहले वह निर्मल को "निर्मली बेगम" कहते थे; किन्तु अब इमली बेगम कहना आरम्भ किया है। बादशाह ने निर्मल से कहा—"इमली बेगम! तुम मेरी हो या राजपूतों की?" निर्मल ने हाथ जोड़ कर कहा—"दुनिया के बादशाह दुनिया का विचार करते हैं; इस बात का विचार भी वही करें।"

औरङ्गजेब—मेरे विचार में तो यह आता है कि तुम राजपूत की कन्या

हो, राजपूत तुम्हारा पति है; तुम राजपूत महारानी की सखी हो—तुम राजपूत की ही हो।

निर्मल जहाँपनाह! क्या यह विचार ठीक हुआ? मैं राजपूत की कन्या हूँ सही, किन्तु बेगम जोधपुरी भी वही है; आपकी दादी और पर दादी भी वही थीं—क्या वे मुगल बादशाहों की हितकारिणी नहीं थीं?

औरङ्गजेब—यह सब मुगल बादशाह की बेगमें हैं, तुम राजपूत की स्त्री हो।

निर्मल—(हँसकर)—मैं आलमगीर बादशाह की इमली बेगम हूँ।

औरंगजेब—तुम रूपनगरी की सखी हो।

निर्मल—जोधपुरी की भी वही हूँ।

औरङ्गजेब—तब तुम मेरी हो!

निर्मल—आप जैसा विचार करें।

औरंगजेब—मैं तुम्हें एक काम में नियुक्त करना चाहता हूँ। इसमें मेरा उपकार है और राजसिंह का अनिष्ट है। तुम्हें ऐसे काम में नियुक्त करना चाहता हूँ जिसे तुम ही कर सकोगी।

निर्मल—किस काम में, इसे बिना जाने मैं कुछ कह नहीं सकती। मैं देवता और ब्राह्मण का अनिष्ट न कर सकूँगी।

औरङ्गजेब—मैं तुम्हें यह सब कुछ करने को न कहूँगा। मैं उदय नगर पर दखल जमाऊँगा। राजसिंह की राजपुरी पर दखल करूँगा, इस बारे में मुझे कोई सन्देह नहीं, किन्तु राजपुरी पर दखल पाने पर इसमें सन्देह है कि रूपनगरी को हस्तगत कर सकूँगा या नहीं। तुम इस विषय में मेरी सहायता करोगी?

निर्मल—मैं आपके सामने गंगाजी और जमुनाजी की शपथ करती हूँ कि आप यदि उदयपुर के राजमहल पर दखल करेंगे तो मैं चंचलकुमारी को लाकर आपको समर्पण करूँगी।

औरङ्गजेब—मैं इस बात पर विश्वास करता हूँ, क्योंकि तुम निश्चय जानती हो कि जो मुझसे विश्वासघात करे उसे मैं टुकड़े टुकड़े कर कुत्तों को खिलवा सकता हूँ।

निर्मल—आप क्या नहीं कर सकते इस विषय में विचार हो गया है, फिर मैं शपथ करके कह रही हूँ कि आपको धोखा न होगा। मुझे इतना ही सन्देह

है कि नगर पर आपका पूरा अधिकार होने पर मैं उन्हें जीवित पा सकूँगी या नहीं; राजपूत महारानियों की यह रीति है कि शत्रु के हाथ पकडे जाने से पहले वे चिता में जल मरती हैं। उनको जीवित न पा सकने के कारण ही यह बात स्वीकार करती हैं—नहीं तो मेरे द्वारा चंचलकुमारी का कोई अनिष्ट न होगा।

औरंगजेब—इस में अनिष्ट काहे का, वह तो बादशाह की बेगम होंगी।

निर्मल जवाब देना ही चाहती थी, इसी समय खोजा ने आकर निवेदन किया, "पेशकार दर्बार में हाजिर है, जरूरी अर्जी पेश करेगा। शाहजादा अकबर का समाचार आया है।"

औरङ्गजेब बहुत ही घबराहट के साथ दर्बार में गये। पेशकार ने अर्जी पेश की औरंगजेब ने सुना कि अकबर की पचास हजार मुगल सेना छिन्न-भिन्न होकर प्रायः मारी गयी! कोई नहीं जानता कि मरने से जो बचे हैं वे किधर भाग गये।

औरंगजेब ने उसी समय छावनी भंग करने की आज्ञा दी।

शाहजादा अकबर का समाचार रंगमहल में भी पहुँचा। सुनकर निर्मलकुमारी ने पेशवाज पहन, दर्वाजे बन्द कर, जोधपुरी बेगम के सामने रूपनगरी नाच का समा बांध दिया।

पेशवाज उतार साधारण कपड़ा पहन कर बैठने पर औरंगजेब ने निर्मलकुमारी को बुलाया। निर्मल के हाजिर होने पर बादशाह ने कहा—"हम लोग तम्बू उखाड़ रहे हैं—लड़ाई पर जायेंगे। क्या अब तुम उदयपुर जाना चाहती हो।"

निर्मल—"नहीं, अभी मैं फौज के साथ ही रहूँगी। जहाँ मौका देखूँगी वहां चली जाऊँगी।"

औरङ्गजेब ने कुछ दुःखी होकर कहा—क्यों जाओगी?

निर्मल—"शाहंशाह के हुक्म से।"

औरङ्गजेब ने प्रसन्न होकर कहा—"अगर मैं जाने न दूँगा; तो क्या तुम हमेशा के लिये मेरे रंगमहल में रहने को राजी होगी?"

निर्मलकुमारी ने हाथ जोड़कर कहा—"मेरे पति हैं।"

औरङ्गजेब ने थोड़ा इधर-उधर कर कहा—"अगर तुम इस्लाम-धर्म ग्रहण करो, अगर उस पति को त्याग दो तो उदयपुरी से बढ़ कर गौरव के साथ तुम्हें रक्खूँगा।"

निर्मल ने कुछ हंस कर, फिर भी आदर के साथ कहा—"यह न होगा, जहाँपनाह!"

औरङ्गजेब—क्यों न होगा? कितनी ही राजपूत कन्यायें तो मुगलों के घर आयी हैं।

निर्मल—उनमें कोई पति को छोड़कर नहीं आई है।

औरङ्गजेब—अगर तुम्हारा पति न होता तो तुम आतीं?

निर्मल—ऐसा क्यों कहते हैं?

औरंगजेब—यह कहते भी लजा लगती है। मैंने ऐसी बात कभी किसी को नहीं कही। मैं बूढा हो चला, लेकिन मैंने कभी किसी से प्रेम नहीं किया। इस जन्म में केवल तुमसे ही प्रेम किया है। इसलिये अगर तुम कहती कि पति के न होने से तुम मेरी बेगम होती यह स्नेह शून्य-हृदय—जले पहाड़ जैसा हृदय—कुछ ठण्डा होता!

निर्मल ने औरङ्गजेब की बात का विश्वास किया, क्योंकि औरङ्गजेब के गले की आवाज विश्वास के योग्य जान पड़ी; निर्मल ने औरंगजेब के लिए कुछ दुःखी हो कर कहा—"जहाँपनाह! इस बाँदी ने ऐसा कौन-सा काम किया है, जिससे आपके प्रेम के योग्य हुई?"

औरंगजेब—यह मैं कह नहीं सकता। तुम सुन्दरी हो सही; किन्तु अब मेरी उम्र, सौन्दर्य पर मुग्ध होने की नहीं। फिर भी तुम सुन्दरी होने पर भी उदयपुरी के बराबर नहीं। शायद मुझे तुम्हारे अलावा औरों से मना बात कभी सुनाई नहीं दी, तुम्हारी बुद्धि, चतुरता और हिम्मत देखकर मैं तुम्हें अपनी उपयुक्त रानी समझ बैठा हूँ। जो हो, आलमगीर बादशाह सिवा तुम्हारे और कभी किसी के वशीभूत नहीं हुआ और कभी किसी की आँखों के कटाक्ष से मोहित नहीं हुआ।

निर्मल—शाहंशाह! मुझसे एक बार रूपनगर की राज-कन्या ने पूछा था कि किस से विवाह करना चाहती हो, तब मैंने कहा कि आलमगीर बादशाह से। उन्होंने पूछा कि क्यों, तो मैंने उन्हें समझाया कि मैंने बचपन में बाघ पाला था बाघ को वश में रखने में ही मुझे आनन्द आता था। बादशाह को

वश में करने से मुझे वही आनन्द मिलेगा। मेरे अभाग्यवश अविवाहित अवस्था में आप से मेरी मुलाकात नहीं हुई। मैंने जिस दीन-दरिद्र को पति के रूप में वरण किया है, अब मैं उसी में सुखी हूँ। अब मुझे विदा कर दीजिये।

औरङ्गजेब ने दुःखी होकर कहा—"दुनिया के बादशाह होने पर भी कोई सुखी नहीं होता! किसी का शौक मिटता नहीं, इस पृथ्वी में केवल मैंने तुमसे प्रेम किया; किन्तु तुम्हें पाया नहीं! तुमसे प्रेम किया है, इसलिए तुम्हें रोकूँगा नहीं छोड़ दूँगा। मैं वही करूँगा, जिससे तुम सुखी हो। वह न करूँगा जिससे दु:खी हो। तुम जाओ। मुझे याद रखना। अगर कभी मुझसे तुम्हारा उपकार हो सके, तो मुझे खबर देना। मैं वैसा ही करूँगा।"

निर्मल ने सलाम किया। कहा—"मेरी केवल एक ही भिक्षा है। जब दोनों पक्ष के मङ्गल के लिए सन्धि के लिए मैं अनुरोध करूँ, तब मेरी बात पर ध्यान दीजियेगा।"

औरङ्गजेब ने कहा—"इस बात का विचार उसी समय होगा।"

तब निर्मल ने औरङ्गजेब को अपना कबूतर दिखाया। कहा—"इस शिक्षित कबूतर को आप रखें। जब इस दासी को आप याद करें, इस कबूतर को उड़ा दीजियेगा। इसके द्वारा अपना निवेदन मैं आपसे प्रकट करूँगी, अभी मैं सैन्य के साथ ही हूँ। जब मेरी बिदाई का समय होगा तब यह आज्ञा दे रखिये कि बेगम साहबा मुझे बिदाई देंगी।"

तब औरङ्गजेब सैन्य परिचालन की व्यवस्था में लगे।

किन्तु उनके मन में बहुत ही विषाद उपस्थित हुआ। निर्मल जैसी बात-चीत से साहसी, वाक्-पटु और स्पष्ट बोलनेवाली मुगल बादशाह ने और कभी नहीं देखी। यदि कोई राजा, शिवाजी या राजसिंह; यदि कोई सेनापति दिल्ली का, कहीं का; यदि कोई शाहजादा साहस के साथ ऐसा स्पष्ट वचन बोलता तो औरङ्गजेब उसे न सहते। किन्तु रूपवती युवती, सहायहीना निर्मल में यह गुण उन्हें मीठे लगे। बूढ़े के ऊपर जहाँ तक कामदेव का अत्याचार हो सकता है, शायद वही हुआ था। इसलिये वह प्रेमान्ध की तरह विच्छेद के शोक से शोकाकुल न होकर, सिर्फ कुछ दु:खी हुए। औरङ्गजेब अग्नि-वर्ण नहीं थे, किन्तु मनुष्य कभी-कभी पत्थर भी नहीं होता।

तीसरा परिच्छेद

बादशाह वह्नि-चक्र में

सवेरे बादशाही सेना ने कूच करना आरम्भ किया। सबसे पहले रास्ता साफ करनेवाली सैन्य राह की सफाई के लिए सशस्त्र हो चली। उसके साथ कुदाल, फरसा, दाब और कटार थे। वह सब सामने के पेड़ों को काट कर गड्ढे को भर मिट्टी को दबा कर सेना के लिए चौड़ी राह बनाते हुए आगे आगे चले। इसी चौड़ी सड़क से तोपों की कतार गाड़ियों पर लदकर हड़हड़ाती हुई चलीं। साथ में गोलन्दाज सेना थी। असंख्य गोलन्दाजों की गाड़ियों के घड़घड़ाहट से कान बहरे हो गये—उनकी हजारों पहियों से घूम-घूमकर उड़ती हुई धूलि की तह से आँखें अन्धी हो गईं। कालान्तक यम के समान मुँह बाये तोपों के आकार देख हृदय काँप उठा। इस गोलन्दाज सेना के पीछे राज-कोषागार था। बादशाही कोषागार साथ ही साथ चलता था। दिल्ली में किसी पर भी विश्वास कर औरङ्गजेब धनराशि को छोड़ न जाते थे। औरङ्गजेब के साम्राज्य-शासन में मूल मन्त्र था सब पर अविश्वास। यह भी याद रखना चाहिये कि इस बार दिल्ली में यात्रा कर औरङ्गजेब फिर कभी दिल्ली नहीं लौटे। शताब्दी के एक चरण तक छावनी ही में घूमते दक्षिण में उन्होंने प्राण त्याग किये।

अनन्त धन के ढेरों से परिपूर्ण हाथियों पर राजकोष और बादशाही दफ्तरखाना चला। ढेर की ढेर गाड़ी, हाथी और उसके ऊपर लदे हुए खाते-बहियाँ चलीं, कतार पर कतार, श्रेणी पर श्रेणी थी। असंख्य अनन्त गङ्गाजल ढोनेवालों की श्रेणी थी। गङ्गाजल जैसा स्वादिष्ट और किसी नदी का पानी नहीं, इसलिए बादशाहों के साथ अधिक से अधिक गङ्गाजल चलता था। जल के बाद भोजन, आटा, घी, चावल, मसाला, चीनी, तरह-तरह के पक्षी और चौपाये, तैयार, बे-तैयार, पक्के, कच्चे, भोजन चले। इसके साथ हजारों बावर्ची चले। इसके बाद तोषाखाना किमखाब की पोशाकें, जवाहरातों के छकड़े, इसके बाद असंख्य घुड़सवार सेना थी।

इस तरह सैन्य का प्रथम भाग गया। द्वितीय में खुद बादशाह थे। आगे आगे असंख्य ऊँटों की श्रेणी पर जलती हुई आग पर बड़े बड़े कड़ाहों में धूना, गुग्गुल, चन्दन, कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्य थे। सुगन्ध से कोसों तक पृथ्वी और आकाश आमोदित था; इसके बाद बादशाही खास, अरबी सेना निर्दोष सुन्दर घोड़ों पर आरूढ होकर चली। बीच में स्वयं बादशाह मणि-

रत्न और किंकिणी-जाल की शोभा से शोभित इन्द्र के उच्चैःश्रवा घोड़े पर आरूढ थे। उनके सिर पर विख्यात श्वेत छत्र था, इसके बाद सिपाहियों का दल, दिल्ली का दल, बादशाही दल औरंगजेब की महल-निवासिनी सुन्दरियों का सम्प्रदाय था, । कोई ऐरावत जैसे हाथी की पीठ पर, सुवर्ण निर्मित कार्य्य, विशिष्ट मखमल के ओहार; मोतियों की झालर से विभूषित बहुत ही सूक्ष्म मकडी के जाल जैसे रेशमी ओहारदार हौदे के भीतर बहुत हल्की बदली से घिरे पूर्ण चन्द्र के समान झलकती; रत्नों की माला से जटित काली नागिन जैसी वेणी पीठ पर झूल रही थी काली पुतली-सी बड़ी-बडी आँखें कालाग्नि की तरह भूक रही थीं; ऊपर काले भ्रू युगल, नीचे सुरमे की रेखा, उसके बीच बिजली के समान चमकदार कटाक्षों से समस्त सैन्य विश्रृङ्खलित हो रही थी; मधुर पानों की लाली से लाल अधर वाली सुन्दरियाँ मधुर-मधुर मुस्करा रही थीं। इसी तरह एक नहीं, दो भी नहीं, हाथी के बगल में हाथी, हाथी के पीछे हाथी, इसके बाद भी हाथी थे। सबके ऊपर वैसे ही हौदे, हौदे के भीतर वैसी ही सुन्दरियाँ सब सुन्दरियों के नयनों में ही दो बादलों के बीच बिजली के खेल थे। काली पृथ्वी डगमग हो उठी। कोई-कोई पालकी में चली—पालकी के बाहर किमखाब, भीतर जरदोजी का कामदार मखमल ऊपर मोतियों की झालर, चांदी के डण्डे, सोने के मगरमुँहा—उसके भीतर रत्न-मण्डिता सुन्दरियाँ। जोधपुरी और निर्मलकुमारी, उदयपुरी और जेबुन्निसा ये सब अपने-अपने हाथियों की पीठ पर थीं उदयपुरी हास्यमयी, जोधपुरी अप्रसन्ना। निर्मलकुमारी रहस्यमयी। जेबुन्निसा ग्रीष्मकाल में उखड़ी हुई लता की तरह छिन्न-विछिन्न, सूखी मुर्झाई हुई-सी। जेबुन्निसा सोच रही थी—"क्या इस समय मेरे अब मरने का कोई उपाय नहीं ?'

इस मनमोहिनी वाहिनी के पीछे कुटुम्बिनी और दासियाँ थीं। सभी घोड़े पर सवार लम्बी-वेणी, लाल होठोंवाली और बिजली-सी कटाक्षवालियाँ थीं। अलङ्कारों की झुनझुनाहट से घोड़े नाच उठते थे। यह अश्वारोहिणी वाहिनी भी बहुत ही लोकमोहिनी थी। इनके पीछे फिर गोलन्दाज सेना थी, किन्तु इनकी तोपें अपेक्षाकृत छोटी थीं। शायद बादशाह ने यही ख्याल किया था कि कामिनी के कमनीय कटाक्ष के आगे बड़ी तोपों की जरूरत नहीं।

तृतीय भाग में पैदल सैन्य थी। इसके पीछे दास-दासी, मजदूर, चाकर नाचनेवाली आदि मामूली लोग खाली घोड़े, तम्बुओं के ढेर और बोझ ढोनेवाले थे।

जब वनगर्जनवत् ग्राम प्रदेश को बहाती हुई; मगर घड़ियाल और भँवर आदि से भयङ्कर वर्षा से उमड़ी हुई नदी, छोटे से बालू के मैदान को डुबाती हुई बही जाती है, जैसे ही महा कोलाहल और महावेग से यह परिमाण-रहिता विस्मयकारिणी मुगल-वाहिनी राज्य को डुबाने चली।

किन्तु एकाएक बाधा उपस्थित हुई। जिस राह से अकबर ससैन्य ले गये थे, औरंगजेब भी उसी राह से सैन्य ले जा रहे थे। उनका मतलब यह था कि अकबर के सैन्य के साथ अपनी सैन्य मिला दें। बीच में यदि कुमार जयसिंह की सैन्य को पायें, तो उसे बीच में दबाकर मार डालें बाद में दोनों उदयपुर में घुसकर राज्य को ध्वंस करें। किन्तु पहाड़ी राह में चढने से पहले उन्होंने विस्मय के साथ देखा कि राजसिंह ऊपर पहाड़ की उपत्यका में उनकी राह के किनारे सैन्य लिए बैठे हैं। राजसिंह नयन नामक पहाड़ की सँकरी राह में पहाड़ी रास्ते को रोके हुए थे; किन्तु बहुत जल्द खबर पहुँचानेवाले दूतों के मुँह से अकबर का समाचार सुन रण-पाण्डित्य की अद्भुत् प्रतिभा का विकास करते हुए, मास के भूखे बाज की तरह तेजी के साथ सेना-सहित पूर्व परिचित पहाड़ी पथ को पार कर उस पहाड़ के निचले प्रदेश में सैन्य के साथ जा बैठे थे।

मुगलों ने देखा कि राजसिंह के इस अद्भुत् रण-पाण्डित्य से उन लोगों का सर्वनाश निश्चित है, क्योंकि मुगल सैन्य जिस राह से जा रही थी, उस राह से चलने पर राजसिंह को बगल में छोड़कर जाना पड़ता था। शत्रु सैन्य को बगल में रखकर आगे बढने से बढकर और कौन विपद् है? जो बगल से आक्रमण करता है, उसे रण से विमुख नहीं किया जा सकता, बल्कि वही विजयी होकर विपक्ष को छिन्न-भिन्न कर डालता है। शलामिङ्का और ओम्स्टरलीज में ऐसा ही हुआ था। औरंगजेब भी इस स्वतः सिद्ध रणतत्त्व को जानते थे। वह यह भी जानते थे कि बगल में बैठी शत्रु की सेना से युद्ध किया जा सकता है सही, किन्तु ऐसा करने में अपनी सेना को लौटाकर शत्रु के सामने लाना पड़ता है। उस पहाड़ी राह में इतनी बड़ी सेना के घुमाने फिराने का स्थान नहीं और समय भी नहीं था, क्योंकि सेना का मुँह घुमाते घुमाते राजसिंह पहाड़ से उतर कर, उनकी सेना को दो खण्डों में विभक्त कर एक-एक खण्ड को अलग-अलग विनष्ट कर सकते हैं। ऐसे युद्ध में साहस करना भूल है। इसके बाद यह भी हो सकता है कि राजसिंह युद्ध न भी करें। वे औरंगजेब को निर्विघ्न भी जाने

दे सकते हैं। इसमें और भी खराबी है। ऐसा होने से औरङ्गजेब के आगे बढ़ जाने पर राजसिंह पर्वत से उतर कर उसका पीछा कर सकते हैं। ऐसा होने से यह तो छोटी-सी बात है कि वह मुगलों के पीछे चलनेवाले माल-असबाब को लूट कर सेना को ध्वंस कर सकते हैं। असल बात तो यह है कि रसद की राह बन्द हो जायगी। सामने कुमार जयसिंह की सेना है। जयसिंह की और राजसिंह की सेना के बीच में पड़कर फन्दे में फँसे चूहे की तरह, दिल्ली के बादशाह ससैन्य मारे जायँगे।

दिल्लीश्वर की हालत जाल में फँसी रोहू-मछली जैसी थी, किसी तरह छुटकारा नहीं। वह पलट सकते हैं, किन्तु ऐसी हालत में राजसिंह उनका पीछा करेंगे। वह उदयपुर के राज्य को अथाह पानी में डुबाने आये थे वह बात तो दूर रही, अब उदयपुर के राजा उनके पीछे ताली बजाते चलेंगे—संसार हँसेगा। मुगल बादशाह के असामान्य सम्मान में इससे बढ़कर बट्टा और क्या लग सकता है! औरङ्गजेब ने सोचा कि सिंह होकर चूहे के डर से भागें! किसी तरह भी वह भागने का विचार अपने मन में ला न सके।

अब क्या हो सकता है! एक मात्र भरोसा इसका ही है कि शायद उदयपुर में जाने की कोई दूसरी राह मिले; औरङ्गजेब की आज्ञा से राह खोज निकालने के लिए सवार छूटे। औरङ्गजेब ने निर्मलकुमारी से भी पुछवाया। निर्मलकुमारी ने कहला दिया कि हम पर्दानशीन औरतें राह का हाल क्या जानें। किन्तु थोड़ी ही देर में समाचार मिला कि उदयपुर जाने की एक और राह है। एक मुगल सौदागर से मुलाकात हुई है, वह रास्ता बतायेगा। एक मनसबदार उस राह को देख भी आया है। वह एक पहाड़ी गुप्त गलियारा है; बहुत ही सँकरी राह है। किन्तु रास्ता सीधा है; शीघ्र ही पहुँचा जा सकता है। उधर कोई राजपूत भी दिखाई नहीं देता। जिस मुगल ने समाचार दिया है, उसका कहना है कि उधर कोई राजपूत सेना नहीं है।

औरङ्गजेब ने विचार करने के बाद कहा—"नहीं है, किन्तु छिप कर तो रह सकते हैं।"

जो मनसबदार रास्ता देख आया था, उसका नाम बख्तखाँ है। उसने कहा—"जिस मुगल ने मुझे पहले-पहल रास्ता दिखाया, उसे मैंने पहाड़ के ऊपर भेज दिया है। अगर उसे राजपूत सेना दिखाई देगी, तो वह मुझे इशारा देगा।"

औरङ्गजेब ने पूछा—"क्या वह हमारा सिपाही है?"

बख्तखाँ—"नहीं, वह एक सौदागर है। उदयपुर शाल बेचने गया था। वहाँ से छावनी में बेचने आया था।"

औरङ्गजेब—"अच्छा, तब उसी राह से फौज जाने दो।"

तब बादशाही हुक्म से फौज लौटी। क्योंकि कुछ पीछे हटने पर ही उस गुफा के गलियारे में प्रवेश किया जा सकता है। इसमें भी खराबी है लेकिन जाल में फँसी बड़ी रोहू किधर जाय? जिस परम्परा के साथ मुगल-सेना आई थी, वह अब कायम न रह सकी। जो भाग आगे था, वह पीछे पड़ गया; जो पीछे था, वह आगे चला। सेना का तीसरा भाग आगे-आगे चला। बादशाह ने हुक्म दिया कि तम्बू और असबाब तथा फालतू लोग अब उदय-सागर की ओर जायँ—वह सेना के पीछे जायँगे। ऐसा ही हुआ, स्वयं औरङ्गजेब पैदल सैन्य और छोटी तोपों के साथ गोलन्दाजों को लिए हुए गुफा की राह में चले। आगे-आगे बख्तखाँ चला।

यह देख राजसिंह हिरन की तरह छलाँग मार, पर्वत से उतर मुगल सेना पर टूट पड़े। उसी समय मुगल सेना दो टुकड़े हो गई; मानो छुरी की धार से फूलों की माला कट गई। फौज का एक हिस्सा औरङ्गजेब के साथ गुफा में घुसा, दूसरा हिस्सा पहले रास्ते में रह गया—राजसिंह सामने थे।

मुगल-सेना के लिए सबसे बड़ी परेशानी इस बात की थी कि जहाँ हाथी, घोड़े पालकी पर वारांगनाएँ थीं, ठीक वहीं वारांगनाओं के सामने राजसिंह सेना के साथ जा पहुँचे। यह देख, जैसे चील्ह के झपट्टे से गौरा चिड़ियाँ किलकिला उठती हैं, वैसे ही ससैन्य गरुड़ को देख कानी नागिनों का दल चीख उठा। यहाँ नाममात्र को भी युद्ध नहीं हुआ। जो फौज बेगमों की रक्षा में नियुक्त थे उनमें कोई भी अस्त्र चला न सका। उन्हें डर था कि कहीं गर्में आहत न हों। राजपूतों ने बिना युद्ध किए ही सब सिपाहियों को

गिरफ्तार कर लिया। सब बेगमें और उनके साथ की असंख्य घुड़सवारिनें दासियाँ बिना युद्ध के राजसिंह के हाथ कैद हो गई।

माणिकलाल राजसिंह के साथ ही साथ था—वह राजसिंह का बहुत ही प्रिय था। माणिकलाल ने सामने आ हाथ जोड़कर कहा—"महाराजाधिराज! अब इन बिल्लियों के दल को पकड़ कर क्या किया जाय? आज्ञा हो, तो सेरभर दूध-दही खिलाने के लिए इन्हें उदयपुर भेज दूँ।"

राजसिंह ने हँसकर कहा—"इतना दूध-दही उदयपुर में नहीं है। सुना है कि बिल्लियों का पेट बहुत भारी है। केवल उदयपुरी को महारानी चंचल-कुमारी के पास भेज दो। उन्होंने विशेष रूप से यही कहा है। बाकी औरंगजेब का धन औरंगजेब को ही लौटा दो।"

माणिकलाल ने हाथ जोड़कर कहा—"लूट का माल कुछ-कुछ सैनिकों को भी मिलता है।"

राजसिंह ने हँसते हुए कहा—"अगर तुम्हें किसी की जरूरत हो, तो ले सकते हो किन्तु मुसलमानी हिन्दुओं के लिये अछूत है।"

माणिक—"वह सब नाचना-गाना जानती हैं।"

राजसिंह—"नाच गाने में लगाने से राजपूत क्या फिर वीरता दिखा सकते हैं? सबको छोड़ दो। केवल उदयपुरी को महल में भेज दो।"

माणिक—"इस समुद्र में उस रत्न का पता कहाँ लगाऊँ? मैं तो पहचानता नहीं। यदि आज्ञा हो, तो हनुमान् की तरह दूसरा गन्धमादन लेकर महारानी के पास पहुँचूँ। वह जिसे रखना चाहें, रखेंगी, बाकी को छोड़ देंगी। वह सब उदयपुर के बाजार में सुर्मा-मिस्सी बेचकर गुजर करेंगी।"

इसी समय एक बड़े हाथी की पीठ से निर्मलकुमारी ने राजसिंह और माणिकलाल को देखा, दोनों हाथ जोड़ ऊँचाकर उसने दोनों को प्रणाम किया। यह देख राजसिंह ने माणिकलाल से पूछा—"वह कौन बेगम है? हिन्दू जान पड़ती है, सलाम न कर हम लोगों को प्रणाम कर रही है।"

माणिकलाल यह देख बहुत जोर से हँसा। कहा—"महाराज! वह एक बाँदी है—वह बेगम कैसे हो गई? इसे पकड़ लाना चाहिये।"

यह कह माणिकलाल ने हुक्म देकर निर्मल कुमारी को हाथी से उतार अपने पास बुलवा लिया। निर्मल ने बात न कर हँसना शुरू किया। माणिक-लाल ने पूछा—"यह क्या, तुम बेगम कब से हुई ?"

निर्मल ने आँख-मुँह मटका कर कहा—"मैं जनाब इमली बेगम हूँ। तस्लीम करती हूँ।"

माणिकलाल—"मैं जानता हूँ, कि तुम बेगम नहीं हो। तुम्हारी माँ, दादी भी कभी बेगम नहीं हुईं—किन्तु तुम्हारा यह वेश कैसा ?"

निर्मल—"पहले मेरे हुक्म की तालीम करो। फजूल बातें अभी रहने दो।"

माणिकलाल"—सीताराम ! बेगम साहबा की धमकी तो देखो।"

निर्मल—"मेरा हुक्म यह है, कि हजरत उदयपुरी बेगम साहबा सामने के पाँच कलसेदार हौदेवाले हाथी पर तशरीफ रखती हैं। उन्हें मेरे हुजूर में हाजिर करो।"

कहते देर न हुई; माणिकलाल ने उसी समय उदयपुरी को हाथी से उतरने को कहा। उदयपुरी घूँघट से मुँह छिपा रोती हुई उतरी। माणिकलाल ने एक खाली पालकी उदयपुरी के हाथी के पास भेज दिया पालकी पर बैठा उदयपुरी लाई गई। इसके बाद माणिकलाल ने निर्मलकुमारी के कान में कहा—"जी, इमली बेगम साहबा। और कोई बात।"

निर्मल—"चुप रहो, बदतमीज। मेरा नाम हजरत इमली बेगम है।"

माणिक—"अच्छा, चाहे कोई बेगम क्यों न हो, जेबुन्निसा बेगम को पहचानती हो ?"

निर्मल—"पहचानती क्यों नहीं ? वह मेरी बेटी होती है। देखो, सबसे आगे तीन कलश जिस हौदे पर जलवा दिखा रहे हैं उस पर जेबुन्निसा बैठी है।"

माणिकलाल उन्हें भी हाथी से उतार पालकी में बैठा कर ले आया।

उसी समय एक बेगम ने हौदे के जरी के पर्दे को हटा, मुँह बाहर निकाल, निर्मलकुमारी को बुलाया।

माणिकलाल ने निर्मल से पूछा—"अब तुम्हें कौन बुला रही है ?"

निर्मल ने देख कर कहा—"हाँ, जोधपुरी बेगम है। किन्तु वह मेरी सौत नहीं है। मुझे हाथी पर चढ़ा कर उनके पास ले चलो। [illegible]।"

माणिकलाल ने ऐसा ही किया। निर्मलकुमारी ने जोधपुरी के हाथी पर चढ़ उनके इन्द्रासन जैसे हौदे में प्रवेश किया। जोधपुरी ने कहा—"मुझे अपने साथ ले चलो।"

निर्मल—"क्यों माता जी ?"

जोधपुरी—यह तो कई बार कह चुकी हूँ। मैं इस म्लेच्छपुरी में, इस महापाप के भीतर अब रहना नहीं चाहती।

निर्मल—"यह नहीं हो सकता। तुम्हें न चलना पड़ेगा। अगर मुगल-साम्राज्य कायम रहा, तो तुम्हारा लड़का दिल्ली का बादशाह होगा। हम लोग ऐसी ही चेष्टा भी करेंगी। उनके राजत्व में हम लोग सुखी रहेंगी।"

जोधपुरी—"ऐसी बात जबान पर न लाओ बेटी, बादशाह सुनेंगे, तो मेरा लड़का एक दिन भी बचने न पायेगा। जहर देकर उसे मार डाला जायेगा।"

निर्मल—"मैं अभी की बात नहीं कहती। शाहजादे का जो हक है, उसे वह समय पर पायेंगे ही। आप मुझे आज और कोई आज्ञा न दें ! आप अगर मेरे साथ चलेंगी, तो आपके पुत्र का अनिष्ट हो सकता है।"

जोधपुरी ने सोचकर कहा—"यह बात सही है। तुम्हारी बात मानती हूँ ! मैं न चलूँगी, तुम जाओ।"

तब निर्मलकुमारी उन्हें प्रणाम कर विदा हुई।

उदयपुरी और जेबुन्निसा उपर्युक्त सैन्य से घिर कर निर्मलकुमारी के साथ उदयपुर में चंचलकुमारी के पास भेज दी गईं।

चौथा परिच्छेद

अग्निचक्र बहुत ही भीषण हुआ

तब राजसिंह ने और सब वारांगनाओं को—हाथी और पालकी पर तथा घोड़े पर चढ़ा—सबको ही उस रास्ते से जाने दिया, जिस गुफा से औरंगजेब गये थे। उनके प्रवेश करने पर दोनों ओर की सेना निस्तब्ध हुई। औरंगजेब की बाकी सेना और आगे बढ़ न सकती थी—क्योंकि राजसिंह राह बन्द किये

बैठे थे। किन्तु औरगजेब की सागर जैसी सेना युद्ध का उद्योग करने लगी। वह सब घोड़ों को घुमाकर राजपूतों के सामने आये। तब राजसिंह ने थोड़ा हट कर उनकी राह छोड़ दी—उन्होंने उनके साथ युद्ध नहीं किया। वह सब "दीन-दीन" शब्द से बादशाह के आज्ञानुसार बादशाह जिस सँकरी राह से गये थे, उसी राह में प्रवेश कर गए। राजसिंह फिर आगे बढ़े।

इसके बाद बादशाही तोशाखाना आ उपस्थित हुआ। समझ लीजिये कि उसका कोई रक्षक नहीं, राजपूतों ने उसे लूट लिया। इसके बाद भोजन का सामान था। जो हिन्दुओं के काम लायक था, वह राजसिंह की रसद में मिला लिया गया। जो हिन्दुओं के व्यवहार लायक नहीं था, उसे डोम-चमारों ने ले जाकर कुछ खाया कुछ पहाड़ों पर फेंक दिया—उसे स्यार कुत्ते और जंगली जानवरों ने भी खाया। राजपूतों ने हाथियों पर लदे दफ्तरखाने को कुछ जला दिया और कुछ छोड़ दिया। इनके बाद खजाना था। उसमें इतने धन-रत्न के ढेर थे जैसे पृथ्वी में और कहीं नहीं, यह जान राजपूतों के सेनापति लोभ से उन्मत्त हो गये। उनके पीछे बहुत बड़ी गोलन्दाज सेना थी राजसिंह ने अपनी सेना को संयत किया। कहा—"तुम लोग घबराओ नहीं, यह सब तुम लोगों का ही है। आज छोड़ दो। आज ऐसा युद्ध का समय नहीं।" आगे राजसिंह ने कोई चेष्टा नहीं की। औरङ्गजेब की सब सेना गुफा में चली गई।

इसके बाद उन्होंने माणिकलाल को एकान्त में ले जाकर कहा—"मैं तुम मुगल पर बहुत सन्तुष्ट हुआ हूँ। मैं नहीं समझता था, कि इतनी सुविधा होगी। मैंने जो विचार किया था, उसमे युद्ध करके मुगलों का विनाश करना पड़ता! अब बिना युद्ध के ही मुगलों को विनष्ट कर सकूँगा। मुबारक को मेरे पास ले आओ। मैं उनका समादर करूँगा।"

पाठकों को याद होगा कि मुबारक माणिकलाल के द्वारा जीवन पा उन्हीं के साथ उदयपुर आये थे। राजसिंह उनकी वीरता को जानते थे, इसलिए उन्हें अपनी सेवा में उपयुक्त पद पर नियुक्त किया था। किन्तु मुगल होने के कारण उनपर पूरी तरह से विश्वास नहीं करते थे। इससे मुबारक कुछ दुःखी थे। आज उसी दुःख से उन्होंने गुरुतर कार्यभार ले रखा था। पाठकों ने भी देखा,

कि वह गुरुतर कार्य पूर्ण हो गया। पाठक समझ गये होंगे, कि मुबारक ही वेश बदले हुए मुगल सौदागर थे!

आज्ञा पा माणिकलाल मुबारक को ले आया। राजसिंह ने मुबारक की बहुत प्रशंसा की। उन्होंने कहा—"अगर तुम साहस और चतुरता पाकर मुगल सौदागर बनकर मुगल सेना को गुफा में न ले जाते, तो बहुतेरे आदमियों की हत्या होती। अगर तुम्हें कोई पहचान जाता, तो तुम बड़ी आफत में फँस जाते।"

मुबारक ने कहा—"महाराज! जो आदमी सब के सामने मर चुका है, जिसे सबके आगे कब्र दी गई, उसे पहचान सकने पर भी न पहचानता। मन में सोचता, कि भूल हो रही है। मैं इसी साहस से गया था।"

राजसिंह ने कहा—"इस समय यदि मेरा काम सिद्ध न होता, तो वह मेरा ही दोष होता। तुम जो पुरस्कार चाहो, मैं तुम्हें वही दूँगा।"

मुबारक ने कहा—"महाराज! बेअदबी माफ हो। मैंने मुगल होकर मुगलों के राज्य में ध्वंस का उपाय किया है। मैंने मुसलमान होकर हिन्दू राज्य के संस्थापन का काम किया है। सत्यवादी होकर मैंने मिथ्या प्रवंचना की है। मैंने बादशाह का नमक खाकर नमकहरामी की है। मैं मृत्यु की यन्त्रणा से भी अधिक कष्ट पा रहा हूँ। मुझे और कोई पुरस्कार का शौक नहीं। मैं केवल एक पुरस्कार आपसे चाहता हूँ। मुझे तोप के मुँह पर रख उड़ा देने की आज्ञा दीजिये। मेरी अब जीने की इच्छा नहीं।"

राजसिंह ने विस्मित होकर कहा—"यदि इस काम से तुम्हें इतना कष्ट हुआ, तो ऐसा क्यों किया? मुझसे कहा क्यों नहीं? मैं और किसी को नियुक्त करता। मैं किसी के मन को इतना दुःख देना नहीं चाहता।"

मुबारक ने माणिक को दिखाकर कहा—"इस महात्मा ने मुझे जीवन दान किया है; इन्हीं का अनुरोध था कि मैं इस काम को सिद्ध करूँ। मेरे न होने से यह काम सिद्ध न होता; क्योंकि सिवा मुगल के मुगल लोग हिन्दू पर विश्वास न करते। मैं इसे स्वीकार न करता, तो अकृतज्ञता होती। इसी से मैंने इस काम को किया है। अब जीना नहीं जानता। मुझे तोप के मुँह पर उड़ा देने की आज्ञा दीजिये। मुझे बाँध बादशाह के पास भेज दीजिये,

ताकि मैं जिस प्रकार चाहता हूँ, मुगल सेना में दाखिल होकर आपके साथ युद्ध कर प्राण त्याग करूँ।

राजसिंह बहुत ही सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कहा—"कल मैं तुम्हें मुगल सेना में जाने की आज्ञा दूँगा। सिर्फ एक दिन और रह जाओ। अब मुझे केवल एक बात पूछनी है। औरङ्गजेब ने तुम्हें क्यों मरवाया?"

मुबारक—"वह महाराज के सामने कहने लायक नहीं।"

राजसिंह—"माणिकलाल के सामने?"

मुबारक—"उनसे कह चुका हूँ।"

राजसिंह—"अच्छा एक दिन और ठहरो।"

इसके बाद माणिकलाल ने मुबारक को एकान्त में ले जाकर पूछा—"साहब! यदि आपकी मरने की ही इच्छा हो, तब शाहजादी को पकड़ने के लिए आज्ञा क्यों दी थी?"

मुबारक—"भूल, सिंह जी भूल! मैं अब शाहजादी को लेकर क्या करूँगा? मन में आया था सही, जिस शैतानी ने मुझे प्रेम के बदले काले साँप के जहरीले दाँतों को अर्पण किया था, उसे उसके काम का बदला दूँ। किन्तु मृतक आज जो चाहता है, उसे कल उसकी इच्छा नहीं रहती। मैंने अब मरने का ही निश्चय किया है—अब शाहजादी बदला पाये या न पाये, इससे मुझे क्या? मैं अब कुछ देखने तो आऊँगा नहीं।"

माणिकलाल—"अगर आप जेबुन्निसाँ को रखने की आज्ञा न दें तो मैं बादशाह से कुछ घूस लेकर उसे छोड़ दूँ।"

मुबारक—"एक बार मुझे उसे देखने की इच्छा है। एक बार पूछने की इच्छा है कि संसार में धर्माधर्म पर उसका कुछ विश्वास है या नहीं? एक बार सुनना चाहता हूँ कि वह मुझे देखकर क्या कहती है? एक बार जानना चाहता हूँ, कि वह मुझे देखकर क्या कहती है?"

माणिकलाल—"तब आप भी उसपर अनुरक्त हैं?"

मुबारक—"बिलकुल नहीं। सिर्फ एक बार देख भर लूँगा। आप से मैं इतना ही चाहता हूँ।"

राजसिंह

आठवाँ खण्ड

आग में कौन-कौन जला ?

पहला परिच्छेद

बादशाह का दहन आरम्भ

इधर बादशाह बडे झमेले में पड़े। उनकी सारी सेना गुफा में प्रवेश करने के कुछ ही दिन बाद समाप्त हो गयी। किन्तु गुफा के दूसरे मुहाने पर कोई न पहुँचा। दूसरे मुहाने का कोई पता ही नहीं। सन्ध्या के बाद ही उस सँकरी राह में बहुत ही घोर अन्धकार हो गया। सारी सेना के रास्ते में प्रकाश हो सके ऐसी रोशनी का सामान भी साथ में नहीं था। बादशाह और बेगमो के फस रोशनी हुई, बाकी सब सेना में घोर अन्धकार उस पर तलहटी की पहाड़ी भूमि पत्थर के ढोकों से और भी भयानक हो पड़ी। घोड़े टक्कर खाने लगे—कितने ही घोड सवार सहित गिर पड़े। अन्य घोड़े के पैर से कुचल कर घोड़े और सवार दोनों ही आहत या हत होने लगे। हाथियों के पैर में बड़े-बड़े पत्थर के टोंके गडने लगे—इससे हाथी भी विवश हो इधर उधर फिरने लगे। घोडे पर सवार औरतें जमीन में गिरकर घोडों के टाप और हाथियों के पैर से कुचल कर आर्तनाद करने लगीं। पालकी ढोनेवालों के पैर क्षत-विक्षत हो खूना-खून हो गये। पैदल सेना से तो अब चला ही नहीं जाता—वह सब थक गये और पत्थरों की ठोकरों से बहुत पीडित हुए। अब औरंगजेब ने रात को सेना का चलना रोक छावनी डालने की आज्ञा दी।

किन्तु तम्बू लगाने लायक जगह नहीं। बडे कष्ट से बादशाह और बेगमों के तम्बू के लिए जगह मिली। और किसी के लिए नहीं। जो जहाँ था, वहाँ ही रह गया सवार घोड़े की पीठ पर; पीलवान हाथी के ऊपर, पैदल अपने पैरों पर भार दे खडे रह गये। कोई-कोई बड़े कष्ट से पहाड़ के निचले हिस्से में पैर लटका कर बैठे रहे। किन्तु पर्वत का वह हिस्सा चढ़ने योग्य नहीं, बिलकुल खड़ी जमीन, कोई चढ न सका। कितने ही लोगों को तो इतने विश्राम का भी स्थान नहीं मिला।

इसके बाद आफत पर आफत, खाने का बिलकुल अभाव; साथ में जो कुछ था उसे राजपूतों ने लूट लिया था। जिस गुफा में सेना थी वहाँ भोजन की तो

बात ही क्या, घोड़ों के लिए घास तक न मिली। सारे दिन परिश्रम के बाद किसी को कुछ भी खाने को न मिला, बादशाह और बेगमों को भी नहीं। भूख और नींद के अभाव से सभी अधमरे हो रहे थे। मुगल सेना बड़ी आफत में पड़ी।

इधर बादशाह को उदयपुरी और जेबुन्निसाँ के हरण का समाचार मिला। मारे क्रोध के वे आग हो गये। अकेले समस्त सैनिकों को मारा नहीं जा सकता, नहीं तो औरंगजेब वह भी करते। गड्ढे में फँसा सिंह, सिंहनी को पिंजरे में बंद देख जैसे गर्जन करता है औरंगजेब भी वेग से ही गर्जन करने लगे।

अधिक रात होने पर सेना का कोलाहल कुछ कम हुआ। कितनों ही ने सुना, कि समीप ही पहाड़ के ऊपर कितने ही वृक्ष गिराये जा रहे हैं। कुछ न समझ सकने का या भूत की करामात समझ सब लोग चुप रहे।

मुगल सेना में भयानक आर्तनाद हो उठा। स्त्रियों के रोने की आवाज सुन औरंगजेब का पत्थर हृदय भी काँप उठा।

सैन्य की राह साफ करनेवालों का दल आगे रहता है। इस सैन्य को विपरीत गति से आगे बढ़ना पड़ा था, इसलिये वे सब पीछे रह गये थे। पहले औरङ्गजेब ने उन सबको आगे आने की आज्ञा दी। किन्तु उनके आने में बहुत देर होने की सम्भावना थी।

उनकी प्रतीक्षा में तो आज भी उपवास करना पड़ेगा। अतः दिल्लीश्वर ने हुक्म दिया कि पैदल सिपाहियों के साथ दूसरे आदमी भी इस काम में लगाये जायँ और पेड़ों को इस दीवार पर चढ़ कर किनारे फेंक दें। हाथियों से भी यही काम लेने की उसने आज्ञा दी। अत. सैकडों हाथी और हजारों पैदल सैनिक पेड़ों को फेकने में लग गये। उन लोगों ने अभी हाथ ही लगाया था कि ऊपर से शिला-वृष्टि शुरू हुई जिससे किसी का हाथ, किसी का सिर, किसी का पैर टूट कर चूर चूर हो गया। किसी-किसी का तो शरीर ही पिस गया। हाथियों में किसी का सिर फटा, किसी का मेरुदण्ड और पंजर सत्यानाश हो गया। ऐसी हालत में हाथी सैनिकों को कुचलते, पीसते, चिघाडते भाग चले जिससे औरंगजेब की फौज भयभीत हो गयी। सभी ने निगाह दौडा कर देखा, पहाड़ों पर हजारों राजपूत कतार बाँध कर खड़े है। जो मुगल अभी तक घायल नहीं हुए थे, राजपूतों की गोलियों से मरे। औरङ्गजेब के सिपाही पेडों की उस दीवार के पास एक क्षण भी नहीं ठहर सके।

यह देखकर औरङ्गजेब ने सेनापति को बहुत बुरा-भला कहा और पेड़ों को फिर से हटा फेंकने की आज्ञा दी। तब "दीन-दीन" कहते हुए मुगल काम में लगे और राजपूतों की गोली खाकर गिरने लगे। इस प्रकार बहुत उद्योग करने पर भी मुगल सेना पेड़ों को न हटा सकी। आखिर हताश होकर अपनी सेना को पीछे लौटने की आज्ञा दी। जिस मुँह से वे आये थे, उसी मुँह से उन्हें बाहर हो जाना था। सारी सेना भूख और प्यास तथा परिश्रम से पस्त हो गयी थी। औरङ्गजेब का जीवन में यह पहला ही मौका था कि वह

भूख और प्यास से अधीर हुआ हो। बेगमों की भी यही दशा थी उगान ना। पहाड़ पर चढ़ना कठिन था, क्योंकि पहाड़ दोनों तरफ खड़े थे और बिलकुल सीधे थे, इसलिये पीछे लौटना ही पड़ा। औरङ्गजेब जिस रास्ते से दोपहर को गुजरा था, उसी रास्ते मे मुँह पर जा उपस्थित हुआ। उसने वहाँ जाकर देखा कि मृत्यु समूची सेना को अपने मुँह में लेने के लिए तैयार खड़ी है। उस रास्ते का मुँह भी उसी तरह पेड़ों से बन्द कर दिया गया था, निकलने का कोई उपाय नहीं। राजपूत पहले की तरह ही पहाड़ों पर कतार बाँध कर खड़े थे। औरङ्गजेब ने सोचा कि अगर बाहर न निकला गया तो काल के गाल में अवश्य ही जाना होगा। उसने सभी सेनापतियों को बुलाकर विनय, उत्साह, भय आदि दिखाकर रास्ता साफ करने के लिए प्राण तक भी दे देना स्वीकार करा लिया। सेनापतियों ने सेना लेकर फिर से साफ करने का काम शुरू कर दिया। इस बार रास्ता साफ करने वाले भी मौजूद थे इसलिए कुछ सुविधा हो गई थी। मुगल सैनिक अपनी मृत्यु की परवाह न कर पेड़ों का छिन्न भिन्न करने लग गये। अभी थोड़ी देर ही कर पाये थे कि पहाड़ पर से पत्थर और लोहे की मूसलाधार वर्षा आरम्भ हुई और मुगल सैनिक उसमें डूब गये, जैसे सावन-भादों की वर्षा में धान के खेत डूब जाते हैं। सबसे बड़ी विपद् यह थी कि सामने ही राजसिंह की सेना थी। उन्होंने दूर से ही मुगलों को लौटते देखकर अपने तोपों को सजाकर खड़ा कर दिया।

तब भारत-पति ने क्षुद्र राजपूत-बाला को उद्धार-कारिणी समझ उसके कबूतर को उड़ा दिया।

तीसरा परिच्छेद

उदयपुरी का दहन आरम्भ

निर्मलकुमारी ने उदयपुरी बेगम और जेबुन्निसाँ बेगम को उपयुक्त स्थान में रखकर महारानी चञ्चलकुमारी के पास जाकर प्रणाम किया और आद्योपान्त सारा हाल उन्हें कह सुनाया। विशेष रूप से सब बातें सुनकर चंचलकुमारी ने पहले उदयपुरी को बुलाया। उदयपुरी के आने पर उन्हें एक अलग आसन बैठने को दिया और उनका सम्मान करने के लिए आप स्वयं उठ खड़ी हुईं। उदयपुरी बहुत दुःखी और विनीत भाव से चञ्चलकुमारी के सामने आई, किन्तु अब चञ्चलकुमारी के सौजन्य को देख समझीं, कि छोटी तबीयत के हिन्दू भय से ही सौजन्य दिखाते हैं। तब म्लेच्छ कन्या ने कहा—"तुम लोग मुगलों से मौत की खाहिश क्यों कर रही हो?"

चञ्चलकुमारी ने मुस्कराकर कहा—"हम लोगों ने उनसे मृत्यु कामना नहीं की। वह काश उस सामग्री को हम लोगों को दे सकें, इसी आशा से हम आये हैं। हम लोग हिन्दू हैं, यवन का दान नहीं लेते।"

उदयपुरी ने घृणा के साथ कहा—"उदयपुर ने पुरुषानुक्रम के जमींदार से मुसलमानों के इस दान को स्वीकार किया है। सुलतान अलाउद्दीन की बात छोड़ दो, मुगल बादशाह अकबर और उनके पौत्र से भी राणा राजसिंह के पूर्व पुरुषों ने यह दान स्वीकार किया है।"

चञ्चल—बेगम साहबा, आप भूल कर रही हैं, उसे हम लोग दान नहीं मानते, ऋण समझते हैं। अकबर बादशाह के ऋण को प्रतापसिंह ने स्वयं

चुकता कर दिया। आपके श्वसुर के ऋण को अब हम लोग चुका रहे हैं। उसकी पहली किश्त देने के लिए ही आपको बुलाया है। मेरी तम्बाकू खत्म हो गई कृपाकर मेरे लिए तम्बाकू भर दीजिये।

चन्चलकुमारी ने पहले बेगम के साथ जैसा सौजन्य प्रकट किया था, उसी के योग्य व्यवहार यदि बेगम भी करतीं, तो शायद उन्हें इतना अपमानित न होना पड़ता। किन्तु उन्होंने ताने देकर तेजस्विनी चंचल-कुमारी के गर्व को उकसा दिया। तब उन्हें उसका फल भोगना ही पड़ा। तम्बाकू भरने की बात पर उन्हें तम्बाकू भरने के निमन्त्रण-पत्र की याद आई। उदयपुरी का सारा शरीर पसीने-पसीने होने लगा। फिर भी गर्व को हृदय में भर कर उन्होंने कहा—"बादशाह की बेगमें तम्बाकू नहीं भरतीं।"

चंचल—जब तुम बादशाह की बेगम थीं, तब तम्बाकू नहीं भरती थी। इस समय तुम मेरी बाँदी हो। तम्बाकू भरो। यही मेरा हुक्म है।

उदयपुरी रो दी—दुःख से नहीं, क्रोध से। उन्होंने कहा—"तुम्हारी इतनी बड़ी हिम्मत, कि आलमगीर बादशाह की बेगम को तम्बाकू भरने को कहती हो!"

चचल—मुझे भरोसा है कि अब आलमगीर बादशाह स्वयं आकर महाराणा के लिए तम्बाकू भरेंगे। अगर उन्हें यह विद्या न आती होगी, तो कल तुम उन्हें सिखा देना। आज खुद सीख रखो।

तब चंचलकुमारी ने दासियों को आज्ञा दी—"इनसे तम्बाकू भरवाओ।"

उदयपुरी उठी नहीं।

तब दासी ने कहा—"चिलम उठाओ।"

उदयपुरी तब भी न उठी। दासी उनका हाथ पकड़ खींचने लगी। तब अपमान के भय से कम्पित हृदय शाहशाह की प्यारी बेगम चिलम उठाने चली। अभी वह चिलम के पास पहुँची नहीं थी आसन छोड़कर एक कदम बढ़ते ही थर-थर काँप कर पत्थर की बनी भूमि पर गिर पड़ी। परिचारिका

ने उन्हें पकड़ लिया—चोट नहीं आई। उदयपुरी जमीन पर गिर कर बेहोश हो गईं।

चञ्चलकुमारी के आज्ञानुसार जो कीमती पलंग और कीमती शय्या उनके लिए तैयार की गई थी, वहीं वह धर-पकड़ के पहुँचाई गई। वहाँ दासियों ने यथाविधि उनकी सेवा की। थोड़ी ही देर में वह होश में आ गईं। तब चञ्चलकुमारी ने आज्ञा दी कि कोई किसी तरह भी उनका अपमान न करे। भोजन, शयन और सेवा के लिए जो बन्दोबस्त चञ्चलकुमारी के लिए था उससे अधिक बेगम साहबा की सेवा के लिए कुमारी ने आज्ञा दी।

निर्मल ने कहा—"यह तो सब होगा। किन्तु इससे उनको परितृप्ति न होगी।"

चञ्चल—क्यों, और क्या चाहिए?

चञ्चल—शराब! जब वह शराब माँगे, तब थोड़ा गोमूत्र देना।

उदयपुरी परिचर्या से सन्तुष्ट हुईं। किन्तु रात के समय, ठीक भय होने पर निर्मलकुमारी को बुलाकर विनीत भाव से कहा—"इमली बेगम थोड़ी शराब के लिये हुक्म दीजिये।"

निर्मल—"मँगाती हूँ"—कहकर चुपके से राजवैद्य को खबर दी। राजवैद्य ने एक बून्द दवा भेज दी और आज्ञा दी, कि एक गिलास शर्बत तैयार कर उसमें इसे मिला पीने को दीजिये। निर्मल ने ऐसा ही किया। उदयपुरी उसे पीकर बहुत प्रसन्न हुई। कहा—"बहुत अच्छी शराब है;" वह थोड़ी ही देर में नशे में आकर गहरी नींद में सो गई।"

चौथा परिच्छेद

जेबुन्निसाँ का दहन आरम्भ

जेबुन्निसाँ अकेली बैठी हुई हैं। दो एक दासियाँ उनकी सेवा में लगी हुई हैं। निर्मलकुमारी भी बीच-बीच में उनकी खबर लेती रही। धीरे-धीरे उदयपुरी के झमेले की खबर भी उन्हें लगी। सुन कर वह अपने लिए चिन्तित हुईं।

अन्त में उन्हें भी निर्मलकुमारी चंचलकुमारी के पास ले गई। वह न तो विनीत हुईं और न गर्व ही दिखलाया, सीधे से चचलकुमारी के पास उपस्थित हुईं। उन्होंने मन ही मन सोच रखा कि मैं इस बात को कभी न भूलूँगी, कि आलमगीर बादशाह की कन्या हूँ।

चचलकुमारी ने बड़े आदर के साथ उन्हें उनके लायक़ अलग आसन पर बैठाया और उनसे तरह-तरह की बातें की। जेबुन्निसाँ ने भी सौजन्य के साथ बातों का जवाब दिया। ऐसी बात किसी ने किसी तरफ से नहीं उठाई जिससे विद्वेष भाव उत्पन्न हो अन्त में चचलकुमारी ने उनके उपयुक्त परिचर्या की आज्ञा दी और जेबुन्निसाँ को इत्र और पान भी दिया।

किन्तु जेबुन्निसाँ उठीं नहीं। उन्होंने कहा—"महारानी! मैं यहाँ किस लिए लाई गई हूँ? क्या मैं कुछ सुन सकती हूँ?"

चचल—यह बात आपसे नहीं कही गई। न कहने से भी कोई हर्ज नहीं। किसी ज्योतिषी के कहने के अनुसार आप बुलाई गई हैं। आज आप अकेली सोयें। दर्वाजा खुला रखें। पहरेदारिनें अलक्ष्य होकर पहरे पर रहेंगी, आपको कोई कष्ट न पहुँचेगा। दैवज्ञ ने कहा है कि आज रात आप कोई स्वप्न देखेंगी। जो स्वप्न देखें, वह कल मुझसे कहेंगी; यही आपसे प्रार्थना है।

सुनकर चिन्तित भाव से जेबुन्निसाँ चचलकुमारी के पास से विदा हुईं। निर्मलकुमारी की कोशिश से उनके भोजन, बिस्तर आदि की परिपाटी दिल्ली के रंगमहल जैसी ही हुई। वह सोईं, किन्तु नींद नहीं आई, चंचलकुमारी के

आज्ञानुसार दर्वाजा खोलकर अकेली सोईं; क्योंकि बात न मानने से उन्हें यह भय था, कि जो दशा उदयपुरी की हुई, वैसी ही उनकी भी न हो। किन्तु अकेली सारी रात दर्वाजा खुला रखने में भी उन्हें शंका हुई। उन्होंने यह भी सोचा, कि शायद चुपके से मुझ पर कोई अत्याचार हो; इसके लिये ही यह बन्दोबस्त किया गया हो। इसलिये उन्होंने स्थिर किया कि वह सोयेंगी ही नहीं, सावधान रहेंगी।

किन्तु दिन में बहुत कष्ट मिला था, इसलिये नींद न आने देने की प्रतिज्ञा करने पर भी उन्हें बीच-बीच में तन्द्रा आकर उन पर अधिकार जमाने लगी। जो निद्रा न आने की प्रतिज्ञा करता है, वह तन्द्रा आने पर भी बीच बीच में चौंक पड़ता है। तन्द्रा आने पर भी उसे यह याद रहता है, मैं न सोऊँ। जेबुन्निसाँ को बीच-बीच में ऐसी ही झपकी आ रही थी; किन्तु चौंक-चौंक कर नींद उचट जाती थी। नींद उचटते ही अपनी हालत याद आती थी। कहाँ दिल्ली की बादशाहजादी; कहाँ उदयपुर की बन्दिनी? कहाँ मुगल बादशाही की रंगभूमि की प्रधान अभिनेत्री, मुगल बादशाह के आकाश में पूर्णचन्द्र, तख्तेताऊस की सबसे उज्वल रत्न, काबुल से विजयपुर, गोलकुण्डा तक जिनके बाहुबल से शासित, उनकी दाहिनी बाँह—और कहाँ आज उदयपुर के कटघरे में चूहे की तरह पिंजरे में बन्द रूपनगर की जमींदार कन्या की बन्दिनी, हिन्दू के घर अछूत शूकरी, हिन्दू दास दासियों की चरण-किंकरी, कीट-मृत्यु क्या इससे अच्छी नहीं? अच्छी ही है! जिस मौत को उन्होंने प्राणाधिक प्रिय मुबारक को दिया वह अच्छा नहीं तो और क्या है? उन्होंने जो मुबारक को दिया है, वह अमूल्य है—क्या वह स्वयं उस मौत के योग्य है? हाय मुबारक! मुबारक! मुबारक! तुम्हारा अमोघ वीरत्व क्या मामूली साँप के जहर को जीत न सका? वह अनिन्दनीय मनोहर मूर्ति भी क्या साँप के जहर से नीली पड़ गई? इस समय क्या उदयपुर में ऐसा साँप मिल नहीं सकता, जो इसे काली नागन डँसे? मानुषी, काली नागन, क्या फणिनी काली नागन के डसने से न मरेगी? हाय मुबारक! मुबारक! मुबारक तुम

एक बार सशरीर आकर मुझे जरा काली नागन से डसाओ, देखूँ मैं मरती हूँ या नहीं।

ठीक यही बात सोच, मानो मुबारक को देखने की इच्छा से जेबुन्निसाँ ने आँखें खोल दी। देखा कि सामने ही सशरीर मुबारक है। जेबुन्निसाँ ने चीख कर आँखें बन्द करलीं; वह बेहोश हो गई।

पाँचवाँ परिच्छेद

अग्नि में इन्धन—ज्वाला बढ़ी

दूसरे दिन जब जेबुन्निसाँ शय्या त्याग कर उठी तब वह पहचान नहीं पड़ती थी। एक तो पहले ही मूर्ति जीर्ण, कादम्बिनी-छाया-विच्छिन्ना जैसी हो रही थी, आज और भी न जाने क्या हुआ, समझने लगी। समस्त दिन-रात आग की तपन के आगे बैठे रहने से मनुष्य की जैसी दशा होती है, चिता पर चढ बिना चले, केवल धुएँ और तपन से अधजली ही चिता से उतर आने पर जैसा होता है, जेबुन्निसाँ भी आज वैसी ही दिखलाई दे रही थी। जेबुन्निसाँ क्षण-क्षण पर जल रही थी।

वेशभूषा न करने से काम नहीं चलता, जेबुन्निसाँ से बडी अनिच्छा से कपड़े बदल नियम और अनुरोध के ख्याल से जलपान किया। इसके बाद वह पहले उदयपुरी से मिलने गई। देखा कि उदयपुरी अकेली बैठी हुई है—सामने कुमारी मेरी की तस्वीर और एक ईसा का क्रास है। बहुत दिन से उदयपुरी ईसा और उनकी माता को भूल गई थी। आज दुर्दिन में उन्हें याद आई। ईसाइन के निशान के रूप में यह दोनों उनके साथ-साथ रहते थे; बरसात के दिन में दुखिया के पुराने छाते की तरह आज वह निशान बाहर निकले। जेबुन्निसाँ ने देखा, कि उदयपुरी की आँखों से आँसू बह रहे हैं—बून्द पर बून्द चुपचाप सफेद-सफेद गालों पर बह रहे

हुई। जेबुन्निसाँ ने उदयपुरी को इतनी सुन्दर और कभी नहीं देखा। वह स्वभावतः परम सुन्दरी है—किन्तु गर्व, भोग-विलास और कुढन आदि से वह विकार धुल गया था, अपूर्व रूप-राशि का पूर्ण विकास हुआ था।

उदयपुरी जेबुन्निसाँ को देखकर अपने दुःख की बातें कहा करती थीं। उन्होंने कहा—"मैं बाँदी थी, बाँदी के घर से बेची गई थी; बाँदी ही क्यों न रही? मेरे भाग्य में ऐश्वर्य क्यों..."

इतना ही कह कर उदयपुरी ने जेबुन्निसाँ के मुँह की ओर देख कर कहा—"तुम्हारी यह क्या हालत है? कल तुम्हें क्या हो गया था? क्या काफिरों ने तुम पर भी अत्याचार किया है।"

जेबुन्निसाँ ने ठण्डी साँस लेकर कहा—"काफिरों की मजाल क्या? सब कुछ अल्लाह ने किया है।"

उदयपुरी—वह तो सब करते ही हैं। किन्तु क्या मैं सुन सकती हूँ, कि क्या हुआ?

जेबुन्निसाँ—अभी वह बात जुबान पर ला नहीं सकती। मरने के समय कहूँगी।

उदयपुरी—जो हो, ईश्वर इन राजपूतों को स्पर्धा का भी दण्ड देंगे।

जेबुन्निसाँ—राजपूतों का इसमें कोई दोष नहीं।

यह कह जेबुन्निसाँ चुप हो रही। उदयपुरी भी कुछ न बोली। अन्त में चंचलकुमारी से मिलने के लिये जेबुन्निसाँ ने उदयपुरी से आज्ञा माँगी।

उदयपुरी ने कहा—"क्यों? क्या उसने तुम्हें बुलाया है?"

जेबुन्निसाँ—नहीं।

उदयपुरी—तुम उससे मुलाकात न करो। तुम बादशाह की लड़की हो।

जेबुन्निसाँ—मुझे अपनी जरूरत है।

उदयपुरी—मुलाकात कर पूछना, कि कितनी अशर्फियाँ लेकर यह गँवार हम लोगों को छोड़ेंगे?

"पूछूँगी।" कहकर जेबुन्निसाँ चली। तब चंचलकुमारी से आज्ञा लेकर वह उनसे मिलीं। चंचलकुमारी ने पहले ही दिन के समान उनका आदर किया और कायदे के अनुसार स्वागत किया। अन्त में उन्होंने पूछा—"क्यों, अच्छी नींद आई न?"

जेबुन्निसाँ—नहीं, आपने जैसी आज्ञा दी थी उसका पालन करने की वजह से नींद नहीं आई।

चंचल—तब कोई स्वप्न भी नहीं देखा?

जेबुन्निसाँ—स्वप्न नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष कुछ देखा।

चंचल—अच्छा या बुरा?

जेबुन्निसाँ—भला या बुरा कुछ कह नहीं सकती—भला तो नहीं था; किन्तु इस बारे में आप से मेरी एक भिक्षा है।

चंचल—कहिये।

जेबुन्निसाँ—क्या मैं फिर उसे देख सकती हूँ?

चंचल—दैवज्ञ से बिना पूछे मैं कह नहीं सकती। मैं चार-पाँच दिन बाद दैवज्ञ के पास आदमी भेजूँगी।

जेबुन्निसाँ—आज नहीं भेज सकतीं?

चंचल—इतनी जल्दी काहे की शाहजादी?

जेबुन्निसाँ—इतनी जल्दी? अगर आप इसी क्षण उसे दिखा सकें, तो मैं आपकी बाँदी होकर रह सकती हूँ।

चंचल—बहुत ही आश्चर्य की बात है, शाहजादी! ऐसी कौन-सी चीज है?

जेबुन्निसाँ ने जवाब नहीं दिया। उसके आँखों से आँसू गिरने लगे। यह देखकर भी चंचलकुमारी को दया न आई। उन्होंने कहा—"आप चार-पाँच दिन ठहरें, मैं विचार करूँगी।

तब जेबुन्निसाँ हिन्दू-मुसलमान का दुर्भेद भूल गई। जहाँ उसे न जाना चाहिये, वहाँ भी गई। जिस शय्या पर चंचलकुमारी बैठी थी, उस पर जा खड़ी हुई। इसके बाद कटी हुई लता की तरह चंचलकुमार

के पैरों पर गिर उनके पैरों पर मुँह रख, चरण-कमल को पलट आँसुओं की ओस से उसे सींचा। कहा—"मेरी प्राण रक्षा करो; नहीं तो मैं मर जाऊँगी।"

चंचलकुमारी ने उन्हें पकड़ कर उठाया। उन्हें भी हिन्दू-मुसलमान की याद न रही। उन्होंने कहा—"शाहजादी! आप जैसे कल रात को दर्वाजा खोलकर सोई थी, वैसा ही आज भी करें। निश्चय आप की मनोकामना सिद्ध होगी।"

यह कहकर उन्होंने जेबुन्निसाँ को विदा किया। इधर उदयपुरी जेबुन्निसाँ की प्रतीक्षा कर रही थी। लेकिन जेबुन्निसाँ फिर उनसे नहीं मिली। निराश हो उदयपुरी ने स्वयं चंचलकुमारी के पास जाने की आज्ञा माँगी।

मुलाकात होने पर उदयपुरी ने चंचलकुमारी से पूछा कि कितनी अशर्फियाँ मिलने से चंचलकुमारी उन लोगों को छोड़ देंगी?

चंचलकुमारी ने कहा—"अगर बादशाह भारतवर्ष की कुल मस्जिदें—मय दिल्ली की जामा मस्जिद के तुड़वा दे सकें, मयूर सिंहासन को यहाँ भेज दे और साल-दर-साल हम लोगों को मालगुजारी देना स्वीकार करें, तो मैं तुम लोगों को छोड़ दे सकती हूँ।"

उदयपुरी ने क्रोध से अधीर होकर कहा—"गँवार जमींदारी के मन में इतनी हिम्मत; आश्चर्य है!"

यह कह उदयपुरी उठकर चलीं। चंचलकुमारी ने हँसकर कहा—"बिना हुक्म उठकर जाती कहाँ हो? क्या भूल गई कि तुम गँवार जमीदारों की बाँदी हो? इसके बाद उन्होंने एक दासी को आज्ञा दी—"मेरी नई बाँदी को अन्यान्य रानियों के पास ले जाकर दिखा लाओ; परिचय देना कि यह दाराशिकोह की खरीदी बाँदी है।"

उदयपुरी रोती हुई परिचारिका के साथ चलीं। परिचारिकायें अन्यान्य रानियों को औरंगजेब की प्यारी बेगम को दिखा लाईं।

निर्मल ने आकर चंचल से कहा—"महारानी! असल बात भूल रही

हो। मैं किस लिये उदयपुरी को पकड़ कर ले आई हूँ! क्या ज्योतिषी की बातें याद नहीं!

चञ्चलकुमारी ने हँसकर कहा—"वह बात भूली नहीं। उस दिन बेगम बहुत दुःखी हुई, इसी से तकलीफ दे न सकी। किन्तु बेगम अपने आप मेरी दया को गवायें देती हैं।

छठवाँ परिच्छेद

शाहजादी भस्म हुई

आधी रात बीती—सभी निःशब्द सो रहे हैं। जेबुन्निसाँ, बादशाह की कन्या, सुखशय्या पर आँसू बहाने को विवश है। कदाचित् दावाग्नि से घिरी हुई बाघिन की तरह कोप में भरी; फिर भी मानो बाण से घायल हरिणी की तरह कातर हो रही है। रात अच्छी नहीं; कभी-कभी गहरे हुँकार के साथ प्रबल वायु बह रही है, आकाश मेघाच्छन्न है। खिड़कियों की राह से दिखाई देनेवाले पहाड़ों की माला पर घोर अन्धकार है—केवल जहाँ राजपूतों की छावनी है, वहाँ बसन्त-कानन में फूलों के हार की भाँति, समुद्र के फेन के समान और कामिनी के कमनीय देह पर रत्नराशि के समान एक स्थान पर बहुतेरे दीपक जल रहे हैं—सर्वत्र सन्नाटा घोर अन्धकार से पूर्ण है; कभी-कभी सिपाही के हाथ की बन्दूक की आवाज़ भीषण रूप में गूँज उठती है। कभी-कभी मेघ के "आर्द्र ग्रह गुरु गर्जित" हैं; कहीं-कहीं एकमात्र तोप की प्रतिध्वनि जैसा तुमुल कोलाहल है। राजपुरी के अस्तबल में डरे हुए घोड़ों की हिनहिनाहट, राजपुरी के उद्यान में डरी हुई हरिणी की कातर आवाज़ है। उस भयंकर रात के सब शब्द सुनते-सुनते जेबुन्निसाँ सोच रही है—"वह तोप दगी, शायद [illegible] र है—नहीं, तोप इस तरह नहीं बोलती। मेरे पिता की

तोप दगी—ऐसी सैकड़ों तोपें मेरे पिता के पास हैं—क्या एक भी मेरे हृदय के लिए नहीं ? कैसे इस तोप के मुँह पर छाती रख तोप की आग से सब ज्वाला बुझा डालूँ। कल सैन्य में हाथी की पीठ पर चढ़ मैं लाखों सैन्य श्रेणी देखती थी, लाखों अस्त्रों की झनकार सुनती थी—उनमें एक से ही मेरी सारी ज्वाला बुझ सकती है, कब मैंने वह चेष्टा कहाँ की ! हाथी की पीठ से कूद हाथी के पैरों के तले पिस कर मर सकती थी—लेकिन मैंने तो वह भी चेष्टा नहीं की ? मरने की इच्छा है, जहर खाकर मरती क्यों नहीं ? मेरे मन में अब वह शक्ति नहीं, कि उद्योग कर सकूँ।"

ऐसे समय हवा के झोंके ने खुले द्वारों से कमरे में प्रवेश कर सब बत्तियों को बुझा दिया। अन्धकार से जेबुन्निसाँ के मन में कुछ डर समाया। जेबुन्निसाँ सोचने लगी—"डरना क्यों ? अभी-अभी तो मैं मरने की इच्छा कर रही थी। जो मरना चाहता है, उसे भय काहे का ? कल मैंने मरे हुए आदमी को देखा है, आज भी जीवित हूँ जान पडता है कि जहाँ मरे मनुष्य रहते हैं, वहाँ ही जाऊँगी। यह निश्चित है, तब भय काहे का ? मेरे भाग में बिहिश्त भी नहीं—शायद जहन्नुम में जाना होगा। इसी से इतना भय है। तब, अब तक तो मैंने इन बातों पर विश्वास भी नहीं किया जहन्नुम को भी नहीं माना और बिहिश्त को भी नहीं माना; खुदा को भी नहीं जानती थी और दीन को भी नहीं जानती थी, केवल भोग-विलास ही जानती थी। अल्लाह, रहीम ! तुमने मुझे क्यों ऐश्वर्य दिया ? ऐश्वर्य ही मेरे जीवन के लिए विषमय हुआ। इसी से मैंने तुम्हें पहचाना नहीं। ऐश्वर्य में सुख नहीं है, यह मैं जानती भी नहीं थी, किन्तु तुम तो जानते थे ? जान-बूझ कर निर्दय हो तुमने यह दु.ख क्यों दिया ? मेरे जैसा ऐश्वर्य किस के भाग्य में है ? मेरे जैसी दुःखी कौन है ?"

शय्या पर कोई चींटी या कीड़ा तथा रत्न-शय्या पर भी कीड़ों के आने-जाने की मना ही नहीं—कीड़े ने जेबुन्निसाँ को काटा। जिस कोमलाङ्ग पर पुष्पधन्वा भी शराघात करने के समय कोमल हाथों से बाण चलाते हैं, उसे

कीड़े ने लापरवाही के साथ काट-काटकर उसका खून निकाल दिया। जेबुन्निसा ज्वाला से कुछ कातर हुई। तब वह मन ही मन कुछ हँसी। सोचने लगी—"चींटी के काटने से मैं छटपटा उठी! इस अनन्त दुःख के समय भी छटपटाई। मैं स्वयं चींटी का काटना सह नहीं सकती, और लापरवाही से मैंने अपने प्राण से भी अधिक प्रिय को साँप से डसाने भेजा। ऐसा कोई नहीं जो मेरे लिए वैसा ही विषधर साँप ला दे! हाय साँप, मुबारक!"

केवल सब के ही लिए ऐसा नहीं होता; अधिक मानसिक यन्त्रणा के समय, अधिक देर तक अकेले मर्मभेदी चिन्ता में डूबने पर मन की कोई-कोई बातें जुबान पर आ जाती है। जेबुन्निसा की अन्तिम कई बातें वैसे ही उसके मुँह से बाहर निकल पड़ी। उन्होंने उस अँधेरी रात में, घोर अँधेरी कोठरी में से उस वायु के हुंकार को भेद कर मानों किसी से कहा—"साँप या मुबारक!" किसी ने उस अन्धकार में जवाब दिया—"मुबारक को पाने से क्या तुम न मरोगी?"

"यह क्या!"—जेबुन्निसा बिस्तर छोड़ उठ बैठी। जैसे गीत-ध्वनि सुन हरिणी आँखें खोल उठ बैठती है, वैसे ही जेबुन्निसा उठ बैठी। उन्होंने कहा—"यह क्या—यह मैंने क्या सुना? यह आवाज किसकी है?"

उत्तर मिला—किसकी?

जेबुन्निसा—किसकी? जो बिहिश्त में गया है, उसकी भी आवाज सभव है? क्या वह छायामात्र नहीं है? तुम कैसे बिहिश्त से आये, जानते हो मुबारक? तुम कल दिखाई दिये थे, आज तुम्हारी आवाज सुनी तुम मरे हो या जीते? असीरुद्दीन क्या मेरे आगे झूठ बोला? तुम जीते हो या मरे—तुम मेरे पास हो—क्या मेरे इस पलग पर क्षणभर के लिये बैठ नहीं सकते? तुम अगर छायामात्र ही हो, तब भी मुझे भय नहीं। एक बार बोलो।

जवाब मिला—"क्यों?"

जेबुन्निसा ने गिड़गिड़ा कर कहा—"मैं कुछ कहूँगी। मैंने जो कभी नहीं कहा,-वह कहूँगी।"

मुबारक (यह कहने की जरूरत नहीं कि मुबारक सशरीर उपस्थित था) उस अन्धेरे में जेबुन्निसाँ के पलगपर बैठ गया। जेबुन्निसाँ की बाँह से उसकी बाँह छू गई। जेबुन्निसाँ का शरीर हर्ष से रोमाचित हुआ और आनन्द से भर उठा। अन्धकार में मोतियों की लड़ी आँखों से बही। जेबुन्निसाँ ने आदर के साथ मुबारक का हाथ अपने हाथ में ले लिया। इसके बाद उसने कहा—"छाया नहीं हो, प्राणनाथ! तुम मुझे चाहे जो कहकर बहकाओ मैं बहकनेवाली नहीं। मैं तुम्हें न छोड़ूँगी।" तब जेबुन्निसाँ ने एकाएक पलग से उतर मुबारक के पैरों पर गिर के कहा—"मुझे क्षमा करो। मैं ऐश्वर्य के गौरव से पागल हो गई थी। मैंने आज कसम खाकर ऐश्वर्य का त्याग किया। तुम अगर मुझे क्षमा न करोगे, तो मैं लौटकर दिल्ली न जाऊँगी। बोलो तुम जीवित हो!"

मुबारक ने ठण्डी साँस लेकर कहा—"मैं जीवित हूँ। एक राजपूत ने मुझे कब्र से निकाल कर मेरी चिकित्सा कर प्राणदान दिया था; उसी के साथ यहाँ आया हूँ।

जेबुन्निसाँ ने पैर नहीं छोड़े। उसकी आँख के आँसू से मुबारक के पैर भीगे। मुबारक उसका हाथ पकड़ उठाने लगे। किन्तु जेबुन्निसाँ उठी नहीं। उसने कहा—"मुझपर दया करो, मुझे क्षमा करो!"

मुबारक ने कहा—"तुम्हें क्षमा किया। क्षमा न करता, तो तुम्हारे पास न आता।"

जेबुन्निसाँ ने कहा—"यदि आये हो, यदि क्षमा किया है, तो मुझे ग्रहण करो। ग्रहण करने के बाद यदि इच्छा हो, तो साँप के मुँह में डाल दो, न इच्छा हो, तो जो कहो वही करूँगी। अब मुझे न त्यागो। मैं तुम्हारे आगे कसम खाती हूँ कि अब दिल्ली न जाऊँगी। आलमगीर बादशाह के रंगमहल में अब प्रवेश न करूँगी। मैं शाहजादे से विवाह करना नहीं चाहती। तुम्हारे साथ चलूँगी।"

मुबारक सब भूल गये। साँप काटने की ज्वाला भूल गये—अपनी मरने की इच्छा भूल गये—दरिया को भूल गये। जेबुन्निसाँ की प्रेम से शून्य

असह्य बातें भूल गये। केवल जेबुन्निसाँ की रूपराशि उनकी आँखों के सामने छाई रही; जेबुन्निसाँ की प्रेमपूर्ण कातर वाणी उनके कानों में गूँज उठी। शाहजादी के दर्प को चूर देख उनका मन पिघल गया। तब मुबारक ने पूछा—"तब क्या तुम अब इस गरीब को पति के रूप में ग्रहण करने को राजी हो?"

जेबुन्निसाँ ने हाथ जोड़ आँखों में आँसू भरकर कहा—"क्या मेरा ऐसा भाग्य है?"

बादशाहजादी अब बादशाहजादी नहीं, मानुषी मात्र है। मुबारक ने कहा—"तब निर्भय, निःसंकोच मेरे साथ आओ।"

रोशनी जलाने की सामग्री उनके पास थी। मुबारक बत्ती जला उसे लालटेन के भीतर रख बाहर आ खड़े हुए। उनके कहने के अनुसार जेबुन्निसाँ ने कपड़े बदले। मुबारक उनका हाथ पकड़े कोठरी से बाहर निकले। वहाँ पहरेदारिनें नियुक्त थीं। उनके इशारे पर वे मुबारक और जेबुन्निसाँ के साथ चलीं। मुबारक ने चलते-चलते जेबुन्निसाँ को समझाया कि राजमहल में पुरुषों के आने का अधिकार नहीं। विशेषत. मुसलमान की तो बात ही अलग है। इसलिये वह रात को आने को बाध्य हुए थे। वह भी महारानी के विशेष अनुग्रह से आ सके थे और इसी से पहरेदारों ने इनका साथ दिया। सिंहद्वार तक उन्हें पैदल जाना था। बाहर मुबारक के लिए घोड़ा और जेबुन्निसाँ के लिये पालकी तैयार थी।

पहरेदारिनों की सहायता से सिंहद्वार से बाहर निकल ये लोग अपनी-अपनी सवारी पर सवार हुए। उदयपुर में भी दो-चार मुसलमान सौदागरी आदि लिये रहते थे, उन लोगों ने महाराणा से आज्ञा लेकर नगर के किनारे एक छोटी-सी मस्जिद बनवाई थी। मुबारक जेबुन्निसाँ को उसी मस्जिद में ले गये। वहाँ एक मुल्ला, एक वकील और गवाह हाजिर थे। उनकी सहायता से मुबारक और जेबुन्निसाँ का शरह के मुताबिक़ व।. हुआ।

तब मुबारक ने कहा—"अब तुम्हें जहाँ से ले आया हूँ; वहीं पहुँचा देना होगा। क्योंकि अभी तुम महाराणा की कैदी हो, किन्तु आशा है कि तुम शीघ्र ही छुटकारा पाओगी।"

यह कह मुबारक ने जेबुन्निसाँ को फिर शयनगृह में पहुँचा दिया।

सातवाँ परिच्छेद

दग्ध बादशाह का पानी माँगना

दूसरे दिन तीसरे पहर चंचलकुमारी के आगे जेबुन्निसाँ बैठी हुई प्रसन्नवदन हो बातें कर रही थी। दो रात जागने से शरीर ग्लान और दुःख के भोग से सुस्त हो रहा था। जो जेबुन्निसाँ रत्नराशि और पुष्पराशि से मण्डित हो दर्पण में अपनी प्रतिमूर्ति देख हँसा करती थी, अब वह जेबुन्निसाँ नहीं। वह समझती थी कि शाहजादी का जन्म केवल भोग-विलास के लिये है, यह वह शाहजादी नहीं। जेबुन्निसाँ समझ गई है कि शाहजादी भी नारी है, शाहजादी का हृदय भी नारी-हृदय है। स्नेहशून्य नारी-हृदय सूखी नदी मात्र है—केवल बालुही अथवा जलशून्य तालाब की तरह—केवल कीचड़।

जेबुन्निसाँ इस समय निष्कपट हो गर्व-त्याग कर विनीत भाव से चंचल-कुमारी के आगे गत रात्रि की घटना का हाल कह रही थी। चंचलकुमारी सब जानती थी। सब कहने के बाद जेबुन्निसाँ ने चंचलकुमारी से हाथ जोड़ कर कहा—"महारानी! अब मुझे कैद रखने से क्या फायदा? मैं अब भूल गई कि मैं आलमगीर बादशाह की कन्या हूँ। अब आप मुझे उनके पास भेजें, तो मेरी जाने की इच्छा नहीं। जाने पर भी शायद मेरा प्राण न बचेगा। इसलिए मुझे छोड़ दीजिये, मैं अपने पति के साथ उनके मुल्क तुर्किस्तान चली जाऊँगी।"

चंचलकुमारी ने सुनकर कहा—"इन सब बातों का जवाब देना मेरे हाथ नहीं। मालिक स्वयं महाराणा हैं। उन्होंने आपको मेरे पास रखने को भेजा है, मैं आपको रखे हुई हूँ। फिर भी यह घटना जो हो गई, उसके लिये महाराणा के सेनापति माणिकलाल सिंह जिम्मेदार हैं। मैं माणिकलाल के आगे बहुत बाधित हूँ, इसी से उनके कहने के अनुसार इतना किया है, किन्तु मैंने छोड़ देने की आज्ञा नहीं पाई। अतएव इस बारे में कुछ भी अङ्गीकार नहीं कर सकती।"

जेबुन्निसाँ ने उदास हो कहा—"आप महाराणा से मेरी यह भिक्षा प्रकट नहीं कर सकतीं? उनकी छावनी इस समय बहुत दूर तो नहीं है कल रात पहाड़ के ऊपर उनकी छावनी की रोशनी दिखाई दे रही थी।"

चंचलकुमारी ने कहा—"पहाड़ जितना नजदीक दिखाई देता है, उतना समीप नहीं। हमलोग पहाड़ी देशों में रहती हैं, इसी से इसका हाल जानती हैं। आप भी काश्मीर गई थीं, आप को याद होगा। जो हो आदमी भेजने में कोई कठिनाई नहीं। फिर भी मुझे आशा नहीं कि राणा इसपर राजी होंगे। यदि यह सम्भव होता कि उदयपुर की छोटी-सी सेना मुगल-राज्य को एक ही युद्ध में बिलकुल ध्वंस कर सकती, यदि बादशाह के साथ फिर हम लोगों की सन्धि की सम्भावना न होती, तो अवश्य वह आपको अपने पति के साथ जाने देने की आज्ञा दे सकते थे। किन्तु जब एक न एक दिन सन्धि करनी ही होगी तब आप लोगों को भी बादशाह के सामने वापस देना होगा।"

जेबुन्निसाँ—"तब तो आप मुझे निश्चय मौत के मुँह में भेजेंगी। विवाह की बात जान जाने पर बादशाह मुझे अवश्य जहर खिलायेंगे और मेरे पति की तो बात ही नहीं! वे अब कभी दिल्ली जा न सकेंगे। जाने से मृत्यु निश्चित है। तब इस विवाह से कौन अभीष्ट सिद्ध हुआ, महाराना

चचल—"शायद ऐसा उपाय किया जा सकता है, जिससे कोई न हो।"

ऐसी ही बातचीत हो रही थी, ऐसे समय निर्मलकुमारी घबराई हुई वहाँ आ उपस्थित हुई। निर्मल ने चंचल को प्रणाम करने के बाद जेबुन्निसाँ को सलाम किया। जेबुन्निसाँ ने भी सलाम के जवाब में सलाम किया। तब चचल ने पूछा—"निर्मल, इतनी घबड़ाई क्यों हो ?

निर्मल—विशेष समाचार है।

तब जेबुन्निसाँ उठ कर चली गई। चंचल ने पूछा—"क्या युद्ध का समाचार है ?"

निर्मल—जी हाँ।

चंचल—यह तो लोगों से सुना है कि चूहा बिल में घुस गया है। महाराणा ने उसका मुहाना बन्द कर दिया है। सुना है कि चूहा बिल में मरने और सड़ने जैसा हो गया है।

निर्मल—इसके बाद और एक समाचार है। चूहा बहुत भूखा है मेरा एक कबूतर आज लौटकर आ गया है। बादशाह ने उसके पैर में एक रुक्का बाँध कर उड़ा दिया है।

चंचल—तुमने रुक्के को देखा ?

निर्मल—देखा है।

चंचल—किसके नाम है ?

निर्मल—इमली बेगम के।

चचल—क्या लिखा है ?

निर्मल ने चिट्ठी निकाल कर उसका कुछ अंश इस तरह पढकर सुनाया—"मैं तुम्हारा जैसा स्नेह करता था, वैसा और किसी मनुष्य का स्नेह नहीं किया। तुम भी मेरी अनुगत हो गई थीं। आज पृथ्वीश्वर दुर्दशा में पड़ा है, यह तुमने लोगों से सुना होगा, भूखों मर रहा हूँ। दिल्ली का बादशाह आज एक टुकड़े रोटी का भिखारी है। क्या मेरा कोई उपकार नहीं कर सकतीं ? सामर्थ्य हो, तो करो। इस समय का उपकार कभी न भूलूँगा।"

चञ्चलकुमारी ने सुनकर कहा—"इन सब बातों का जवाब देना मेरे हाथ नहीं। मालिक स्वयं महाराणा हैं। उन्होंने आपको मेरे पास रखने को भेजा है, मैं आपको रखे हुई हूँ। फिर भी यह घटना जो हो गई, उसके लिये महाराणा के सेनापति माणिकलाल सिंह जिम्मेदार हैं। मैं माणिकलाल के आगे बहुत बाधित हूँ, इसी से उनके कहने के अनुसार इतना किया है, किन्तु मैंने छोड़ देने की आज्ञा नहीं पाई। अतएव इस बारे में कुछ भी अङ्गीकार नहीं कर सकती।"

जेबुन्निसाँ ने उदास हो कहा—"आप महाराणा से मेरी यह भिक्षा प्रकट नहीं कर सकतीं! उनकी छावनी इस समय बहुत दूर तो नहीं है कल रात पहाड़ के ऊपर उनकी छावनी की रोशनी दिखाई दे रही थी।"

चञ्चलकुमारी ने कहा—"पहाड़ जितना नजदीक दिखाई देता है, उतना समीप नहीं। हमलोग पहाड़ी देशों में रहती हैं, इसी से इसका हाल जानती हैं। आप भी काश्मीर गई थीं, आप को याद होगा। जो हो आदमी भेजने में कोई कठिनाई नहीं। फिर भी मुझे आशा नहीं कि राणा इसपर राजी होंगे। यदि यह सम्भव होता कि उदयपुर की छोटी-सी सेना मुगल-राज्य को एक ही युद्ध में बिलकुल ध्वंस कर सकती, यदि बादशाह के साथ फिर हम लोगों की सन्धि की सम्भावना न होती, तो अवश्य वह आपको अपने पति के साथ जाने देने की आज्ञा दे सकते थे। किन्तु जब एक न एक दिन सन्धि करनी ही होगी तब आप लोगों को भी बादशाह के सामने वापस देना होगा।"

जेबुन्निसाँ—"तब तो आप मुझे निश्चय मौत के मुँह में भेजेंगी। विवाह की बात जान जाने पर बादशाह मुझे अवश्य जहर खिलायेंगे और मेरे पति की तो बात ही नहीं! वे अब कभी दिल्ली जा न सकेंगे। जाने से मृत्यु निश्चित है। तब इस विवाह से कौन अभीष्ट सिद्ध हुआ, महारानी

चञ्चल—"शायद ऐसा उपाय किया जा सकता है, जिससे कोई उत्पात न हो।"

ऐसी ही बातचीत हो रही थी, ऐसे समय निर्मलकुमारी घबराई हुई वहाँ आ उपस्थित हुई। निर्मल ने चंचल को प्रणाम करने के बाद जेबुन्निसाँ को सलाम किया। जेबुन्निसाँ ने भी सलाम के जवाब में सलाम किया। तब चंचल ने पूछा—"निर्मल, इतनी घबड़ाई क्यों हो?

निर्मल—विशेष समाचार है।

तब जेबुन्निसाँ उठ कर चली गई। चंचल ने पूछा—"क्या युद्ध का समाचार है?"

निर्मल—जी हाँ।

चंचल—यह तो लोगों से सुना है कि चूहा बिल में घुस गया है। महाराणा ने उसका सुहाना बन्द कर दिया है। सुना है कि चूहा बिल में मरने और सड़ने जैसा हो गया है।

निर्मल—इसके बाद और एक समाचार है। चूहा बहुत भूखा है मेरा एक कबूतर आज लौटकर आ गया है। बादशाह ने उसके पैर में एक रुक्का बाँध कर उड़ा दिया है।

चंचल—तुमने रुक्के को देखा?

निर्मल—देखा है।

चंचल—किसके नाम है?

निर्मल—इमली बेगम के।

चंचल—क्या लिखा है?

निर्मल ने चिट्ठी निकाल कर उसका कुछ अंश इस तरह पढ़कर सुनाया—"मैं तुम्हारा जैसा स्नेह करता था, वैसा और किसी मनुष्य का स्नेह नहीं किया। तुम भी मेरी अनुगत हो गई थीं। आज पृथ्वीश्वर दुर्दशा में पड़ा है; यह तुमने लोगों से सुना होगा, भूखों मर रहा हूँ। दिल्ली का बादशाह आज एक टुकड़े रोटी का भिखारी है। क्या मेरा कोई उपकार नहीं कर सकतीं? सामर्थ्य हो, तो करो। इस समय का उपकार कभी न भूलूँगा।"

सुनकर चंचलकुमारी ने पूछा—"तब, क्या उपकार करोगी ?"

निर्मल ने कहा—"यह नहीं कह सकती। अगर और कुछ नहीं, तो बादशाह और जोधपुरी बेगम के लिये कुछ खाना भेज दूँगी।"

चंचल—कैसे ? वहाँ तो मनुष्य के जाने की राह नहीं ?

निर्मल—यह मैं अभी नहीं कह सकती। मुझे एक बार छावनी जाने की आज्ञा हो। देख आऊँ कि क्या किया जा सकता है।

चंचलकुमारी ने आज्ञा दी। निर्मल हाथी की पीठ पर सवार हो और रक्षकों से घिर कर अपने पति से मिलने गई। जाते ही माणिकलाल से मुलाकात हुई। माणिकलाल ने पूछा—"क्या युद्ध करने जा रही हो ?"

निर्मल—किससे युद्ध करूँगी ? क्या तुम मुझसे युद्ध करने लायक हो ?

माणिकलाल—सो तो नहीं हूँ। किन्तु आलमगीर बादशाह !

निर्मल—मैं उनकी इमली बेगम हूँ—उनसे युद्ध से मतलब ! मैं उनके उद्धार के लिये आई हूँ। मैं जो आज्ञा देती हूँ, उसे ध्यान से सुनो।

इसके बाद निर्मलकुमारी और माणिकलाल में क्या बातचीत हुई, नहीं मालूम। इतना यथेष्ट है कि बहुतेरी बातें हुईं।

माणिकलाल निर्मल को उदयपुर लौटा कर महाराणा से बातचीत करने उनके तम्बू में गये।

आठवाँ परिच्छेद

आग बुझाने की सलाह

महाराणा के पास पहुँच प्रणाम कर माणिकलाल ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया—"यदि इस सेवक को दूसरे युद्ध-क्षेत्र में भेज दें, तो बड़ी कृपा हो।"

राणा ने पूछा—"क्यों, यहाँ क्या हुआ है ?"

माणिकलाल ने उत्तर दिया—"यहाँ कोई काम नहीं। यहाँ केवल भूखे मुगलों के सूखे मुँह को देखने और उनके आर्तनाद के सुनने का काम है। उसे कभी-कभी पहाड़ के ऊपर वृक्ष पर चढ़कर देख आता हूँ। किन्तु यह काम तो कोई भी कर सकता है। मैं सोच रहा हूँ कि इतने मनुष्य, हाथी, घोड़े, ऊँट इस गुफा में मर जायँगे, दुर्गन्ध से उदयपुर में भी कोई बचेगा नहीं—बीमारी फैल पड़ेगी।

राणा—तब तुम्हारे विचार से इस मुगल सेना को भूखों न मारना चाहिये ?

माणिक—शायद युद्ध में लाखों आदमियों को मरते देखकर भी दुःख नहीं होता। बैठे-बैठाये एक आदमी के भी मरते दुःख होता है।

राणा—तब उनके बारे में क्या किया जाय ?

माणिक—महाराज ! मेरी इतनी बुद्धि नहीं कि इस विषय में सलाह दूँ। मेरी छोटी बुद्धि में सन्धि-स्थापन का यही अच्छा समय है। जठराग्नि जलने के समय मुगल जैसे नरम होंगे, वैसा पेट भरने पर न होंगे। मेरी समझ में राजमन्त्रीगण और सेनापतिगण को बुलाकर सलाह करके इसके बारे में फैसला करना चाहिये।

राजसिंह इस प्रस्ताव पर राजी और स्वीकृत हुए। भूखों इतने आदमी को मारने की उनकी भी इच्छा नहीं थी। हिन्दू भूखों को अन्न का खिलाना परमधर्म मानते हैं। अतएव हिन्दू शत्रु को भी सहज ही भूखों मारना नहीं चाहते।

सन्ध्या के बाद छावनी में राजसभा बैठी। वहाँ प्रधान सेनापतिगण और प्रधान राजमन्त्रीगण उपस्थित हुए। राजमन्त्रियों में प्रधान दयालशाह थे।

राजसिंह ने विचारणीय विषय लोगों को समझा कर सभासद्‌गण से राय माँगी। कितने ही लोगों ने कहा—"मुगल यहाँ भूख-प्यास से मरें और

सड़ें—औरङ्गजेब को पकड़ कर उससे ही इन सबको कब्र दिलवाई जाय। या डोमों को बुलाकर यहीं चपवा देना चाहिए। मुगलों से जो बार-बार राजपूतों का अनिष्ट हुआ है, उसे हाथ में पाकर किसकी इच्छा होगी कि उन्हें छोड़ दे!"

इसके जवाब में महाराणा ने कहा—"मैंने माना कि मुगलों को यहाँ बुला करके मिट्टी में दबवा देना चाहिए। किन्तु औरङ्गजेब और औरङ्गजेब की उपस्थिति सैन्य को मारने से ही मुगलों का अन्त न होगा। औरङ्गजेब के मरने पर शाहआलम बादशाह होगा। शाहआलम के साथ दक्षिणात्य की विजयी महासैन्य पहाड़ के दूसरे किनारे सशस्त्र उपस्थित है, और भी मुगल सेनाएँ दो ओर बैठी हुई हैं। क्या हम लोग इन सबको बिल्कुल ही ध्वंस कर सकेंगे? अगर न कर सके, तो अवश्य ही एक दिन सन्धि स्थापन करना होगा। अगर सन्धि करनी ही है, तो ऐसा समय कब मिलेगा? इस समय औरङ्गजेब का प्राण गले लगा है; इस समय उससे जो चाहोगे, वही होगा। क्या फिर ऐसा समय मिलेगा?"

दयालशाह ने कहा—"न सही। फिर भी इस महापापिष्ट संसार के लिए कण्टक-स्वरूप औरङ्गजेब का वध करने से संसार का पुनरुद्धार होगा। ऐसा पुण्य और किसी काम में नहीं। महाराज इस पर और कोई राय न दें।"

राजसिंह ने कहा—"मैंने तो देखा कि सभी मुगल बादशाह पृथ्वी के लिए कण्टक थे। क्या औरङ्गजेब शाहजहाँ से बढ़कर नराधम है? खुसरू से हम लोगों का जितना अमङ्गल हुआ है, उतना औरङ्गजेब से कहाँ हुआ? फिर, इसी का क्या ठीक है कि शाहआलम अपने पितृ-पितामह से भी बढ़कर नराधम न होगा और तुम लोगों की यदि यही आशा हो तो वही आशा मैं भी करता हूँ कि इन चारों मुगलसेनाओं को हम लोग पराजित कर सकेंगे; फिर भी विचार कर देखो कि कितने असंख्य मनुष्यों के वध से हमारी यह आशा पूरी होगी! असंख्य राजपूत भी विनष्ट होंगे, बाकी कितने रहेंगे? हम

लोग थोड़े, मुसलमान बहुसंख्यक हैं। हम लोगों की संख्या घट जाने पर यदि फिर मुगल आयें, तब किसके बाहुबल से उनको भगाऊँगा ?"

दयालशाह ने कहा—"महाराज, समस्त राजपूताना एक होकर मुगलों को सिन्धु पार खदेड़ आने में कितनी देर लगेगी ?"

राजसिंह ने कहा—"यह बात सही है। किन्तु ऐसा कभी हुआ है ? अब भी तो वही चेष्टा की जाती है, किन्तु क्या हो रहा है ? तब यह आशा कैसे की जाय ?"

दयालशाह—सन्धि होने पर भी औरङ्गजेब सन्धि को कायम रखेगा, यह आशा नहीं। ऐसा मिथ्यावादी भण्ड कोई नहीं पैदा हुआ। छुटकारा पाते ही वह सन्धिपत्र को फाड़ कर फेंक देगा और जो कर रहा है वही करेगा।"

राजसिंह—ऐसा सोचने से कभी सन्धि हो ही नहीं सकती। क्या यही राय है ?

इस तरह अनेक विचार हुए। अन्त में सबने ही राणा की बात को यथार्थ मान लिया सन्धि करने की सलाह ही पक्की रही।

तब किसी ने आपत्ति की, कि औरङ्गजेब ने सन्धि की चेष्टा से दूत कहाँ भेजा ? उसे गरज है या हम लोगों को ?"

इस पर राजसिंह ने जवाब दिया—"दूत कैसे आ सकता है ? उस गुफा से तो मैंने एक चींटी के भी आने-जाने की राह नहीं रखी।"

दयालशाह ने पूछा—"तब हम लोगों का दूत कैसे जायगा ? उस बार औरङ्गजेब ने हमारे दूत को वध करने की आज्ञा दी थी। इस बार भी वैसी ही आज्ञा न देगा, इसका क्या विश्वास ?"

राजसिंह—यह निश्चय है कि इस बार वह वध न करेगा। क्योंकि इस समय कपट सन्धि से भी उसका मङ्गल है। फिर भी झंझट यह है, कि वहाँ दूत कैसे जायेगा ?

तब माणिकलाल ने निवेदन किया—"यह भार मुझ पर रखा जाय मैं महाराणा का पत्र औरङ्गजेब के पास पहुँचा दूँगा और जवाब भी ले आऊँगा।"

सबने ही इस बात पर विश्वास किया; क्योंकि सभी जानते थे कि कौशल और साहस में माणिकलाल अद्वितीय है। अतएव पत्र लिखने का हुक्म हुआ। दयालशाह ने पत्र तैयार किया। उसका मर्म यह था कि बादशाह सारी सैन्य मेवाड़ से लौटा ले जायँ। मेवाड़ में गो-हत्या और देवालयों का तोड़ना बन्द किया जाय और जजिया के लिए कोई दावा न रहे। तब राजसिंह रास्ता खोल देंगे; किसी झंझट के बादशाह जा सकेंगे।

वह पत्र सब सभासद्गण को सुनाया गया। सुनकर माणिकलाल ने कहा—"बादशाह की स्त्री और कन्या हमारे यहाँ कैद हैं। वे सब रहेंगी?"

सुनते ही सभा में बड़ी हँसी हुई। सबने एक स्वर से कहा—"नहीं, छोड़ी जायँगी।" किसी ने कहा—"रहने दो, यह सब महाराणा के आँगन में झाड़ू देंगी।" किसी ने कहा—"उन सबको ढाके भेज दो। हिन्दू होकर वैष्णवी बनकर हरिनाम का जप करें।" किसी ने कहा—"उनके मूल्य स्वरूप बादशाह एक-एक करोड़ रुपये दें।" इत्यादि अनेक प्रकार के प्रस्ताव हुए। महाराज ने कहा—"दो मुसलमान बाँदियों की सन्धि न तोड़ी जायगी। लिख दो कि यह दोनों लौटा दी जायँगी।"

ऐसी ही लिखा गया। पत्र माणिकलाल की जिम्मेदारी में आया। तब सभा भङ्ग हुई।

———

नवाँ परिच्छेद

पानी में आग

सभा भंग हो गई, फिर भी माणिकलाल नहीं गये। सभी चले गये। माणिकलाल ने चुपके से महाराणा को खबर दी—"मुबारक के बखशीश की याद महाराणा को दिलाई जाती है।"

राजसिंह ने कहा—"वह क्या चाहता है?"

माणिकलाल—बादशाह की जो कन्या हम लोगों के यहाँ कैद है, वह उसे ही चाहता है।"

राजसिंह—उसे अगर बादशाह के पास वापस न भेजूँ, तो शायद सन्धि न होगी। फिर मैं स्त्रियों का पीडन कैसे करूँ?

माणिक—पीडन करना न पड़ेगा। गई रात शाहजादी से मुबारक की शादी हो गई है।

राजसिंह—यह बात शाहजादी बादशाह से कहेगी तो सब झगड़ा मिट जायगा।

माणिक—एक प्रकार से। क्योंकि दोनों ही का सिर काटा जायगा।

राजसिंह—क्यों?

माणिक—शाहजादी बिना शाहजादा के शादी नहीं कर सकती। इस शाहजादी ने एक छोटे सैनिक से विवाह कर दिल्ली के बादशाह के कुल में कलङ्क लगाया है। विशेषतः बादशाह से बिना पूछे यह विवाह किया है। इसलिए उसे दिल्ली के रंगमहल की प्रथा के अनुसार जहर खाना पड़ेगा और मुबारक जब साँप के जहर से नहीं मरा, तब हाथी के पैरों तले या शूली से मारा जायगा। यदि यह अपराध क्षमा भी हो, तो उसने महाराज का जो उपकार किया है, उससे वह बादशाह के आगे सूली चढ़ाने योग्य है। खबर लगते ही बादशाह उसे सूली देंगे। उस पर बिना आज्ञा लिये उसने शाहजादी से विवाह किया है, इसपर भी सूली पर जाना होगा।

राजसिंह—क्या मैं उसका कोई उपकार नहीं कर सकता ?

माणिक—आप यह वादा करा सकते हैं कि अगर कन्या और दामाद को बादशाह क्षमा न करे तो सन्धि न होगी।

राजसिंह ने कहा—"मैं ऐसा करना स्वीकार करता हूँ उनके लिये मैं बादशाह को एक अलग पत्र लिखवाता हूँ। उसे भी तुम इसी के साथ ले जाओ। औरंगजेब कन्या को क्षमा कर सकते हैं, किन्तु मुबारक को क्षमा करना स्वीकार करके भी मुझे भरोसा नहीं कि वह उसे छुटकारा देंगे। जो हो, अगर मुबारक इमसे सन्तुष्ट हो, तो मैं ऐसा करने को तैयार हूँ।"

यह कहकर राजसिंह ने अपने हाथ से एक पत्र लिखकर माणिकलाल को दिया। माणिकलाल दोनों पत्र ले उसी रात उदयपुर गये।

उदयपुर में जाकर माणिकलाल ने पहले निर्मलकुमारी से सब समाचार कहा। निर्मल सन्तुष्ट हुई। उसने भी बादशाह को इस मर्म का एक पत्र लिखा।

"बाँदी के असंख्य सलाम। हुजूर ने जो आज्ञा दी है, उसे बाँदी ने पूरा किया है। अब हुजूर की राय मिलने से ही सब कुछ हो सकता है। मेरी आखिरी भिक्षा याद रखें। सन्धि कर लें।

यह पत्र निर्मल ने माणिकलाल को दिया। इसके बाद निर्मल ने जेबुन्निसा से सब बातें कहीं। वह भी इस से सन्तुष्ट हुई। इधर माणिकलाल ने उसे सतर्क करने के लिये कहा—"साहब बादशाह के पास लौट जाने से वह सचमुच आपको क्षमा करेंगे, यह भरोसा मुझे नहीं।"

मुबारक—न करिये।

दूसरे दिन सवेरे माणिकलाल ने निर्मलकुमारी से कबूतर माँग कर पत्र को काट-छाँट कर छोटा बना उसे उसके पैरों में बाँध दिया। कबूतर छूटते ही

आकाश में चढ गया। वह पैर के बोझ से दु:खी था। फिर भी किसी तरह उड़कर जहाँ बादशाह मुँह ऊपर कर आकाश देख रहे थे, वहाँ बादशाह के हाथ में पत्र पहुँचा दिया।

दसवाँ परिच्छेद

अग्नि बुझाने के समय उदयपुरी भस्म

कबूतर शीघ्र ही औरंगजेब का जवाब ले आया। राजसिंह ने जो-जो चाहा था, औरङ्गजेब उन सब बातों पर राजी हो गये केवल एक झगड़ा रह गया, उन्होंने लिखा—"चंचलकुमारी को देना होगा।" राजसिंह ने कहा—"इसकी अपेक्षा आपको ससैन्य यहाँ ही कब्र देना मैं उत्तम समझता हूँ।" लाचार औरङ्गजेब को वह वासना भी छोड़नी पड़ी। उन्होंने सन्धि के लिए राजी हो मुंशी से इसी मर्म का पत्र लिखवा उस पर अपने पंजे की छाप दे अपने हाथ से उस पर "मजूर" लिख दिया। जेबुन्निसाँ और मुबारक के बारे में एक अलग पत्र में उन्होंने क्षमा स्वीकार किया, किन्तु एक शर्त यह रही कि इस विवाह की बात कभी किसी के आगे प्रकट न हो। उसी के साथ यह भी स्वीकार किया कि बादशाह ऐसा उपाय कर देंगे, जिससे कन्या को अपने पति से मिलने में कोई बाधा न होगी।

राजसिंह ने सन्धि पत्र पाते ही मुगल सेनाको छुटकारा देने की आज्ञा प्रचारित की। राजपूतों ने हाथी लगाकर सब वृक्ष हटवा दिये मुगल लोग कहाँ से खाना यहाँ पायेंगे। इसलिए राजसिंह ने दया कर बहुतेरे हाथियों की पीठ पर लाद अनेक भोजन के सामान उपहार स्वरूप भेज दिए और अन्त में उदयपुरी, जेबुन्निसाँ और मुबारक को उनके पास भेज देने के लिए उदयपुर में आज्ञा भेज दी। तब निर्मल ने चंचल को इशारा कर चुपके से

कहा—"बेगम ने तुम्हारी दासी का काम किया?" यह कह निर्मल ने उदयपुरी से कहा—"मैं जो निमन्त्रण लेकर दिल्ली गई थी, वह निमन्त्रण आप ने पूरा किया?"

उदयपुरी ने कहा—"तुम्हारी जीभ के मैं टुकड़े टुकड़े करा दूँगी। तुम लोगों की मजाल क्या जो मुझसे तम्बाकू भरवाओ। तुम्हारी जैसी नीचों की मजाल क्या जो बादशाह की बेगम को रोक सके। क्यों अब तो छोड़ना पड़ा न! किन्तु जिसने मेरा अपमान किया है, उसे मैं इसका फल चखाऊँगी। उदयपुर का नाम-निशान भी रहने न दूँगी।"

तब चंचलकुमारी ने स्थिर होकर कहा—"सुना है कि महाराणा ने बादशाह पर दया कर तुम लोगों को छोड दिया है। इस पर आप जरा-सी मीठी बात भी बोलना नहीं जानती, इसलिये आप छोड़ी न जायेंगी। आप बाँदियों के महल में जाकर मेरे लिए तम्बाकू भर लायें।"

जेबुन्निसा ने कहा—"यह क्या कहा रानी आप इतनी निर्दय हैं?"

चंचलकुमारी ने कहा—"आप जा सकती हैं, कोई बाधा न होगी, इन्हें अभी मैं जाने नहीं देती।"

जेबुन्निसा ने बहुत मिन्नत की, उदयपुरी ने भी कुछ विनीत भाव धारण किया। किन्तु चंचलकुमारी सख्त ही रही। उन्होंने दया कर केवल इतना ही कहा—"मेरे लिए एकबार तम्बाकू भर दें तब जाने पायेंगी।"

तब उदयपुरी ने कहा—"मैं तम्बाकू भरना नहीं जानती।"

चंचलकुमारी ने कहा—"बाँदियाँ बता देंगी।"

लाचार उदयपुरी ने स्वीकार किया। बाँदियों ने बता दिया। उदयपुरी ने चंचलकुमारी के लिए तम्बाकू भरा।

तब चंचलकुमारी ने सलाम कर उन लोगों को विदा किया। कहा—"जो-जो, हुआ है, वह हाल आप बादशाह से कहियेगा, उन्हें याद दिला

दीजियेगा कि मैंने ही लात मार कर आलमगीर की नाक तोड़ दी थी और भी कहियेगा, कि अगर वह फिर किसी हिन्दू बालिका के अपमान की इच्छा करेंगे तो मैं केवल तसवीर पर लात मारने से ही सन्तुष्ट न होऊँगी।"

तब उदयपुरी निदाघ के समान उज्ज्वल कान्ति लेकर विदा हुई।

बेगम, कन्या और औरङ्गजेब भोजन पाकर बेंत से मारे गये कुत्ते की तरह दुम दबा कर राजसिंह के सामने से भागे।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

अग्निकाण्ड से प्यासी चातकी

बेगमों को विदा करने के बाद चञ्चलकुमारी को फिर से अन्धकार दिखाई दिया। मुगल परास्त हुए, बादशाह की बेगम ने उनकी सेवा की, किन्तु राणा तो कुछ बोलते ही नहीं। चञ्चलकुमारी को रोती देख निर्मल आकर उनके पास बैठी। उनके मन की बातें समझ निर्मल ने कहा—"महाराणा को याद क्यों नहीं दिलाती?

चञ्चल ने कहा—"तुम क्या पागल हो गई हो? स्त्री होकर क्या बार-बार यह बात कही जाती है?"

निर्मल—तब रूपनगर से अपने पिता को आने के लिए क्यों नहीं लिखतीं?

चञ्चल—उस पत्र के जवाब के बाद फिर पत्र लिखूँ?

निर्मल—बाप के ऊपर क्रोध और अभिमान कैसा?

चञ्चल—क्रोध और अभिमान नहीं। वह अपनी ही लिखावट होने कि ... प्राप्त हुआ, उसकी याद आने से अब भी छाती काँपती है। अब और क्या लिखने का साहस करूँ?

निर्मल—वह तो विवाह के लिए लिखा था!

चंचल—तब अब काहे के लिए लिखूँ!

निर्मल—यदि महाराणा कोई बात न उठायें, तो मेरी समझ में चित्रा-लय जाकर रहना ही अच्छा है—औरङ्गजेब अब इधर ताकेंगे भी नहीं। इसलिये पत्र लिखने को कहती थी। बिना चित्रालय गये और उपाय क्या है?

चंचल कुछ कहने जा रही थी। लेकिन मुँह से जवाब न निकला। चंचल रो दी। निर्मल की यह बात सुनकर अप्रतिम हुई।

चंचल मुँह पोंछकर लज्जा से कुछ हँसी। निर्मल भी हँसी। तब निर्मल ने हँस कर कहा—"मैं दिल्ली के आगे कभी अप्रतिम नहीं हुई। तुम्हारे आगे अप्रतिम हुई—यह दिल्ली के बादशाह के लिए बहुत लज्जा की बात है। इमली बेगम के लिए भी कुछ लज्जा की बात है। सो एकबार तुम इमली बेगम का मुंशीपना देखो। कलम-दावात लेकर लिखना आरम्भ करो मैं बोले देती हूँ।"

चंचल ने कहा—"किसको लिखूँ—माँ को या बाप को?"

निर्मल ने कहा—"बाप को।"

चंचल पत्र लिखने लगी, निर्मल लिखाने लगी—"जब मुगल बादशाह महाराणा के हाथ से"—'बादशाह' तक लिखकर चंचलकुमारी ने कहा—"महाराणा के हाथ से" न लिखूँगी राजपूतों के हाथ से लिखूँगी। निर्मलकुमारी ने कहा—"यही लिखो"। इसके बाद निर्मल के अनुसार चंचल लिखने लगी—"हाथ से पराभव प्राप्त हो राजपूताने से निकाले गये हैं। तब उनके द्वारा हम लोग पर बल प्रकाश करने की कोई सम्भावना नहीं। तब आपकी सन्तान के लिए आपकी क्या आज्ञा है? मैं आपके ही अधीन हूँ।"

बाद निर्मल ने कहा—"महाराणा के अधीन नहीं?"

चंचल ने कहा—"दूर हो पापिष्ठा" यह बात उसने नहीं लिखी। तब निर्मल ने कहा, "तब लिखो—और किसी के अधीन नहीं!" लाचार चंचल ने ऐसा ही लिखा।

इस तरह पत्र लिखे जाने पर निर्मल ने कहा—"अब इसे रूपनगर भेज दो।" पत्र रूपनगर भेज दिया गया। जवाब में रूपनगर के राव ने लिखा—"मैं दो हजार सैन्य लेकर उदयपुर आता हूँ महाराणा से कहना कि हाट-बाट खुला रखें।"

इस अद्भुत जवाब का मतलब क्या है; उसे चंचल और निर्मल कुछ समझ नहीं सकीं। अन्त में दोनों ने विचार कर स्थिर किया कि जब फौज की बात लिखी है, तब राणा से प्रकट करने की आवश्यकता है। निर्मलकुमारी ने माणिकलाल के पास पत्र भेज दिया।

राजा भी ऐसी ही झंझट में पड़े। चंचलकुमारी को भूले नहीं। उन्होंने विक्रम सोलंकी को पत्र लिखा था। पत्र का मर्म चंचलकुमारी के विवाह का था। विक्रमसिंह ने कन्या के लिए शाप दिया था, राणा ने उसकी याद दिला दी। और उन्होंने अङ्गीकार किया था कि जब वह राजसिंह को उपयुक्त पात्र समझेंगे, तब उन्हें आशीर्वाद सहित कन्यादान करेंगे; यह भी स्मरण करा दिया। राणा ने पूछा—"अब आपका क्या अभिप्राय है?"

इस पत्र के उत्तर में विक्रमसिंह ने लिखा—"मैं दो हजार सवार लेकर आपके पास आता हूँ। हाट-बाट खुला रखें।"

राजसिंह भी चंचलकुमारी की तरह इसका मतलब समझ न सके। सोचा कि केवल दो हजार सवार लेकर विक्रम मेरा क्या करेंगे! मैं सतर्क हूँ। अतएव उन्होंने विक्रम के लिए हाट-बाट खुला रखने की आज्ञा दी।

———

बारहवाँ परिच्छेद

उदयसागर के किनारे लौटकर औरंगजेब ने वहाँ छावनी डाल रात बिताई, सैनिक और बेगमों सहित बचे। तब सिपाहियों के दल में किस्सा कहानी आदि तरह-तरह की रसिकताएँ आरम्भ हुई। एक मुगल ने कहा—"हिन्दुओं के राज्य में आने के कारण हम लोगों ने एकादशी का उपवास किया था।" सुनकर एक मुगलानी ने कहा—"जीते हो, यही बहुत है। हम लोग समझी थीं, कि अब तुम लोग न बचोगे। इसी से हम लोगों ने भी एकादशी की थी।" एक गायिका कुछ शौकीन मुगलों के आगे गाना गा रही थी। उसके गाने से रात अच्छी तरह कट गई। एक सुननेवाले ने कहा—"बीबीजान! यह क्या हुआ? ताल चूक गई?" गायिका ने कहा—आप लोगों ने जो बहादुरी दिखाई, इससे अब हिन्दुस्थान में रहने की हिम्मत नहीं होती। मैंने विचार किया है कि उड़ीसा जाऊँगी इसीसे बेताला गाना सीख रही हूँ।" कोई-कोई उदयपुरी के हरण का वृत्तान्त उठा दुःख प्रकट किया करता। किसी खैर-ख्वाह हिन्दू सैनिक ने रावण के सीताहरण के साथ उसकी तुलना की, किसी ने उसके जवाब में कहा—"बादशाह इतने बकरों को साथ लाये थे, तब भी सीता का उद्धार क्यों नहीं हुआ?" किसी ने कहा—"हम लोग सिपाही हैं, लकड़-हारे नहीं, पेड़ काटने का शऊर हम लोगों में नहीं है; इसी से हार गये।" किसी ने जवाब दिया—"तुम लोगों को घास काटने का शऊर नहीं है, तब पेड़ क्या काटोगे?" ऐसी ही हँसी-दिल्लगी चलने लगी।

इधर बादशाह ने छावनी के रंगमहल में प्रवेश किया; जेबुन्निसा उसके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हुई। बादशाह ने जेबुन्निसा से कहा—"तुमने जो किया है, उसे जानबूझ कर नहीं किया; इसे मैं समझ गया हूँ। इसलिए तुम्हें क्षमा किया। किन्तु सावधान, विवाह की बात प्रकट न हो।"

इसके बाद उदयपुरी बेगम से बादशाह ने मुलाकात की। उदयपुरी ने अपने अपमान की सारी बातें कह सुनाईं। उसमें और भी दस बातें लगा दीं सुनकर औरंगजेब बहुत क्रुद्ध और दुःखी हुए।

दूसरे दिन दरबार बैठा। आम-दर्बार बैठने से पहले एकान्त में मुबारक को बुलाकर बादशाह ने कहा—"इस समय मैंने तुम्हारे सब अपराधों को क्षमा किया। क्योंकि तुम मेरे दामाद हो। मैं अपने दामाद को निम्न पद पर रखना नहीं चाहता। इसलिए मैंने तुम्हें दो हजारी मनसबदार बनाया, परवाना आज निकल जायगा। किन्तु अब तुम्हारा यहाँ रहना ही नहीं हो सकता क्योंकि शाहजादा अकबर पहाड़ में मेरी ही तरह जाल में पड़ गया है। उनका उद्धार करने के लिए दलेरखाँ सेना लेकर जा रहे हैं। वहाँ तुम्हारे जैसे योद्धा के सहायता की बड़ी जरूरत है। तुम आज ही चले आओ।"

मुबारक सब बातों से प्रसन्न नहीं हुए। क्योंकि जानते थे, कि औरङ्गजेब का आदर सुखकर नहीं। किन्तु उन्होंने अपने मन में जो सोच रखा था, उस पर विचार कर दुःखी भी नहीं हुए। वह बहुत ही विनीत भाव से बादशाह से विदा ले दिलेरखाँ की छावनी में जाने की कोशिश करने लगे।

इसके बाद औरङ्गजेब ने एक विश्वासी दूत के द्वारा दिलेरखाँ के पास एक चिट्ठी भेजी। चिट्ठी का मर्म यह था कि मुबारक को दो हजारी मनसबदार बनाकर तुम्हारे पास भेजता हूँ। यह एक दिन के लिए भी जीवित न रहे। युद्ध में ही मर जाय, तो अच्छा है, नहीं तो और तरह से मारा जाय।

दिलेरखाँ मुबारक को पहचानते नहीं थे। उन्होंने बादशाह की आज्ञा का पालन ठीक से न किया।

इसके बाद बादशाह ने आम-दर्बार में बैठकर अपना अभिप्राय प्रकट किया। उन्होंने कहा—"हम लोगों ने लकड़हारों के फन्दे में फँस कर ही सन्धि-स्थापन किया है। यह सन्धि रहने की नहीं। छोटे से एक जमींदार राजा के साथ बादशाह की सन्धि कैसे? मैंने सन्धि पत्र को फाड़ डाला है। विशेषतः उसने रूपनगर की कुमारी को वापस नहीं भेजा। रूपनगर को उसके पिता ने मुझे दिया है। इसलिए उस पर राजसिंह का अधिकार नहीं। उसे लौटाये बिना मैं राजसिंह को क्षमा नहीं कर सकता। इसलिए

युद्ध जैसे चलता था, वैसे ही चलेगा। राणा के राज्य में गऊ दिखाई दे, तो मुसलमान उसे मार डालें। देवालय देखते ही उसे तोड़ दें। जजिया सब से वसूल हो।"

यह सब हुक्म जारी हुए। इधर दिलेरखाँ देसुरी की राह से मारवाड़ से उदयपुर में प्रवेश करने की चेष्टा से आ रहे थे। यह सुनकर राजसिंह ने औरङ्गजेब के पास आदमी भेजा और पुछवाया कि सन्धि के बाद यह युद्ध कैसा? औरङ्गजेब ने कहला दिया—"जमींदार के साथ बादशाह की सन्धि कैसी? बादशाह की रूपनगरी बेगम को वापस न करने से बादशाह तुम्हें क्षमा न करेंगे?" यह सुन राजसिंह ने हँस कर कहा—"मैं अभी जीवित हूँ।" रूपनगर की राजकुमारी का अपहरण औरङ्गजेब को तीर की तरह छेद रहा था। उन्होंने राजसिंह से इच्छा-पूर्ति की सम्भावना न देख रूपनगर के राय-साहब को एक परवाना दिया। उसमें लिखा—"तुम्हारी कन्या अभी तक मेरे पास नहीं पहुँची। शीघ्र उसे उपस्थित करो, नहीं तो मैं रूपनगर गढ़ का निशान भी न रहने दूँगा।" औरङ्गजेब को आशा थी कि पिता के जोर देने से चंचलकुमारी उनके पास आने को राजी हो सकती है। परवाना पाकर विक्रमसिंह ने जवाब दिया—"मैं शीघ्र दो हजार सवार लेकर आपके हुजूर में हाजिर होता हूँ।"

औरङ्गजेब ने सोचा, "सेना किसलिये?" फिर मन को इस तरह समझाया कि उनकी सहायता के लिए विक्रमसिंह सेना लेकर आ रहे हैं।

———

तेरहवाँ परिच्छेद

मुबारक का दहन आरम्भ

सौन्दर्य की भी क्या महिमा है ! मुबारक जेबुन्निसाँ को देख फिर सब भूल गये। गर्विता, स्नेहाभाव के दर्प में प्रसन्न जेबुन्निसाँ को देख ऐसा ही होता या न होता, किन्तु वही जेबुन्निसाँ इस समय विनीता दर्पशून्या, स्नेहशालिनी और प्रेममयी है। मुबारक का पहले का प्रेम फिर पलट आया। दरिया दरिया में बह गई। मनुष्य जब स्त्रीजाति के प्रेम में अन्धा होता है, तब उसे हिताहित और धर्माधर्म का ज्ञान नहीं रहता। इसके जैसा विश्वासघातक और पापी कोई नहीं।

हजारों दीपों की टिमटिमाहट से प्रतिविम्बित उदयसागर के अँधेरे पानी के चारों किनारों की पर्वतमालाओं का निरीक्षण करते हुए कपड़े के बने दुर्ग में एक इन्द्रभवन जैसी कोठरी में मुबारक जेबुन्निसाँ के हाथ को अपने हाथ में लिये हुए हैं। मुबारक ने बड़े दुःख के साथ कहा—"मैंने तुम्हें फिर पाया है, किन्तु दुःख यह है कि सुख को मैं एक दिन भी भोगने न पाया।"

जेबुन्निसाँ—"क्यों, कौन बाधा देगा ? बादशाह !"

मुबारक—"मुझे इसका भी सन्देह है। किन्तु मैं इस समय बादशाह की बात नहीं कह रहा हूँ। मैं कल युद्ध पर जाऊँगा। युद्ध में मरण-जीवन दोनों ही है। किन्तु मेरे लिये मरण ही निश्चित है। मैंने राजपूतों के युद्ध का जो बन्दोबस्त देखा है इससे मैं निश्चित जानता हूँ कि पहाड़ी युद्ध में हम लोग उन्हें नीचा दिखा नहीं सकते। मैं एक बार हार आया हूँ, इस बार हार कर आ न सकूँगा। मुझे युद्ध में मरना होगा।"

जेबुन्निसाँ ने आँखों में आँसू भर कर कहा—"ईश्वर अवश्य ऐसा करेंगे कि तुम युद्ध में जीत कर आओगे। तुम मेरे पास न आओगे, तो मैं मर जाऊँगी"

दोनों ने आँसू बहाये। तब मुबारक ने सोचा—"मरूँगा नहीं—न मरूँगा।" बहुत विचार किया। सामने यह तारों से झिलमिलाकर और गगनस्पर्शी पर्वतमालाओं से परिवेष्टित अँधेरा उदयसागर का पानी है—उसमें दीपमाला से प्रभावित कपड़े की बनी महानगरी की मनमोहिनी छाया है—दूर, पर्वत की चोटी पर चोटी है—बहुत ही अन्धकार है। दोनों को बहुत अन्धकार ही दिखाई दिया।

एकाएक जेबुन्निसाँ ने कहा—"इस अन्धकार में छावनी के पर्दे के नीचे कौन छिपा है? तुम्हारे लिये मेरा मन सदा शंकित रहता है।"

"देख लूँ!" कह कर मुबारक ने लपक के पर्दे की दीवार के नीचे जाकर देखा कि सचमुच एक आदमी छिपकर लेटा हुआ है मुबारक ने उसे पकड़ा। हाथ पकड के उठाया। जो छिपा था, वह उठ खड़ा हुआ। अन्धकार में मुबारक को कोई जगह नहीं मिली। वह उसे खींचकर खीमें के द्वार में रोशनी के पास ले आया। देखा, कि वह एक स्त्री है। वह मुँह कपड़े से छिपाये हुई है—उसने मुँह नहीं खोला। मुबारक ने उसे एक पहरेदार के जिम्मे रख स्वयं जेबुन्निसाँ के पास जाकर सब हाल सुनाया। जेबुन्निसाँ ने कौतूहल-वश उसे अपनी कोठरी में लाने की आज्ञा दी। मुबारक उसे कोठरी में ले आये।

जेबुन्निसाँ ने पूछा—"तुम कौन हो? क्यों छिपी हुई थी? मुँह का कपड़ा हटाओ।"

तब उस स्त्री ने अपने मुँह का कपड़ा हटा दिया। दोनों ने विस्मय के साथ देखा—वह दरिया बीबी है!

बड़े सुख के समय, सहसा बिना मेघ के बज्र गिरते देख जैसी विह्वलता होती है, जेबुन्निसाँ और मुबारक की भी वही हालत हुई। तीनों में किसी ने कोई बात न कही।

बहुत देर बाद ठण्डी साँस लेकर मुबारक ने कहा—"या अल्लाह! मुझे

जेबुन्निसाँ ने बहुत कातर स्वर से कहा—"तब मुझे भी।"

दरिया ने कहा—"तुम लोग कौन हो?"

मुबारक ने उससे कहा—"मेरे साथ आओ।"

तब मुबारक ने बहुत ही दीन भाव से जेबुन्निसाँ से विदा ली।

चौदहवाँ परिच्छेद

अग्नि की नई चिनगारी

राजसिंह राजनीति और युद्ध नीति में अद्वितीय पण्डित थे। मुगल जब तक सारी सैन्य लेकर राणा के राज्य को छोड़ अधिक दूर गये, तब तक उन्होंने अपनी छावनी नहीं तोडी और अपनी सेना को किसी जगह से नहीं हटाया। पर छावनी में ही रहे; ऐसे समय समाचार मिला कि विक्रमसिंह रूपनगर से दो हजार सेना लेकर आ रहे हैं। राजसिंह युद्ध के लिए तैयार हो गये। एक सवार ने आगे बढ़कर दूत के रूप में राजसिंह से मिलने की इच्छा प्रकट की राजसिंह की आज्ञा पाकर पहरेदार उसे ले आया। उसने राजसिंह को प्रणाम कर खबर दी कि रूपनगर के अधिपति विक्रम सोलंकी महाराणा से मिलने के लिए ससैन्य आये हैं।"

राजसिंह ने कहा—"यदि वह छावनी के भीतर आकर मिलता चाहते हैं, तो अकेले आ सकते हैं। अगर ससैन्य मिलना चाहते हैं तो छावनी से बाहर रहना पड़ेगा। मैं भी ससैन्य आऊँगा।"

विक्रम सोलङ्की अकेले छावनी में आकर मिलने को राजी हुए। उनके आने पर राजसिंह ने उन्हें सादर आसन प्रदान किया। विक्रमसिंह ने राणा को कुछ नजर दी। उदयपुर के राणा राजपूत-कुल के प्रधान हैं इसलिए ऐसी

नजर की प्रथा है। किन्तु राजसिंह ने वह नजर न लेकर कहा—"आप की यह नजर मुगल बादशाह को ही प्राप्य है।"

विक्रमसिंह ने कहा—"महाराणा राजसिंह! जीवित रहते मुझे आशा है कि कोई राजपूत मुगल बादशाह को नजर न देगा। महाराज! मुझे क्षमा कीजिये—मैंने बिना समझे वैसा पत्र लिखा था। आपने मुगलों को जैसी सजा दी है, उससे जान पड़ता है कि समस्त राजपूत मिलकर आपके अधीन काम करें तो मुगल-साम्राज्य उखड़ जायगा। मेरे पत्र के आखिरी हिस्से को याद करिये। मैं आप को केवल नजर देने नहीं आया। मैं और भी दो सामग्री आप को देने आया हूँ। एक तो मेरे यह दो हजार सवार, दूसरे मेरी यह अपनी तलवार। मेरी भी बाहों में कुछ बल है; मुझे आप जिस काम में लगायेंगे, उसे मैं शरीर त्याग कर भी पूरा करूँगा।"

राजसिंह बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपना हार्दिक आनन्द विक्रमसिंह से प्रकट किया। कहा—"आज आपने सोलंकी जैसी बात कही है। दुष्ट मुगल मेरे हाथों मारे जा रहे थे, सन्धि करके उन्होंने छुटकारा पाया है। उद्धार पाने पर अब कहते हैं कि सन्धि नहीं की फिर युद्ध कर रहे हैं। दिलेरखाँ सैन्य लेकर शाहजादा अकबर के उद्धार के लिए जा रहा है। आप बहुत ही अच्छे समय से आये। दिलेरखाँ को राह में ही विनष्ट करना पड़ेगा। वह यदि अकबर से मिला, तो कुमार जयसिंह पर आफत आ सकती है। उसके लिए मैं गोपीनाथ राठौर को भेज रहा था। किन्तु उनकी सेना बहुत थोड़ी है। मैं अपनी निजी सेना में से उन्हें कुछ दूँगा। माणिकलाल सिंह नामक एक मेरा सुदक्ष सेनापति है, वह उसे लेकर जायगा। किन्तु औरंगजेब के कारण मैं अपने इस स्थान को छोड कर हट नहीं सकता अथवा अधिक सैन्य माणिक-लाल को दे नहीं सकता। मेरी इच्छा है कि आप भी अपनी सैन्य लेकर उस युद्ध में जायें। आप तीनों आदमी मिलकर दिलेरखाँ को रास्ते में ही मजे में मार सकते हैं।"

विक्रमसिंह ने प्रसन्न होकर कहा—"आप की आज्ञा शिरोधार्य।"

यह कह विक्रम सोलंकी युद्ध में जाने का उद्योग करने के लिए विदा हुए। चंचलकुमारी से कोई बात न हुई।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

मुबारक और दरिया भस्म

गोपीनाथ राठौर, विक्रम सोलंकी और माणिकलाल दिलेरखाँ का ध्वंस करने के लिए चले। जिस राह से दिलेरखाँ आ रहे थे, उसी राह तीन जगह तीनों छिप रहे। किन्तु एक-दूसरे से समीप ही रहे। विक्रम सोलंकी सवार लेकर आये थे, इसलिए वह ऊँचे पहाड़ पर रह न सके। पर्वत-निवासी होने पर भी उन्हें सवार सेना रखनी पड़ती थी। उसका कारण यह था कि सिवा इसके निचली जमीन में शत्रु और डाकुओं का पीछा नहीं कर सकते थे और ऐसे समय छोटे राजा रात के समय मौका पाकर स्वयं एकाध डकैती—अर्थात् एक रात में दस-पांच गांव लूट लिया करते थे। पहाड़ के ऊपर उनके सैनिक घोड़ा छोड़कर पैदल सिपाही का भी काम करते थे। इस समय मुगलों का पीछा करने के लिए विक्रमसिंह घोड़े लेकर गए थे। पहाड़ी युद्ध में इससे असुविधा होती थी। इसलिए उन्होंने पर्वत पर चढ समतल भूमि ही ढूँढ़ ली। उनके मन के लायक कुछ भूमि मिल गई। उनके सामने कुछ जंगल था। जंगल के पीछे उन्होंने अपनी सवार सेना को श्रेणीबद्ध कर रखा। वह सबसे आगे रहे, इसके बाद माणिकलाल राजसिंह के पैदल सिपाहियों को लेकर छिप रहे और सबके आखीर में गोपीनाथ राठौर रहे।

दिलेरखाँ अकबर की दुर्दशा याद कर बहुत ही होशियारी से आ रहे थे। आगे आगे सवारों को भेजकर पता लगाते थे कि राजपूत कहीं छिपे हैं

या नहीं; इसलिए विक्रम सोलंकी के सवारों का पता उन्हें सहज में ही लग गया। तब उन्होंने थोड़ी-सी सैन्य सवारों को भगा देने के लिए भेज दी। विक्रम सोलंकी अन्यान्य विषयों में बहुत मोटी बुद्धि के थे किन्तु युद्ध के समय बहुत ही धूर्त और रणपण्डित थे—अनेक समय धूर्तता ही रण-पाण्डित्य हो जाती है वह मुगल सेना से बहुत ही मामूली युद्ध कर हट गये—दिलेरखाँ का शिर काटने के लिए।

दिलेरखाँ माणिकलाल को छोड़कर चले—यह वह जान भी न सके कि माणिकलाल बगल में छिपा है—माणिकलाल ने भी किसी तरह की आहट लगने नहीं दी! सोलंकी को भगाकर दिलेरखाँ ने विचार किया कि सभी राजपूत हट गये इसलिए पहले की तरह होशियारी से बढ़ नहीं रहे थे। माणिकलाल समझ गये कि अभी उपयुक्त समय नहीं है। वे चुप रहे।

इसके बाद जहाँ गोपीनाथ राठौर छिपे थे वहाँ दिलेरखाँ पहुँचे। वहाँ पहाड़ के बीच की राह बहुत सँकरी थी। यहाँ सेना का अलग हिस्सा पहुँचते ही गोपीनाथ राठौर छलांग मारकर उसके ऊपर टूटे, बाघ जैसे मुसाफिर पर चोट करता है, वैसे ही ससैन्य पिल पड़े।

दिलेरखाँ ने मुबारक को आज्ञा दी—"सामने की सेना लेकर इन्हें भगा दो!" मुबारक आगे बढ़े किन्तु गोपीनाथ राठौर को भगाने की सामर्थ्य कहाँ! सँकरी जमीन में थोड़े ही मुगल आ सके। जैसे बिल से निकलने के समय चींटी को बालक लोग मल-मलकर मार डालते हैं वैसे ही राजपूत लोग मुगलों को सँकरी राह में दबा दबाकर मारने लगे। इधर दिलेरखाँ सामने रास्ता न पाकर निश्चल हो एक जगह खड़े रहे।

माणिकलाल ने देखा कि यही उपयुक्त समय है। वह ससैन्य पर्वत से उतर कर वज्र की तरह दिलेरखाँ पर टूट पड़े। दिलेरखाँ की सेना जी-जान से युद्ध करने लगी। किन्तु इसी समय विक्रमसिंह सोलंकी दो हजार सवारों को लेकर एकाएक दिलेरखाँ की सैन्य के पीछे पहुँच गये। तब तीन ओर से आक्रमण होने पर मुगल सेना एक क्षण भी ठहर न सकी। जिससे

जिधर बना भाग कर बचा, अधिकांश को भागने की राह भी नहीं। खेतिहर जैसे धान के खेत को काटता है, उसी तरह काट कर सबको रणक्षेत्र में मार गिराया।

केवल गोपीनाथ राठौर के सामने कई मुगल योद्धा किसी तरह से भी न हटे—वे सब मौत को तृण के समान समझ कर युद्ध कर रहे थे। वे मुगल सेना के चुने-चुने वीर थे मुबारक उनके नेता थे; किन्तु, वह भी अब टिक न सके। क्षण-क्षण में एक-एक कर बहुतेरे राजपूतों के आक्रमण से मर रहे थे। अन्त में दो-चार सैनिक बाकी सैनिक रह गये।

दूसरे यह देखकर माणिकलाल शीघ्र उपस्थित हुए। राजपूतों को आवाज देकर उन्होंने कहा—"इन्हें मारो नहीं। यह वीर पुरुष हैं। इन्हें छोड़ दो।"

राजपूत लोग क्षण भर के लिये रुक गये। तब माणिकलाल ने कहा—"तुम लोग चले जाओ। मैंने तुम लोगों को छोड़ दिया। मेरे अनुरोध से तुम्हें कोई कुछ न कहेगा।"

एक मुगल ने कहा—"हम लोग युद्ध में कभी पीछे नहीं हटते। आज भी न हटेंगे।" वे कई मुगल फिर युद्ध करने लगे। तब माणिकलाल ने मुबारक को आवाज देकर कहा—"खाँ साहब! अब युद्ध करके क्या कीजियेगा?"

मुबारक ने कहा—"मरूँगा।"

माणिकलाल—"क्यों मरोगे?"

मुबारक—"क्या आप नहीं जानते कि सिवा मौत के मेरे लिये और कोई गति नहीं?"

माणिक—"तब विवाह क्यों किया?"

मुबारक—मरने के लिये।"

इसी समय बन्दूक की आवाज पहाड़ों में गूँज उठी। प्रतिध्वनि के मिटते-मिटते मुबारक सिर में गोली खाकर गिर गये। माणिकलाल ने देखा कि मुबारक की जान निकल गई। माथे में गोली लगी है। माणिकलाल ने

देखा कि पहाड़ के ऊपर एक स्त्री बन्दूक लिये खड़ी है। उसकी बन्दूक के मुँह से निकलता हुआ धुआँ दिखाई दिया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वह पगली दरिया थी।

माणिकलाल ने उस स्त्री को पकड़ने की आज्ञा दी।

वह हँसती हुई भाग गई। तब से दरिया बीबी को संसार में किसी ने नहीं देखा।

युद्ध के बाद जेबुन्निसाँ ने सुना, कि मुबारक युद्ध में मारे गये। तब उसने अपना वेषभूषण उतार कर फेंक दिया। उदयसागर की पथरीली भूमि पर गिरकर रोई—

"वसुधालिङ्गन धूसर स्तवनी
विलाप विकीर्ण मूर्द्धजा।"

सोलहवाँ परिच्छेद

पूर्णाहुति—इष्ट-लाभ

युद्ध के अन्त में जयश्री लेकर विक्रमसोलंकी राजसिंह की छावनी में लौट आये। राजसिंह ने उसका सादर आलिङ्गन किया। विक्रम सोलंकी ने कहा—"एक बात बाकी है। मेरी वह कन्या! कायमनो वाक्य से आशीर्वाद दे मैं आपको वह कन्या सम्प्रदान करना चाहता हूँ। क्या आप ग्रहण करेंगे?"

राजसिंह ने कहा—"तब उदयपुर चलिये।"

विक्रम सोलंकी दो हजार सैन्य लेकर उदयपुर गये।

उसी रात राजसिंह ने चंचलकुमारी का पाणिग्रहण किया। इसके बाद जो हुआ, उस पर इतिहास-वेत्ताओं का ही अधिकार है उपन्यास-लेखकों का

उन बातों को कहने की आवश्यकता नहीं। फिर स्वयं औरङ्गजेब राजसिंह का सर्वनाश करने को तैयार हुए। आजम आकर औरङ्गजेब के साथ मिला। राजसिंह ने विख्यात मारवाड़ी दुर्गादास के साथ मिल औरङ्गजेब पर आक्रमण किया। औरङ्गजेब फिर पराजित और अपमानित हो बेंत से मारे गये कुत्ते की तरह भागे। राजपूतों ने उनका सर्वस्व लूट लिया। औरङ्गजेब की बहुतेरी सेना मारी गई।

औरङ्गजेब और आजम ने भाग कर राणाओं को त्यागी हुई राजधानी चितौर में जाकर आश्रय लिया। किन्तु वहाँ भी रक्षा नहीं। सुवलदास नामक एक राजपूत सेनापति ने पीछे पहुँच कर चित्तोर और अजमेर के बीच अपनी सेना स्थापित की। फिर भोजन बन्द होने का भय हुआ। इसलिए खाँ रुहेला को बारह हजार फौज के साथ सुवलदास से युद्ध करने को भेजा। औरङ्गजेब स्वय अजमेर भाग गये और कभी उन्होंने उदयपुर की ओर आंख नहीं उठाई। उनका यह शौक जन्म भर के लिए पूरा हो गया।

इधर सुवलदास ने खाँ रुहेला को थोड़ा-बहुत देकर दूर किया। पराभूत हो खाँ रुहेला भी अजमेर चला गया। दूसरी ओर राजसिंह के द्वितीय पुत्र कुमार भीमसिंह ने गुजरात के हिस्से में मुगलों के अधिकार में प्रवेश कर समस्त नगर, ग्राम, यहाँ तक कि मुगल सूबेदार की भी राजधानी लूट ली; यह अनेक स्थानों में अधिकार कर सौराष्ट्र तक राजसिंह के अधिकार का स्थापन कर रहे थे, किन्तु पीड़ित प्रजा ने आकर राजसिंह को खबर दी। करुण-हृदय राजसिंह ने उनके दुःख से दुखित हो भीमसिंह को वापस बुला लिया। दया के अनुरोध से उन्होंने फिर हिन्दू-राज्य की स्थापना नहीं की।

किन्तु राजमन्त्री दयालशाह इस स्वभाव के आदमी नहीं थे। वे भी युद्ध में लगे रहे। वह मालवा में मुसलमानों का सर्वस्व नाश करने लगे। औरङ्गजेब ने हिन्दू धर्म पर बहुत अत्याचार किया था। इसके बदले में यह काजियों को

माथा मुड़वाकर बांध कर रखने लगे। कुरान को देखते ही वह उसे कुएँ में फेंकवा देते थे।

दयालशाह ने कुमार जयसिंह के साथ अपनी सैन्य को मिलाया। उन लोगों ने शाह-आजम को रोक कर चित्तौर के पास युद्ध किया। आजम सैन्य कट जाने से पराजित हो भाग गये।

चार वर्ष तक युद्ध चलता रहा। कदम-कदम पर मुगल लोग पराजित हुए। आखिर में औरङ्गजेब ने सचमुच सन्धि की। राणा ने जो-जो चाहा, औरङ्गजेब ने सब स्वीकार किया। वरन और कुछ अधिक स्वीकार करना पड़ा। मुगलों को ऐसी शिक्षा कभी नहीं मिली थी।

———

उपसंहार

ग्रन्थकार का निवेदन

ग्रन्थकार का यह विनीत निवेदन है कि कोई पाठक अपने मन में यह न समझे कि हिन्दू-मुसलमान से किसी प्रकार का तारतम्य निर्देश करना इस ग्रन्थ का उद्देश्य है। हिन्दू होने से ही कोई अच्छे नहीं होते; मुसलमान होने से ही कोई बुरे नहीं होते, अथवा हिन्दू होने से ही बुरे नहीं होते, मुसलमान होने से ही अच्छे नहीं होते। अच्छे-बुरे दोनों में ही समान रूप से हैं बल्कि यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि जब मुसलमान शताब्दियों से भारतवर्ष के प्रभु थे तब राजकीय गुण में मुसलमान सम-सामयिक हिन्दुओं की अपेक्षा अवश्य श्रेष्ठ थे। किन्तु यह भी सत्य नहीं कि मुसलमान राजा हिन्दू राजाओं की अपेक्षा श्रेष्ठ थे। अनेक स्थलों में मुसलमान ही हिन्दुओं की अपेक्षा राजकीय गुण में श्रेष्ठ थे; अनेक स्थल में हिन्दू राजा मुसलमान की अपेक्षा राजकीय गुण में श्रेष्ठ थे। अन्यान्य गुणों के साथ जिनमें धर्म-ज्ञान हो हिन्दू हो, या मुसलमान वह श्रेष्ठ है। अन्यान्य गुणों के होने पर भी जिन में धर्म नहीं है, हिन्दू हो या मुसलमान, वह निकृष्ट है। औरंगजेब धर्म-शून्य थे, इसी से उनके समय से मुगल-साम्राज्य का अधःपतन आरम्भ हुआ। राजसिंह धार्मिक थे, इसी से वह छोटे राज्य के अधिपति होकर मुगल बादशाह को अपमानित और परास्त कर सके थे। यह ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है। राजा जैसे हैं राजानुचर और राज-पौर की प्रवृत्ति भी वैसी होती है। उदयपुरी और चञ्चलकुमारी की तुलना से, जेबुन्निसाँ और निर्मलकुमारी की तुलना से, माणिकलाल और मुबारक की तुलना से, यह जाना जा सकता है इसीलिए यह सब कल्पना है।

औरंगजेब की अन्तिम ऐतिहासिक तुलना के स्थल पर स्पेन के द्वितीय फिलिप थे। दोनों ही प्रकाण्ड साम्राज्य के अधिपति थे; दोनों ही ऐश्वर्य, सेनाबल, और गौरव में अन्य सब राजाओं की अपेक्षा अनेक उच्च थे। दोनों ही श्रमशीलता, सतर्कता प्रभृति राजकीय गुणों से विभूषित थे; किन्तु दोनों ही निष्ठुर, कपटाचारी, क्रूर, दम्भी, आत्मभाव-हितैषी और प्रजापीड़क थे। इसलिये दोनों ही अपने-अपने साम्राज्य के ध्वंस के लिये बीज बो गये थे। दोनों ही छोटे से शत्रु द्वारा पराजित और अपराजित हुए थे—फिलिप औरजेब (उस समय छोटी-सी जाति) और फ्रान्सीसी ओलन्दाजों द्वारा, औरजेब मरहठों और राजपूतों द्वारा। मरहठा शिवाजी और इङ्गलैण्ड की उस समय की रानी एलिजाबेथ समतुलनीय हैं, किन्तु उनकी अपेक्षा ओलन्दाज विलियम राजपूत राजसिंह के किये कार्य से तुलनीय हैं। दोनों ही की कीर्ति इतिहास में अतुल है।